B-8

आर्यभट कृत

आर्यभटीय

रामनिवास राय

इण्डियन नैशनल सायंस एकैडेमी
बहादुर शाह ज़फ़र मार्ग, नई दिल्ली

प्रकाशक : इण्डियन नैशनल सायंस एकैडेमी
बहादुर शाह ज़फ़र मार्ग, नई दिल्ली

इण्डियन नैशनल सायंस एकैडेमी, बहादुरशाह ज़फ़र मार्ग, नई दिल्ली-2, द्वारा, प्रथम आर्यभट की पन्द्रहवीं जन्म शताब्दी के उत्सव-समारोह के अवसर (2-4 नवम्बर 1976) पर, भारत में विज्ञान के इतिहास के संकलन के राष्ट्रीय कमीशन के लिए प्रकाशित।

© सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण 1976

मूल्य : भारत में रु० 25.00
विदेश में $ 8.00
£ 3.00

मुद्रक : रत्नदीप प्रेस
दरिया गंज, नई दिल्ली-110002

विषय-सूची

विषय		पृष्ठ
प्राक्कथन	...	
भूमिका	...	क—ग
ब्रह्म को वन्दना तथा ग्रन्थ परिचय	...	1
व्यंजन एवं स्वरों से संख्याओं का अंकन	...	1
सूर्य आदि तथा पृथ्वी के युगीय भगण	...	4
उच्च तथा पात के भगण	...	4
ब्रह्मा के एक दिन में युग तथा व्यतीत अंश	...	7
आकाश कक्ष्या	...	11
पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमा, मेरु तथा ग्रहों के व्यास	...	15
परम क्रान्ति तथा चन्द्र आदि के शर	...	17
पात एवं उच्च की स्थिति	...	19
मन्दवृत्त तथा शीघ्रवृत्त	...	20
अर्धज्या के मान	...	22
दशगीतिका का उपसंहार	...	24
गणितपाद का मंगलाचरण	...	25
संख्याओं के नाम	...	26
वर्ग का क्षेत्रफल तथा घन का घनफल	...	27
वर्गमूल का नियम	...	29
घनमूल का नियम	...	32
त्रिभुज का क्षेत्रफल तथा सूची का घनफल	...	34
वृत का क्षेत्रफल तथा गोल का घनफल	...	35
समलम्बचतुर्भुज का क्षेत्रफल	...	36
सब क्षेत्रों का क्षेत्रफल	...	38
परिधि के छठें अंश की पूर्णज्या	...	38
वृत्त की परिधि तथा व्यास	...	38
अर्धज्या की विधि	...	40
खण्डार्धज्या के अन्तर	...	42
वृत्त आदि का साधन	...	44
समभू एवं अध ऊर्ध्व साधन	...	44
शंकु, छाया एवं कर्ण का संबंध	...	45
छाया का सूत्र	...	48
कोटि का सूत्र	...	50
भुजा, कोटि एवं कर्ण का सम्बन्ध	...	50
वृत्त के शरों एवं अर्धज्या का सम्बन्ध	...	50
ग्रास एवं शरों का सम्बन्ध	...	55
श्रेढी का फल	...	56
पदों की संख्या	...	58
चितिघन का फल	...	59
वर्गचितिघन का फल	...	62
घनचितिघन का फल	...	62
दो संख्याओं के गुणनफल का सूत्र	...	63
गुणनफल और अन्तर से दो संख्याएँ	...	64
मूलफल का सूत्र	...	65
त्रैराशिक	...	66
भिन्नों का सवर्णीकरण	...	67
व्यस्तविधि	...	68
संघधनायन	...	69

विषय		पृष्ठ
एकवर्णसमीकरण	...	70
ग्रहयुतिकालानयन	...	71
कुट्टक	...	72
वर्षमासादि प्रमाण	...	89
व्यतीपात	...	90
उच्चनीचपरिवर्त	...	91
गुरुवर्ष	...	91
रविवर्ष, चन्द्रमास	...	
सावनदिन, नाक्षत्रदिन	...	92
अधिमास, अवमदिन	...	92
मनुष्य, पितृ तथा देववर्ष	...	94
ब्राह्मदिन	...	94
उत्सर्पिणी आदि भाग	...	95
गतकलिवर्ष	...	96
युग का आरम्भ	...	97
ग्रहगमन का परिमाण	...	97
ग्रहों का मण्डलीयकाल	...	97
राशि, अंश, कला के मान	...	97
ग्रहों का क्रम	...	97
होरेश एवं दिनपति	...	98
मन्दोच्च एवं शीघ्रोच्च से ग्रहों को भ्रमण	...	99
प्रतिमण्डल	...	99
नीचोच्चवृत्त	...	99
नीचोच्चवृत्त पर भ्रमणप्रकार	...	102
स्फुटग्रहानयन...	...	107
भूताराग्रहविवरानयन	...	107
क्रान्तिवृत्त की स्थिति	...	109
ग्रहों का भ्रमण	...	110
ग्रहों का विक्षेप	...	110
ग्रहों के उदयास्त का कालांश	...	111
ग्रहों के प्रकाश का स्रोत	...	112
भूगोल स्थिति	...	113

विषय		पृष्ठ
भूगोल स्वरूप	...	113
भूमि की वृद्धि	...	114
पृथ्वी का घूमना	...	114
मेरु का प्रमाण तथा स्वरूप	...	115
मेरु एवं वडवामुख की स्थिति	...	115
पृथ्वी के चार नगर	...	115
लंका तथा उज्जयिनी की स्थिति	...	115
दृश्य भगोलार्ध	...	116
देवताओं और प्रेतों के लिए भगोल का स्वरूप	...	117
देवों आदि के दिन	...	117
सममण्डल आदि की परिभाषा	..	118
द्रष्टा की स्थिति	...	119
दृङ्मण्डल, दृक्क्षेपमण्डल	...	120
कालज्ञान	...	121
भगोलार्ध कल्पना	...	122
अहोरात्रार्ध	...	123
लंका में राशियों का उदयकाल	...	123
दिनरात की क्षय एवं वृद्धि	...	127
स्वदेश में राश्युदय	...	129
इष्टकाल में शंकु का आनयन	...	130
शंक्वग्र का आनयन	...	131
अग्रा का सूत्र	...	132
सममण्डल पर शंकु	...	132
मध्याह्नशंकु और उसकी छाया	...	133
दृक्क्षेप साधन	...	133
दृग्गतिज्यालंबन	...	136
आक्ष दृक्कर्म	...	137
आयन दृक्कर्म	...	137
रविचंद्रग्रहण	...	140
ग्रहणकाल	...	141
भूच्छाया दीर्घत्व	...	141
भूच्छायाव्यास	...	141

विषय		पृष्ठ	विषय		पृष्ठ
स्थित्यर्धकाल	...	143	ग्रहणवर्ण	...	148
विमर्दार्धकाल	...	144	सूर्यग्रहण में ग्रसित भाग	...	148
ग्रस्तशेषप्रमाण	...	145	रवि, चन्द्र एवं ताराग्रहों का साधन	...	148
तात्कालिकग्रासप्रमाण	...	145	शास्त्र का स्रोत	...	149
अक्षवालन एवं आयनवलन	...	146	उपसंहार	...	149

प्राक्कथन

छात्र मार्ग, दिल्ली

आर्यभट के महान् ग्रंथ आर्यभटीय का हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत करने के लिए हम सभी डा० रामनिवास राय के आभारी हैं। प्राचीन काल के सर्वोत्कृष्ट वैज्ञानिकों में आर्यभट की गणना है और इस समय जब राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर आर्यभट की जन्मशताब्दी मनायी जा रही है। इस अनुवाद का प्रकाशन बहुत ही समयोचित तथा वांछनीय है और आर्यभट की स्मृति में यह एक महत्त्वपूर्ण योगदान है। डा० राय की पुस्तक केवल उन्हीं लोगों के लिए उपयोगी नहीं होगी जिन्हें भारतीय विज्ञान एवं संस्कृति के इतिहास में अभिरुचि है अपितु इसके अधिक वितृत प्रचार से वैज्ञानिक अनुसंधान तथा वैज्ञानिक कार्य में समर्पण की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिलेगा।

डी० एस० कोठारी

(एमेरिटस प्रोफ़ेसर ऑफ़ फीज़िक्स, दिल्ली यूनिवर्सिटी)

भूमिका

भारतीय गणित एवम् ज्योतिष के इतिहास में आर्यभट नाम के दो विद्वान् हो गये हैं। पहले का जन्म उन्हीं के कथनानुसार 476 ई० में हुआ था क्योंकि उन्होंने लिखा है कि जब वे 23 वर्ष के थे तब कलियुग के प्रारम्भ से 3600 वर्ष बीत चुके थे। सभी भारतीय ज्योतिषियों के अनुसार कलियुग के प्रारम्भ के 3179 वर्ष बाद शक काल का प्रारम्भ हुआ। इस तरह शक 421 में ये 23 वर्ष के थे। अतएव 398 शक=476 ई० में इनका जन्म हुआ। दूसरे आर्यभट दसवीं शताब्दी में थे। इनमें से पहले को प्रथम आर्यभट अथवा वृद्ध आर्यभट के नाम से और दूसरे को द्वितीय आर्यभट अथवा लघु आर्यभट के नाम से जाना जाता है।

सत्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में कृष्ण दैवज्ञ के पुत्र नृसिंह ने भास्कराचार्य के सिद्धान्त-शिरोमणि पर वासनावार्त्तिक नामक भाष्य लिखा। इसी शताब्दी के मध्य में रंगनाथ के पुत्र मुनीश्वर अपरनामक विश्वरूप ने भास्कराचार्य के इसी ग्रंथ पर मरीचि टीका लिखी। इन दोनों टीकाओं में प्रथम आर्यभट और द्वितीय आर्यभट के उद्धरण दिए गए हैं। कहीं-कहीं प्रथम आर्यभट को वृद्धार्यभट और द्वितीय आर्यभट को लघ्वार्यभट कहा गया है। परन्तु अधिकतर स्थलों पर केवल आर्यभट नाम से ही इन्हें सम्बोधित किया गया है और प्रसंग तथा उद्धरण से ही जाना जा सकता है कि किस आर्यभट का उल्लेख किया जा रहा है।

वारेन ने अपने ग्रंथ काल संकलित में दिखलाया है कि उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में तामिल प्रदेश में ग्रहण की गणना के लिए आर्यभटीय के नियमों का उपयोग किया जाता था। फिर भी प्रतीत होता है कि उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में आर्यभटीय की प्रतियाँ दुष्प्राप्य हो गयी थीं क्योंकि कोलब्रुक महोदय को बहुत परिश्रम से ढूँढ़ने पर भी इसकी कोई प्रति नहीं मिली और उन्होंने ब्रह्मगुप्त के 'आर्याष्टशत' उल्लेख का यह अर्थ लगाया कि प्रथम आर्यभट के ग्रंथ में आठ सौ आर्याएँ थीं।

परन्तु श्रीयुत बेंटले को प्रथम आर्यभट और द्वितीय आर्यभट दोनों के ग्रन्थों की प्रतियाँ मिली थीं। इनमें द्वितीय आर्यभट के ग्रन्थ महासिद्धान्त को उन्होंने प्रामाणिक माना और प्रथम आर्यभट के ग्रन्थ को उन्होंने अप्रामाणिक माना और कहा कि यद्यपि इस ग्रन्थ का नाम लघुआर्यसिद्धान्त लिखा है यह आधुनिक काल में लिखी जाली पुस्तक है। कदाचित् उनकी इस धारणा का कारण यह हो कि महासिद्धान्त में ब्रह्मा के एक दिन का महायुगों में मान तथा महायुग का चारों युगों में विभाजन आदि वैसा ही है जैसा ब्रह्मगुप्त, द्वितीय भास्कराचार्य आदि ज्योतिषियों के ग्रन्थों में दिया गया है और प्रथम आर्यभट की आर्यभटीय में इससे बहुत भिन्न है। परन्तु उन्होंने इस बात पर ध्यान नहीं दिया कि इस ग्रन्थ की विशिष्टताएँ वही हैं जिनके लिए ब्रह्मगुप्त ने आर्यभट की आलोचना की है। श्रीयुत बेंटले का ग्रन्थ सन् 1823 ई० में प्रकाशित हुआ था।

मद्रास में श्रीयुत ह्विश को भी आर्यभटीय की प्रतियाँ मिली थीं। उन्होंने 1827 में "हिन्दुओं की वर्णमालीय अंकनपद्धति" नामक लेख भी लिखा था जिसमें संख्याओं के लिखने की आर्यभट की पद्धति का वर्णन किया था। डा० कर्न ने जब 1874 ई. में आर्यभटीय का संस्करण, परमेश्वर के भाष्य के साथ, छपवाया तब सम्पादन के लिए ह्विश की प्रतियों का भी उपयोग किया था।

सन् 1864 ई. में भाऊदाजी ने आर्याष्टशत और दशगीतिका की प्रतियाँ प्राप्त कीं और यह दिखलाया कि इनमें वे सभी उद्धरण हैं जिनका उल्लेख बाद के भारतीय ज्योतिषियों ने किया है। उन्होंने कहा कि प्रथम आर्यभट का वास्तविक ग्रंथ यही है और 'आर्याष्टशत' का अर्थ 108 है न कि आठ सौ। इसके पहले कुछ लोग, जो यह समझते थे कि आर्याष्टशत का अर्थ आठ सौ है, महासिद्धान्त को ही प्रथम आर्यभट का ग्रन्थ समझते थे क्योंकि महासिद्धान्त की खंडित प्रतियों में भी आर्याओं की संख्या लगभग छः सौ थी।

आर्यभट दो अथवा तीन

जब यह सिद्ध हो गया कि प्रथम आर्यभट ने आर्यभटीय की रचना की थी और महासिद्धान्त एक अन्य आर्यभट की रचना थी तब यह प्रश्न खड़ा हुआ कि आर्यभट दो थे अथवा तीन। इस प्रश्न के खड़ा होने के दो कारण थे। एक तो यह कि महासिद्धान्त के रचयिता आर्यभट ने पाताधिकार की चौदहवीं आर्या में कहा है कि बहुत काल बीत जाने पर वृद्ध आर्यभट का कहा जो सिद्धान्त नाना पाठ भेदों के कारण नष्ट हो गया था उसे मैंने विशेष रूप से प्रतिपादित किया है। परन्तु आर्यभटीय में तथा महासिद्धान्त में कोई साम्य नहीं पाया जाता। महासिद्धान्त में ब्रह्मगुप्त आदि की तरह एक मन्वन्तर में 71 युग माने जाते हैं जबकि आर्यभटीय में 72 युग। महासिद्धान्त में ब्रह्मा का एक दिन 1000 युगों के बराबर माना जाता है जबकि आर्यभटीय में 1008 युगों के बराबर। आर्यभटीय में सभी युगों का वर्षमान बराबर माना जाता है जबकि महासिद्धान्त में इनका अनुपात 4 : 3 : 2 : 1 है। आर्यभटीय में कल्प का प्रथम दिन वृहस्पतिवार है और महासिद्धान्त में ब्रह्मगुप्त की तरह रविवार। आर्यभटीय में पृथ्वी अपने अक्ष के चारों ओर घूमती है और महासिद्धान्त में स्थिर है। यहाँ तक कि महासिद्धान्त में π का मान $\sqrt{10}$ तथा $\frac{22}{7}$ लिया गया है जो आर्यभटीय में दिए मान की अपेक्षा अधिक अशुद्ध हैं। अतएव यह शंका होना स्वाभाविक था कि वह वृद्ध आर्यभट, जिसके मत का प्रतिपादन महासिद्धान्त में किया गया है, आर्यभटीय के रचयिता की अपेक्षा कोई और था।

तीन आर्यभट मानने का एक अन्य कारण अल्बिरूनी का ग्रन्थ इण्डिका था। इस ग्रन्थ में अल् बिरूनी ने वृद्ध आर्यभट और कुसुमपुर के आर्यभट का उल्लेख किया है और उन्हें प्रथम आर्यभट से भिन्न व्यक्ति माना है और कहा है कि कुसुमपुर के आर्यभट वृद्ध आर्यभट के अनुयायियों में से थे। सखाऊ के अनुवाद के भाग 1 पृष्ठ 246 पर वे कहते हैं :

"कुसुमपुर के आर्यभट की पुस्तक में हम यह पढ़ते हैं कि मेरु पर्वत हिमवन्त में शीत

प्रदेश में है और एक योजन से अधिक ऊँचा नही है। परन्तु अनुवाद ऐसा किया गया है जिससे ऐसा प्रतीत हो कि मेरु हिमवन्त से एक योजन से अधिक ऊँचा नहीं है।

"इस लेखक का तादात्म्य वृद्ध आर्यभट के साथ नहीं करना चाहिए, पर यह उसके अनुयायियों में से था क्योंकि यह उससे उद्धरण देता है और उसके उदाहरण का अनुगमन करता है।"

परन्तु इस विषय में अल्विरूनी के कथन को प्रामाणिक नहीं माना जा सकता क्योंकि सखाऊ के अनुवाद के भाग 1 के पृष्ट 370 पर वे स्वयं यह कहते हैं : "मैंने आर्यभट की किसी पुस्तक को नहीं देखा है। उसके विषय में मेरी पूरी जानकारी ब्रह्मगुप्त द्वारा दिये गये उसके उद्धरणों से है।"

उसी पृष्ठ पर वे आगे कहते हैं :

"कुसुमपुर के आर्यभट, जो वृद्ध आर्यभट के सम्प्रदाय के हैं, अपनी एक छोटी-सी पुस्तिका अल् नत्फ़ में लिखते हैं कि ब्रह्मा के एक दिन में 1008 चतुर्युग होते हैं। इस के पहले आधे (504 चतुर्युगों) को 'ओचरपन' कहते हैं जिसमें सूर्य ऊँचा चढ़ता है और दूसरे आधे को 'आबसरबन' कहते हैं जिसमें सूर्य नीचे जाता है। इस काल का मध्य भाग 'सम्म' अर्थात् साम्य कहलाता है क्योंकि यह दिन के मध्म में है और प्रारम्भ तथा अन्त को 'दुरतम' कहा जाता है।"

इस उद्धरण से स्पष्ट है कि जिसको अल्विरूनी कुसुमपुर का आर्यभट समझते हैं वे वस्तुतः प्रथम आर्यभट हैं। अल् नतफ़् वस्तुतः अल् नग़मा है जैसा इस टीका के पृष्ठ 7 पर दिखाया गया है। प्रथम आर्यभट ने ही कालक्रिया की नवीं आर्या में 'उत्सर्पिणी', 'अवसर्पिणी', 'सुषमा' तथा 'दुष्षमा' का उल्लेख किया है जो अरबी लिपि में परिवर्तित हो गये हैं।

इसके अतिरिक्त यह भी स्पष्ट है कि अल् बिरूनी ने अल् नग़मा अर्थात् दशगीतिका भी नहीं देखा था क्योंकि भाग 1 पृष्ठ 174 पर वे लिखते हैं कि हिन्दू लोग संख्याओं के अंकन के लिए अपनी वर्णमाला के अक्षरों का उपयोग नहीं करते जैसा हम लोग अरबी अक्षरों का उपयोग हिब्रू वर्णमाला के क्रम में करते हैं (अ ब ज द इत्यादि अरबी अक्षरों का उपयोग 1, 2, 3, 4 आदि अंकों के लिए किया जाता है। परन्तु अ ब ज द आदि का क्रम अरबी वर्णमाला का नहीं अपितु हिब्रू वर्णमाला का है।) यदि अल्विरूनी ने क से म तक के 25 वर्ग अक्षरों को क्रम से 1 से 25 तक का मान देकर वर्ग स्थानों में, तथा अवर्ग अक्षरों (य से ह तक) को अवर्ग स्थानों में रखने का आर्यभट का नियम देखा होता, जिसमें य=ङ+म, तो वे ऐसा न कहते। स्वरों का उपयोग स्थान निर्देशन के लिए करके आर्यभट ने जिस वैज्ञानिक रीति से संख्याओं को लिखा वह अनूठी है।

बाद के ज्योतिषियों ने वृद्ध आर्यभट, लघु आर्यभट अथवा केवल आर्यभट लिखकर जितने उद्धरण दिये हैं वे सभी आर्यभटीय के हैं अथवा महासिद्धान्त में पाए जाते हैं। पृथूदक स्वामी का उद्धरण कि तारामण्डल स्थिर है और नक्षत्रों तथा ग्रहों का दैनिक उदय एवं अस्त पृथ्वी के घूमने के कारण है आर्यभटीय में नहीं पाया जाता। परन्तु यह प्रथम आर्यभट के सिद्धान्त के अनुकूल है। अतएव यह निश्चित है कि आर्यभट नाम के ज्योतिषी दो ही थे, तीन नहीं थे।

गणितपाद का रचयिता कौन ?

यद्यपि आर्यभट ने दशगीतिका की पहली ही आर्या में कहा है कि वे गणित, काल-क्रिया और गोल का वर्णन करेंगे और ब्रह्मगुप्त ने आर्यभट की आलोचना करते हुए तंत्र-परीक्षाध्याय की तेंतालीसवीं आर्या में कहा है :

"चूँकि आर्यभट गणित, काल और गोल में से किसी एक को भी नहीं जानते, इस कारण मैंने इनके दोषों को अलग-अलग नहीं कहा है," तो भी श्रीयुत जी. आर. के ने यह मत प्रतिपादित किया कि आर्यभटीय का गणितपाद प्रथम आर्यभट की कृति नहीं है और उसका रचियता कुसुमपुर का निवासी काई अन्य आर्यभट था जो दसवीं शताब्दी में था। यह समझना कठिन है कि ऐसा कहने में श्रीयुत के का ध्येय क्या था। परन्तु यह सिद्ध करना कठिन नहीं है कि उनका यह मत ठीक नहीं था।

अपने मत के समर्थन में श्रीयुत के ने जो तर्क दिए थे उनमें मुख्य निम्नलिखित हैं :

अल्बिरूनी ने अपनी पुस्तक में वृद्ध आर्यभट और कुसुमपुर के आर्यभट को दो भिन्न-भिन्न व्यक्ति माना है और गणितपाद की प्रथम आर्या में यह कहा गया है कि आर्यभट उस ज्ञान का वर्णन करेंगे कुसुमपुर में जिसकी पूजा होती है। अतएव गणितपाद कुसुमपुर के आर्यभट की रचना है और शेष भाग वृद्ध आर्यभट की रचना है। परन्तु ऊपर यह दिखाया जा चुका है कि अल्बिरूनी के अनुसार अल् नग़मा अर्थात् दशगीतिका एवं कालक्रिया की नवीं आर्या कुसुमपुर के आर्यभट की रचना हैं। इसी तरह भाग 1 के पृष्ठ 276 पर अल् बिरूनी लिखते हैं :

"ब्रह्मगुप्त उसी पुस्तक (ब्राह्मसिद्धान्त) में एक अन्य स्थल पर लिखते हैं कि आर्यभट के अनुयायी यह मानते हैं कि पृथ्वी घूमती है और आकाश स्थिर है।"

यह मत दशगीतिका एवं गोलपाद में प्रतिपादित किया गया है और ये सभी प्रथम आर्यभट रचित हैं। अतएव कुसुमपुर का आर्यभट वही है जिसने शेष ग्रन्थ की रचना की है।

श्रीयुत के का एक अन्य तर्क यह था कि बाद के ज्योतिषियों ने आर्यभटीय के शेष भाग में से उद्धरण दिये हैं परन्तु गणितपाद में से कोई उद्धरण नहीं दिया है। द्वितीय भास्कराचार्य ने गोलाध्याय के भुवनकोश के बावनवें श्लोक के वासनाभाष्य में लिखा है कि आर्यभट आदि ने 20,000 व्यास के वृत्त के लिए परिधि का मान 62,832 स्वीकार किया है। इकसठवें श्लोक के बाद के भाष्य में उन्होंने लिखा है कि चतुर्वेदाचार्य (पृथूदक स्वामी) ने जो लिखा है कि गोल का घनफल, क्षेत्रफल और क्षेत्रफल के वर्गमूल के गुणनफल के तुल्य होता है वह दूसरे के मत का उल्लेख है। भास्कराचार्य बारहवीं शताब्दी के थे और पृथूदक स्वामी को श्रीयुत के ने दसवीं शताब्दी का माना है परन्तु अब हम जानते हैं कि पृथूदक स्वामी नवीं शताब्दी के थे। नवीं शताब्दी के ही गोविन्दस्वामी ने महाभास्करीय के भाष्य में बहुत से स्थलों पर गणितपाद की आर्याओं को उद्धृत किया है। सातवीं शताब्दी के प्रथम भास्करा-

चार्य ने संम्पूर्ण आर्यभटीय का भाष्य लिखा है। उनसे भी पहले आचार्य प्रभाकर ने आर्यभटीय का भाष्य लिखा था जो दुर्भाग्यवश अप्राप्य है यद्यपि इसका उल्लेख भास्कर प्रथम और पृथूदक स्वामी दोनों ने किया है। ये आचार्य प्रभाकर कदाचित् आर्यभट के शिष्य थे।

यद्यपि इनमें से बहुत-सी बातें श्रीयुत के को ज्ञात नहीं थीं फिर भी डा० कर्न द्वारा संपादित परमेश्वर के आर्यभटीय के भाष्य का संस्करण उनके सामने था जिसमें आर्यभट ने दशगीतिका में वर्ग और अवर्ग स्थानों में भेद करके संख्याओं को लिखने की रीति बतायी है और गणितपाद में वर्गमूल प्राप्त करने के नियम को बताते समय भी वर्ग और अवर्ग स्थानों में भेद दिखाया है। परन्तु कुछ पाश्चात्य विद्वान् ऐसे हैं कि वे भारतीय ज्योतिष का पूरा अध्ययन किये बिना ही उसके विषय में अपनी सम्मति प्रकट कर देते हैं। उदाहरण के लिए स्वर्गीय आटो न्यूजेबावेर ने अपनी पुस्तक "इवजैट सायंसेज इन ऐण्टीक्विटी" के पृष्ठ 169 पर लिखा है :

"प्रथम घंटे के पति को दिनपति समझा जाता है और इस तरह लगातार सात दिनों के निम्ननिखित दिन पति मिलते हैं :

सूर्य चन्द्रमा मंगल बुध वृहस्पति शुक्र शनि जो सप्ताह में हमारे दिनों का क्रम है और भारतीय ज्योतिष में ग्रहों का भी क्रम है।"

परन्तु आर्यभट ने गोलपाद की पन्द्रहवीं आर्या में स्पष्ट रूप से लिखा है कि नक्षत्रों के नीचे शनेश्चर, वृहस्पति, मंगल, सूर्य, शुक्र, बुध, चन्द्रमा हैं और उनके नीचे पृथ्वी है। आर्यभट ने गणितपाद की प्रथम आर्या में जिस क्रम में ग्रहों की वन्दना की है वह क्रम भी चन्द्रमा, बुध, शुक्र, रवि, मंगल, वृहस्पति, शनि का क्रम अर्थात् नीचे से ऊपर का क्रम है। ब्रह्मगुप्त ने भी गोलाध्याय की तेरहवी आर्या में यही क्रम दिया है। श्रीयुत न्युजेबावेर को ग्रहों के क्रम में भ्रम कदाचित् इस कारण हुआ हो कि ब्रह्मगुप्त ने ग्रहों के भगण आदि को जिस क्रम में दिया है वह सप्ताह में दिनों का क्रम है।

ग्रंथकार

जैसा ऊपर कहा जा चुका है आर्यभट का जन्म 476 ई. में हुआ था। उनके जन्म स्थान के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा जा सकता, यद्यपि उनके इस कथन से कि वे कुसुमपुर में पूजित ज्ञान को कहेंगे कुछ लोगों का विचार है कि उनका जन्म कुसुमपुर अर्थात् आधुनिक पटना में हुआ था। परन्तु यह भी सम्भव है कि कुसुमपुर में उन्होंने केवल शिक्षा प्राप्त की हो और उनका जन्म किसी अन्य स्थान में हुआ हो।

स्वर्गीय श्रीयुत शंकर बालकृष्ण दीक्षित का विचार था कि आर्यभटीय की प्रतियाँ दक्षिण भारत में ही पायी जाती हैं और कुसुमपुर कदाचित कोई दक्षिण भारत का नगर होगा। परन्तु अन्य किसी प्राचीन ग्रन्थ से दक्षिण में किसी प्रसिद्ध कुसुमपुर नामक नगर का वृतान्त नहीं प्राप्त होता और आर्यभट के उल्लेख से यह प्रतीत होता है कि कुसुमपुर कोई प्रसिद्ध

नगर रहा होगा और आधुनिक पटना के अतिरिक्त अन्य किसी नगर के कुसुमपुर होने की संभावना नहीं है।

आयभट के जन्म के समय उत्तरी भारत में गुप्त वंश के सम्राट् बुधगुप्त का शासन था। हुयेनसांग के अनुसार नालन्दा में गुप्त सम्राट् कुमारगुप्त ने विश्वविद्यालय स्थापित किया था तथा बुधगुप्त और उसके परवर्ती गुप्त सम्राटों ने इस विश्वविद्यालय को दान देने की प्रथा जारी रखी थी। अतएव कुछ लोगों का विचार है कि कदाचित् आर्यभट ने इसी विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त की होगी। परन्तु यह भी ध्यान देने योग्य है कि इस काल में अग्रहार ग्रामों की प्रथा थी। ये ग्राम ऐसे थे जिन्हें विद्वान् ब्राह्मणों को इस कार्य के लिए दिया जाता था कि वे इनकी आदमनी का उपभोग करें और विद्यार्थियों को शिक्षा दें। ये अग्रहार ग्राम उच्च शिक्षा के केन्द्र थे और किसी-किसी विद्वान् के पास सैकड़ों विद्यार्थी होते थे। हो सकता है कि पाटलीपुत्र में अथवा उसके पास ही कोई ऐसा केन्द्र रहा हो जिसमें आर्यभट ने शिक्षा पाई हो। यह भी ध्यान देने योग्य है कि मौर्य काल से ही पाटलीपुत्र भारतवर्ष के प्रधान नगरों में से एक था। गुप्त काल में इसका शिक्षा का केन्द्र होना अत्यन्त संभव है।

आर्यभट को अपनी विद्वत्ता के कारण ज्योतिर्विदों में बहुत गरिमा का स्थान प्राप्त हो गया था। भास्कर प्रथम महाभास्करीय में उनके तंत्र को "तपोभिराप्तं" अर्थात् तप से प्राप्त किया हुआ कहते हैं। इसके अतिरिक्त इसी ग्रन्थ में आर्यभट का उल्लेख करते हुए वे उनके लिए 'श्रीमद्भट' और 'प्रभोः' अर्थात् 'प्रभु का' इन विशेषणों का उपयोग करते हैं। लघुभास्करीय में भी दो श्लोकों द्वारा उनकी अभ्यर्थना की है जिनके अर्थ हैं:

"उन आर्यभट की जय हो जिनका ज्योतिष शास्त्र बहुत काल तक सुदूर देशों में स्फुट फल देता है और जिनका सुन्दर यश सागर के पार तक पहुँच गया है। आर्यभट के अतिरिक्त अन्य कोई ग्रहों की गति जानने में समर्थ नहीं है। अन्य लोग गहन अन्धकार के समुद्र में घूम रहे हैं।"

किसी अन्य ने भी एक श्लोक में कहा है कि पाँचों सिद्धान्तों (पैतामह सिद्धान्त, वासिष्ठ सिद्धान्त, पौलिश सिद्धान्त, रोमक सिद्धान्त तथा सौर सिद्धान्त) की विधि से गणित किये हुए ग्रहों के गमन, ग्रहण आदि के विषय में जो दृष्टिवैषम्य था उसे दूर करने के लिए कलियुग में स्वयं सूर्य भगवान् कुसुमपुर में आर्यभट के नाम से भूगोलवित् तथा कुलपति होकर अवतरित हुए।

गोविन्द स्वामी तथा परमेश्वर ने महाभास्करीय के भाष्य में आर्यभट को 'भगवानार्यभटः' के नाम से सम्बोधित किया है। इन सबसे प्रकट है कि बाद के ज्योतिर्विदों ने आर्यभट को बहुत सम्मान के साथ स्मरण किया है।

आर्यभटीय

आर्यभटीय के चार खंड हैं: दशगीतिका, गणितपाद, कालक्रियापाद एवं गोलपाद। दशगीतिका की पहली आर्या में वन्दना है और पुस्तक का विषय निर्देशन है। दूसरी आर्या

में स्वरों एवं व्यंजनों की सहायता से बड़ी संख्याओं को लिखने की विधि का वर्णन है। फिर दश आर्याओं में ब्रह्मा के एक दिन का परिमाण, वर्तमान दिन का बीता समय, आकाशीय पिंडों के भगण, उनके मन्द वृत्त तथा शीघ्र वृत्त की परिधियाँ, उनकी कक्षाओं के पारस्परिक झुकाव और 24 अर्धज्याओं के मान दिए गए हैं। इसी से इसे दशगीतिका कहते हैं।

गणितपाद में गणित के कुछ साधारण नियम, क्षेत्रफल एवं घनफल प्राप्त करने की विधियाँ, वृत्त में परिधि और व्यास का अनुपात, कुट्टक आदि का वर्णन है। भास्कर प्रथम ने आर्यभटीय भाष्य में कई पूर्व गणिताचार्यों के नाम दिए हैं और कहा है कि आर्यभटीय में दी हुई गणित बहुत संक्षेप में है। अतएव यह कहना कठिन है कि इन नियमों में कौन से स्वयं आर्यभट द्वारा निकाले गये हैं और कौन से पूर्वाचार्यों द्वारा प्राप्त किए गये थे। परन्तु आर्यभटीय में प्रत्येक सूत्र बहुत संक्षिप्त रूप में कहे गये हैं। इससे प्रतीत होता है कि इनका ज्ञान पहले के आचार्यों को भी था। परन्तु दुर्भाग्य से उनकी पुस्तकें अब अप्राप्य हैं।

कालक्रिया और गोलपाद में ज्योतिष सम्बन्धी बातें हैं। इनके सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि इनका उल्लेख सर्व प्रथम आर्यभट ने किया है जैसा वह गोलपाद की उनचासवीं आर्या में कहते हैं।

आर्यभटीय एक तंत्र ग्रन्थ है। तन्त्र उन्हें कहते हैं जिनमें गणना कलियुग के प्रारम्भ से की जाती है। जिन ग्रन्थों में गणना कल्प के आरम्भ से की जाती है उन्हें सिद्धान्त कहते हैं। इसके अतिरिक्त करण ग्रन्थ होते हैं जिनमें गणना किसी निश्चित क्षण से की जाती है और जिनमें उस निश्चित क्षण पर ग्रहों तथा चन्द्रोच्च और चन्द्रपात की स्थिति के अनुसार क्षेप (वे संख्याएँ जिन्हें गणना करते समय जोड़ा अथवा घटाया जाता है) दिये रहते हैं। ब्रह्मगुप्त का खण्डखाद्यक एक करण ग्रन्थ है।

ज्योतिष के भारतीय ग्रंथों में पहले अहर्गण निकाला जाता है और उससे ग्रहों की मध्यम स्थिति प्राप्त की जाती है। आर्यभटीय में इनका वर्णन नहीं है और न शक काल का उल्लेख है। आर्यभटीय के भाष्यकार भास्कर प्रथम ने अपने ग्रन्थों में शककाल का उल्लेख किया है और कहा है कि शक काल में 3179 जोड़ने से कलियुग के प्रारम्भ से गत वर्षों की संख्या प्राप्त होती है। ब्रह्मगुप्त तथा भास्कर प्रथम समकालीन हैं। ब्रह्मगुप्त ने भी कहा है कि शक काल से पहले कलियुग के 3179 वर्ष व्यतीत हो चुके थे। परन्तु शक काल का सर्व प्रथम उल्लेख वराहमिहिर की पंचसिद्धांतिका में मिलता है।

आर्यभट ने आर्यभटीय में कल्प का उल्लेख किया है। ब्रह्मा का एक दिन एक कल्प के तुल्य होता है। ब्रह्मगुप्त आदि अन्य ज्योतिषियों ने भी ब्रह्मा के एक दिन का मान एक कल्प के तुल्य माना है। परन्तु ब्रह्मा के एक दिन के महायुगों की संख्या में आर्यभट और ब्रह्मगुप्त में अन्तर है। जैसा पहले बताया जा चुका है आर्यभट के अनुसार ब्रह्मा के एक दिन में अर्थात् एक कल्प में महायुगों की संख्या 1008 है। यही मान आर्यभट के अनुयायी वटेश्वर ने भी माना है। परन्तु ब्रह्मगुप्त, आर्यभट द्वितीय, श्रीपति, भास्कर द्वितीय तथा सूर्यसिद्धान्त के अनुसार एक कल्प में महायुगों की संख्या 1000 है।

कल्प की धारणा का प्रारम्भ आर्यभट से बहुत पहले हो चुका था। सम्राट् अशोक ने अपने एक शिलालेख में कहा है:

"पुत्राः च पौत्राः च प्रपौत्राः च देवानांप्रियस्य प्रियदर्शिनः राज्ञः प्रवर्धयिष्यन्ति इदं धर्म चरणं यावत् संवर्तकल्पं, धर्म शीले [च] तिष्ठन्तः धर्मं अनुशासिष्यन्ति [च]।"

"देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा (अशोक) के पुत्र, पौत्र तथा प्रपौत्र संवतकल्प तक इस धर्माचरण को बढ़ायेंगे, धर्म और शील में स्थिर रहेंगे और धर्म का अनुशासन करेंगे।"

संवर्त का अर्थ है संसार का आवर्ती विनाश। इससे प्रतीत होता है कि अशोक के काल में भी यह धारणा थी कि एक कल्प के उपरान्त संसार का विनाश हो जाता है।

महाभारत के वनपर्व के 188 अध्याय में कल्प के अन्त के प्रलयकाल के दृश्य का वर्णन है। उसके अनुसार पहले बहुत वर्षों तक बृष्टि नहीं होती है। तदनन्तदर प्रचण्ड तेज वाले सात सूर्य सब जल सुखा देते हैं। इसके बाद संवर्तक नाम की अग्नि प्रचण्ड वायु के साथ मिलकर सब कुछ भस्म कर देती है और भेदन कर पृथ्वी के अन्दर तक पहुंच जाती है। तत्पश्चात् प्रलयकालीन मेघों की वर्षा से सारी पृथ्वी अगाध जल राशि से भर जाती है।

अशोक के शिलालेखों के अतिरिक्त दो अन्य शिलालेखों में भी प्रलयकालीन अग्नि तथा वायु का उल्लेख है। पहला लेख महाक्षत्रप रुद्रदामन का है जिसकी तिथि 150 ई० है। इसमें कहा गया है कि बहुत अधिक वृष्टि के कारण सुदर्शन सरोवर में गिरने वाली नदियों से अत्यधिक जल सरोवर में आ गया जिससे सरोवर का बाँध टूट गया। इसके पश्चात् ऐसी प्रचण्ड वायु चली जैसी युगों के अन्त में चलती है।

दूसरा लेख झालावाड़ ज़िले के गंगधार स्थान में मिला है। इसे राजा विश्ववर्मन ने सन् 423 ई० में उत्कीर्ण कराया था। इसमें विश्ववर्मन के लिए कहा गया है कि उसकी दीप्ति संवर्तक अग्नि से भी अधिक असह्य है। ये सभी लेख आर्यभट के समय से पहले के हैं।

इससे स्पष्ट है कि कल्प और कल्प के अन्त में प्रलय की धारणा का प्रचार अशोक के समय अथवा उसके पहले से हो चुका था। यह भी सम्भावना है कि आर्यभट के बहुत पहले से कलि वर्षों की परम्परा का प्रचार रहा हो और उसी आधार पर आर्यभट ने यह कहा हो कि जब वह 23 वर्ष का था तब कलियुग को प्रारम्भ हुए 3600 वर्ष हो चुके थे। इसी कारण सभी ज्योतिषियों में इस बात पर मतैक्य है कि कलि का प्रारम्भ शक काल से 3179 वर्ष पहले हुआ था।

आर्यभटीय की टीकाएँ

प्रारम्भ से ही आर्यभटीय की टीकाएँ होती आयी हैं। प्रथम भाष्य आचार्य प्रभाकर ने लिखा था। ये कदाचित् आर्यभट के शिष्य थे। इनकी टीका अब उपलब्ध नहीं है किन्तु इसके होने का उल्लेख भास्कर प्रथम तथा पृथूदक स्वामी की रचनाओं में है। शंकरनारायण, उदयदिवाकर, सूर्यदेव तथा नीलकंठ ने भी आचार्य प्रभाकर का उल्लेख किया है।

इसके पश्चात् भास्कर प्रथम ने 629 ई० में सौराष्ट्र के वलभी नगर में इसकी टीका की। यह भाष्य बहुत विस्तृत है पर पूरा भाष्य उपलब्ध नहीं है। गोलपाद के मध्य तक ही उपलब्ध है।

आर्यभटीय के अन्य टीकाकार हैं सोमेश्वर (लगभग 1040 ई०), सूर्यदेव (जन्म 1191 ई०), परमेश्वर (अनुमानत: 1360-1455 ई०), नीलकण्ठ (जन्म 1443 ई०), यल्लय (लगभग 1480 ई०), रघुनाथ राज (जन्म 1590 ई०) विरूपाक्ष सूरी, विरूपाक्ष के पुत्र माधव, भूतविष्णु, घटीगोप (अनुमानत: 1800-1860 ई०), कोदण्डराम (1807-1883 ई०) कृष्ण एवं कृष्णदास। सोमेश्वर की टीका का आधार भास्कर प्रथम का भाष्य है और यह भास्कर प्रथम के भाष्य का संक्षिप्त रूप है। सूर्यदेव चोल प्रदेश में श्रीरंग गंगापुरी के रहने वाले थे। इनके भाष्य का नाम भटप्रकाश है और आर्यभटीय के भाष्यों में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। परमेश्वर उत्तरी केरल में अरब समुद्रतट के समीप निला (भारतप्पुज़ा) नदी के तीर पर अश्वत्थ (आधुनिक आलत्तुर) ग्राम के निवासी थे। आर्यभटीय भाष्य के अतिरिक्त इन्होंने अन्य ग्रंथों पर भाष्य लिखे हैं तथा स्वतंत्र ग्रंथों की रचना की है। कन ने इनके भाष्य का संपादन करके लाइडेन में 1874 ई० में छपवाया था। 1972 ई० में इसका पुनर्मुद्रण हुआ है।

नीलकण्ठ दक्षिण मलाबार में कुण्ड ग्राम के रहने वाले थे। इसे अब त्रिक्कण्टियूर कहा जाता है। यह परमेश्वर के पुत्र दामोदर के शिष्य थे। इनका भाष्य बहुत विस्तृत है और त्रिवेन्द्रम संस्कृत-माला से तीन भागों में छपा है। इन्होंने गणितपाद, कालाक्रियापाद तथा गोलपाद पर ही भाष्य लिखा है।

यल्लय श्रीधराचार्य के पुत्र तथा बालादित्य के पुत्र सूर्याचार्य के शिष्य थे। आन्ध्र-प्रदेश के कुर्नूल ज़िले के स्कन्दसोमेश्वर स्थान पर इन्होंने अपना भाष्य 1480 ई० के लगभग लिखा था। कृष्णा नदी के दाहिने किनारे पर स्थित प्राचीन तीर्थ श्रीशैल से स्कन्दसोमेश्वर दक्षिण-पूर्व में था। इनका भाष्य सूर्यदेव के भाष्य का विस्तृत रूप है जिसमें उदाहरण भी दिए गए हैं।

रघुनाथ राज भी कुर्नूल ज़िले के ही अहोबिल ग्राम के रहने वाले थे। घटीगोप ने एक भाष्य संस्कृत में और दूसरा मलयालम में लिखा है। विरूपाक्ष का भाष्य तेलुगू में है। कोदण्डराम का भाष्य भी तेलुगू में है और मद्रास गवर्नमेंट ओरियण्टल सीरीज़ में छप गया है। भूतविष्णु ने कदाचित् दशगीतिका पर ही भाष्य लिखा है। डेविड पिंगरे के अनुसार 800 ई० के लगभग आर्यभटीय का अरबी में अनुवाद 'ज़ीज अल् अर्जबहर' के नाम से किया गया था। आधुनिक काल में पं० बलदेव मिश्र ने संस्कृत और हिन्दी दोनों में टीका लिखी है और यह पटना से 1966 ई० में छपी है। एक हिन्दी अनुवाद बिहार में मुजफ्फरपुर ज़िले के उदय नारायण सिंह ने 1906 ई. में छपवाया था। पर अब यह अप्राप्य है।

इसके दो अनुवाद अंग्रेजी में छपे हैं। ये अनुवाद प्रबोधचन्द्र सेनगुप्त तथा डब्ल्यू० ई० क्लार्क द्वारा किये गए हैं। केवल गणितपाद का रोडे द्वारा किया फ्रेंच भाषा का अनुवाद 1879 ई० में छपा था तथा 1975 ई० में गणितपाद का ही के० एल्फेरिंग कृत जर्मन अनुवाद

छपा है। किसी ने सन् 1860 में इसका मराठी में अनुवाद किया था। पर अभी यह छपा नहीं है।

हमारे देश के गणितज्ञों में आर्यभट का बहुत ऊँचा स्थान है। अल्बिरूनी ने आर्यभट के अनुयायियों और अन्यों की तुलना करते हुए लिखा है : "सत्यता पूर्णतः आर्यभट के अनुयायियों के साथ है। वे मुझे बहुत ऊँची वैज्ञानिक योग्यता के आदमी प्रतीत होते हैं।" अतएव इस बात की आवश्कयता है कि प्राप्त पाण्डुलिपियों का उपयोग करके आर्यभटीय के सभी सुन्दर संस्करण प्रकाशित किये जायें। टालेमी के फलित ज्योतिष तथा अन्य विषयों पर लिखे ग्रंथों के अनुवाद आधुनिक यूरोपीय भाषाओं में छापे जा रहे हैं। अतएव इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि न केवल आर्यभट के अपितु अन्य वैज्ञानिक ग्रन्थों को प्रकाशित करने का कार्य बड़े पैमाने पर आरम्भ किया जाए।

इस अनुवाद को तैयार करने में बहुत से लेखकों के ग्रन्थों से मैंने सहायता ली है। मैं उन सभी का अनुगृहीत हूँ। पुस्तक की त्रुटियों के लिए क्षमा प्रार्थी हूँ। स्वर्गीय प्रोफेसर प्रभुलाल भटनागर ने इस पुस्तक की पाण्डुलिपि के कुछ अंशों को पढ़कर अपने बहुमूल्य सुझाव दिये थे। श्रद्धेय प्रोफेसर दौलतसिंह कोठारी ने पुस्तक का प्राक्कथन लिखने की कृपा की है। इन दोनों महानुभावों का मैं हृदय से आभारी हूँ।

इण्डियन नेशनल सायंस अकादमी और इसके अधिकारियों का मैं बहुत आभारी हूँ जिन्होंने इस पुस्तक को प्रकाशित करके मुझे प्रोत्साहित किया है।

अन्त में मैं रत्नदीप प्रेस को बहुत धन्यवाद देता हूँ जिसने बड़े परिश्रम से इस अनुवाद को छापा है।

दिल्ली, शरद् पूर्णिमा

शकाब्द, 1898।

रामनिवास राय

आ र्य भ टी य

दशगीतिका

प्रणिपत्यैकमनेकं कं सत्यां देवतां परं ब्रह्म ।
आर्यभटस्त्रीणि गदति गणितं कालक्रियां गोलम् ।।क।।

अनुवाद—जो ब्रह्मा कारण रूप से एक होते हुए भी कार्य रूप से अनेक है, जो सत्य देवता परम ब्रह्म अर्थात् जगत का मूल कारण है उस को मन, वाणी और कर्म से नमस्कार करके आर्यभट गणित, कालक्रिया और गोल इन तीनों का वर्णन करता है ।।क।।

'क' के कई अर्थ होते हैं जैसे ब्रह्मा, विष्णु, कामदेव, अग्नि, यम, वायु, सूर्य आदि । परन्तु यहाँ इसका अर्थ ब्रह्मा है जिससे आचार्य इसका संकेत करते हैं कि वे उस सिद्धान्त का वर्णन करेंगे जिसका वर्णन पहले ब्रह्मा ने किया था । इसको स्पष्टतः उन्होंने आर्यभटीय की अन्तिम आर्या में कहा है । इसी कारण गणितपाद की प्रथम आर्या में फिर सबसे प्रथम ब्रह्मा को नमस्कार किया है । ब्रह्मगुप्त और वटेश्वर ने भी कहा है कि वे ब्रह्मोक्त ग्रहगणित को कहेंगे[1] ।

गणित का अर्थ तो स्पष्ट ही है । कालक्रिया में कालविभाग, ग्रहों के अपनी कक्ष्या में तथा नीचोच्च वृत्त में गमन आदि का वर्णन है और गोल में पृथ्वी के गोल होने और ग्रहों तथा उनकी कक्ष्याओं के गोल होने के कारण जो कर्म करने पड़ते हैं उनका वर्णन है ।

इस आर्या से प्रतीत होता है कि आर्यभटीय ग्रंथ में दशगीतिका सूत्र भी सम्मिलित है । परन्तु नीलकंठ ने आर्यभटीय के भाष्य में केवल गणितपाद, कालक्रियापाद तथा गोलपाद की टीका की है । इसके अतिरिक्त स्वयं आर्यभट दशगीतिका की अंतिम आर्या में इसका उपसंहार करते हुए प्रतीत होते हैं और गणितपाद की प्रथम आर्या में नया मंगलाचरण करते हैं । ब्रह्मगुप्त ने आर्याष्टशत तथा दशगीतिका का अलग अलग उल्लेख किया है[2] । गणित, कालक्रिया और गोलपादों में कुल 108 आर्याएँ हैं । परंतु सब बातों पर विचार करने से यही प्रतीत होता है कि दशगीतिका भी आर्यभटीय का ही अंश है ।

वर्गाक्षराणि वर्गेऽवर्गेऽवर्गाक्षराणि कात् ङ्मौ यः ।
खद्विनवके स्वरा नव वर्गेऽवर्गे नवान्त्यवर्गे वा ।।ख।।

अनुवाद—क से प्रारंभ करके वर्ग अक्षरों को वर्ग स्थानों में और अवर्ग अक्षरों को अवर्ग स्थानों में (व्यवहार करना चाहिए), (इस प्रकार) ङ और म का जोड़ य (होता

---

[1]ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त, प्रथम अध्याय, आर्या 2; वटेश्वर सिद्धान्त, मध्यमाधिकार, प्रथम अध्याय, श्लोक 1 ।

[2]ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त, तन्त्रपरीक्षाध्याय, आर्या 8 ।

है)। वर्ग और अवर्ग स्थानों के नव के दूने शून्यों को नव स्वर व्यक्त करते हैं। नव वर्ग स्थानों और नव अवर्ग स्थानों के पश्चात् (अर्थात् इनसे अधिक स्थानों के उपयोग की आवश्यकता होने पर) इन्हीं नव स्वरों का उपयोग करना चाहिए ॥ ख ॥

आर्यभटीय के भाष्यकार परमेश्वर कहते हैं[1] : केनचिदनुस्वारादिविशेषेण संयुक्ताः प्रयोज्या इत्यर्थः" अर्थात् किसी अनुस्वार आदि विशेषणों का उपयोग (स्वरों में) करना चाहिए।

संस्कृत वर्णमाला में क से म तक पच्चीस वर्ग अक्षर हैं और य से ह तक आठ अवर्ग अक्षर हैं। संख्याओं के लिखने में दाहिनी ओर से पहला, तीसरा, पाँचवाँ अर्थात् विषम स्थान वर्ग स्थान और दूसरा, चौथा, छठाँ, आदि सम स्थान अवर्ग स्थान हैं। क से म तक 25 अक्षर हैं। आर्यभट ने इन्हें 1 से 25 तक मान दिये हैं, अर्थात् क=1, ख=2, ग=3 आदि। य अवर्ग अक्षर है। इसका मान ङ और म के योग के बराबर अर्थात् 30 है। इसी प्रकार र=40 ल=50, और ह=100।

अइउण्। ऋलृक्। एओङ्। ऐऔच्। अर्थात् अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ऐ, ओ तथा औ नव स्वर हैं। इन स्वरों का उपयोग नव वर्ग और नव अवर्ग स्थानों को प्रकट करने के लिए करना है, अर्थात् इनका उपयोग नीचे लिखे नियम के अनुसार करना है :

औ		ओ		ऐ		ए		लृ		ऋ		उ		इ		अ	
0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0
10^{17}	10^{16}	10^{15}	10^{14}	10^{13}	10^{12}	10^{11}	10^{10}	10^{9}	10^{8}	10^{7}	10^{6}	10^{5}	10^{4}	10^{3}	10^{2}	10^{1}	10^{0}

स्थान निर्देशन के लिए आर्यभट ने स्वरों के ह्रस्व तथा दीर्घ रूपों में कोई भेद नहीं किया है जैसा आगे की आर्याओं के अर्थ में दिखाया जायगा। जिस प्रकार दशमलव पद्धति में एक ही अंक का मान उसके स्थान के अनुसार भिन्न भिन्न होता है उसी प्रकार एक ही व्यञ्जन का मान भिन्न भिन्न स्वरों के संयोग से भिन्न भिन्न होता है। जैसे ग का मान 3 है, गि का 300, गु का 30000 आदि। यह बात आगे की आर्याओं से अधिक स्पष्ट हो जायगी।

इस आर्या के अर्थ पर ह्विश[2], ब्राकहाउस[3], कर्न[4], रोडे[5], के[6], फ्लीट[7], क्लार्क[8], आदि

---

[1]परमेश्वरकृत आर्यभटीय भाष्य, पृ. 4।
[2]सी एम. ह्विश, ट्रैंजैक्शन्स आफ दी लिटरेरी सोसायटी आफ मद्रास, भाग 1, (1827), पृ. 54।
[3]ब्राकहाउस, ज़ाइश्रिफ्ट डेर ड्यूशेन, मार्गनलैंडिशेन गेज़ेलशफ्ट, भाग 4, (1842), पृ. 74।
[4]एच. कर्न, जर्नल रायल एशियाटिक सोसायटी, भाग 20, (1863), पृ. 371।
[5]एल. रोडे, जर्नल एशियाटिक, सिरीज़ 7, भाग 16, (1880), पृ. 440।
[6]जी आर. के, जर्नल एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल, (1907), पृ. 473।
[7]जे. एफ. फ्लीट, जर्नल रायल एशि. सोसायटी, (1911), पृ. 109।
[8]डबल्यू, ई. क्लार्क, आर्यभटीय का अंग्रेजी में अनुवाद, (1930)।

पाश्चात्य विद्वानों ने तथा शारदाकान्त गांगुली[1] तथा सुकुमाररंजन दास[2] भारतीय विद्वानों ने अच्छी तरह विचार किया है। प्लीट और क्लार्क ने ख का अर्थ स्थान किया है क्योंकि क्लार्क का विचार है कि कदाचित् आर्यभट के समय तक शून्य के लिए किसी चिह्न का उपयोग नहीं हो रहा था। परंतु यह ठीक नहीं है। शून्य के लिए एक चिह्न का उपयोग बहुत पहले से हो रहा था (देखिये कुश्यार इब्न लब्बान की पुस्तक 'किताब फ़ी उसूल हिसाबुल्हिन्द का लेबी तथा पेट्रककृत अंग्रेजी अनुवाद, पृष्ठ 7)। बख्शाली हस्तलेख में शून्य का उल्लेख है और उसके चिह्न का भी उपयोग है। आर्यभटीय के प्रथम भाष्यकार भास्कर प्रथम ने कहा है "खानि शून्यानि" अर्थात् 'ख' का अर्थ है शून्य'। जिनभद्रगणि (529 ई. से 590 ई.) ने अपने ग्रंथ वृहत् क्षेत्र समास में 224400000000 को इस प्रकार लिखा है "बाईस, चौवालीस, आठ शून्य"। इसके अतिरिक्त उन्होंने 58545048750 का वर्गमूल $241960\frac{407150}{483920}=241960\frac{40715}{48392}$ निकाला है जिसे इस प्रकार लिखा है दो लाख इकतालीस हजार नव सौ साठ तथा अंश और हर में से शून्य हटा देने पर उनका मान क्रमशः चालीस सहस्र सात सौ पंद्रह तथा अड़तालीस सहस्र तीन सौ बानबे। यहाँ यह दृष्टव्य है कि वर्गमूल निकालने के लिए $(क^2+ख)^{\frac{1}{2}}=क+\frac{ख}{2क}$ सूत्र का उपयोग किया गया है।

इस तरह यह स्पष्ट है कि आर्यभट के समय में शून्य के चिह्न का उपयोग प्रचलित था। उत्तरी भारत के बहुत से भागों में प्रारम्भिक कक्षाओं के विद्यार्थी बड़ी संख्याओं को जोड़ने के लिए पहले इकाई, दहाई, सैकड़ा आदि स्थानों पर सबसे ऊपरी पंक्ति में शून्य लिखते हैं। फिर संख्या को लिखने के लिए इष्ट स्थान तक शून्यों को गिन कर संख्या लिखते हैं। प्रतीत होता है यह प्रथा आर्यभट के पहले से उपयोग में लायी जाती थी और इसका उपयोग आर्यभट ने बड़ी संख्याओं को सुगमता से लिखने के लिए किया है। स्थान निर्देशन के लिए शून्यों का उपयोग किताब फ़ी उसूल हिसाबुल्हिन्द में घनमूल निकालते समय किया गया है। इसका उल्लेख गणितपाद में उपयुक्त स्थान पर किया जायगा।

इस विवेचन से यह भी स्पष्ट है कि आर्यभट को स्थानीय मान की दशमलव पद्धति का पूरा ज्ञान था और श्रीयुत के ने इसके विरुद्ध जो विचार प्रकट किये हैं वे सर्वथा निराधार हैं। स्वयं आर्यभट ने गणितपाद (आर्या 2) में कहा है "स्थानात् स्थानं दशगुणं स्यात्" अर्थात् प्रत्येक स्थान (पहले) स्थान से दस गुना है।

सुधाकर द्विवेदी जी ने गणकतरंगिणी में यह अनुमान किया था कि कदाचित् आर्यभट ने अक्षरों द्वारा संख्याओं को लिखने की पद्धति ग्रीस के लोगों से प्राप्त की हो[3]। श्रीयुत

---

[1]एस. के गांगुली, बुलेटिन कलकत्ता मैथेमेटिकल सोसायटी, भाग 17, (1926) पृ. 195।

[2]एस. के. दास, इंडियन हिस्टारिकल क्वार्टरली, भाग 3, (1927), पृ, 97।

[3]सुधाकर द्विवेदी कृत गणक तरङ्गिणी, पृ. 5, प्रथम संस्करण 1892, द्वितीय संस्करण 1933, वाराणसी।

के ने भी यही मत प्रतिपादित किया था परन्तु श्रीयुत शारदा कान्त गांगुली ने यह स्पष्ट कर दिया है कि यह पद्धति स्वयं आर्यभट द्वारा आविष्कृत की गयी थी और वह इसके लिए विदेशियों का ऋणी नहीं था।

युगरविभगणाः ख्युघृ शशि चयगियिङुशुछ्लृ कु ङिशिबुणख्षृ प्राक् ।
शनि ढुङ्विघ्वं गुरु खिच्युभ कुज भद्लिङ्नुखृ भृगुबुधसौराः ॥१॥
चन्द्रोच्चं ञ्जुष्खिध[1] बुध सुगुशिथृन भृगु जषबिखुछृ शेषार्काः ।
बुफिनच पातविलोमा बुधाह्न्यजार्कोदयाच्च लङ्कायाम् ॥२॥

अनुवाद—युग में सूर्य के भगणों की संख्या ख्युघृ है। ख=2 है। उ की मात्रा लगने से यह तीसरे वर्ग स्थान में गया अर्थात् खु=20000 है। इसी प्रकार यु=300000, तथा घृ=4000000 है। इस प्रकार सूर्य की भगण संख्या 4,320,000 है।

चन्द्रमा की भगण संख्या (च=6)+(य=30)+(गि=300)+(यि=3,000)+(ङु=50,000)+(शु=700,000)+(छ=7,000,000)+ (लृ=50,000,000)अर्थात् 57,753,336 है।

कु अर्थात् पृथ्वी पूर्व की ओर (ङि=500)+(शि=7,000)+(बु=230,000) + (णलृ=1,500,000,000) +(खृ=2,000,000) +(षृ=80,000,000) बार अर्थात् 1,582,237,500 बार घूमती है।

शनिश्चर की भगण संख्या (ढु=140,000)+(ङि=500)+(वि=6,000)+(घ=4)+(व=60) अर्थात् 146,564 है।

गुरु अर्थात् वृहस्पति की भगण संख्या (खि=200)+(रि=4,000)+(चु=60,000)+(यु=300,000)+(भ=24) अर्थात् 364,224 है।

कुज अर्थात् मंगल की भगण संख्या (भ=24)+(दि=1,800)+(लि=5,000) +(भु=90,000)+नु=200,000)+(खृ=2,000,000) अर्थात् 2,296,824 है।

भृगु अर्थात् शुक्र और बुध के भगण वही हैं जो सूर्य के हैं॥ 1 ॥

चन्द्रोच्च की भगण संख्या (जु=80,000)+(रु=400,000)+(षि=8,000) +(खि=200)+(घ=19) अर्थात् 488,219 है।

बुध के शीघ्रोच्च की भगण संख्या (सु=900,000)+(गु=30,000)+(शि=7,000)+(थृ=17,000,000)+(न=20) अर्थात् 17,937,020 है।

---

[1]भास्कर प्रथम तथा भूतविष्णु ने 'र्जुष्खिध' पाठ दिया है ञ्जुष्खिध पाठ सूर्यदेव एवं परमेश्वर ने दिया है।

शुक्र के शीघ्रोच्च की भगण संख्या (ज=8)+(ष=80)+(वि=2,300)+(खु=20,000)+(छ=7,000,000) अर्थात् 7,022,388 है।

शेष के अर्थात् मंगल वृहस्पति तथा शनि के शीघ्रोच्च भगण सूर्य के भगण के तुल्य होते हैं। चन्द्रपात के भगणों की संख्या उलटी ओर अर्थात् पूर्व से पश्चिम की ओर (बु=230,000+(फि=2,200)+(न=20)+(च=6) अर्थात् 232,226 है।

ये भगण युग के आरम्भ में बुध के दिन लंका में सूर्योदय के समय से मेष राशि के आरम्भ से कहे गये हैं ॥2॥

ये सभी भगण नक्षत्रों के सापेक्ष कहे गये हैं जो आर्यभट के अनुसार स्थिर हैं। इसका यह अर्थ है कि पृथ्वी से देखने पर ये पिंड अपने अपने भगणों के तुल्य नक्षत्रों में परिक्रमण करते हैं और पूर्व में नक्षत्र 1,582,237,500 बार उदय होते हैं, अर्थात् नाक्षत्र दिनों की संख्या 1,582,237,500 है। श्री प्रबोधचन्द्र सेनगुप्त ने आर्यभटीय के अनुवाद में कहा है कि ग्रहों के भगण वर्तमान कल्प के प्रारम्भ में बुध के दिन से प्रारम्भ होते हैं और कल्प के आदि से कलियुग के आदि तक दिनों की गणना करके यह दिखाया है कि कलियुग का प्रथम दिन वृहस्पतिवार था[1]। परन्तु यह ठीक नहीं है। परमेश्वर ने आर्यभटीय के भाष्य में स्पष्ट लिखा है 'कृतयुगादौ बुधवारे लङ्कायां सूर्योदयमारभ्य' अर्थात् सतयुग के प्रारम्भ में बुध के दिन लंका में सूर्योदय से आरम्भ करके[2]। ब्रह्मगुप्त ने तन्त्रपरीक्षाध्याय की ग्यारहवीं आर्या में आर्यभट की आलोचना करते हुए लिखा है :

'ओङ्कारो दिनवारो गुरुरौदयिकोऽस्य भवति कल्पादौ'।

अर्थात् आर्यभट ने स्वीकार किया है कि कल्प के आदि का दिन वृहस्पति था। अगली आर्या के अर्थ के बाद यह दिखाया जायगा कि कल्प का प्रथम दिन वृहस्पति मानने से आर्यभट के अनुसार वर्तमान महायुग का प्रथम दिन बुध और कलियुग का प्रथम दिन शुक्र आता है।

अल्-बिरूनी ने अपने ग्रंथ इण्डिका[3] में लिखा है "ब्रह्मगुप्त के उल्लेखों से ही मुझे आर्यभट के सिद्धान्तों का ज्ञान हुआ है और मैंने स्वयं आर्यभट की कोई पुस्तक नहीं देखी है। ब्रह्मगुप्त अपने तन्त्रपरीक्षाध्याय में कहते हैं कि आर्यभट ने चतुर्युग में दिनों की संख्या 1577917500 मानी है जो पुलिश की संख्या से 300 कम है। इस तरह आर्यभट के अनुसार कल्प में दिनों की संख्या 1590540840000 है"।

---

[1]पी. सी सेनगुप्त आर्यभटीय का अंग्रेजी में अनुवाद, जर्नल आफ दि डिपार्टमेंट आफ लेटर्स, कलकत्ता विश्वविद्यालय, भाग 16, (1927), पृ 1।

[2]The Āryabhaṭīya, with commentary Bhaṭadīpikā of Paramādīśvara edited by H. Kern, 1874, p. 7

[3]Albīruni's India translated by Sachau, reprinted by S. Chand, 1964, p. 370.

यह संख्या आर्यभट की औदायिक पद्धति की है और अल्-बिरूनी के समय के पुलिश के अनुसार चतुर्युग में दिनों की संख्या आर्यभट की आर्द्धरात्रिक पद्धति के बराबर है। यही भट्टोत्पल के पुलिश सिद्धान्त में भी है।

उसी पृष्ठ पर अल्बिरूनी आगे लिखते हैं। "आर्यभट और पुलिश के अनुसार कल्प और चतुर्युग का प्रारम्भ उस अर्द्धरात्रि से होता है जो उस दिन के बाद आती है जिस दिन ब्रह्मगुप्त के अनुसार कल्प का प्रारम्भ होता है।"

इससे स्पष्ट है कि अल्बिरूनी आर्यभट की आर्द्धरात्रिक पद्धति से परिचित थे। परन्तु अल्बिरूनी की यह भूल है कि आर्द्धरात्रिक पद्धति औदायिक पद्धति के उपरान्त प्रारम्भ होती है।

भारतीय ज्योतिषियों में आर्यभट को छोड़कर यह किसी ने नहीं माना है कि पृथ्वी अपने अक्ष पर पूर्व की ओर घूमती है। आर्यभट ने नक्षत्र मण्डल को स्थिर और पृथ्वी को पूर्व की ओर घूमती माना है। परमेश्वर आर्यभटीय के भाष्य में और महाभास्करीय की दीपिका व्याख्या में इसे 'मिथ्या ज्ञान' कहते हैं। गोविन्दस्वामी भी इसे मिथ्या ज्ञान कहते हैं[1]।

अल्बिरूनी का कहना है "इसके अतिरिक्त पृथ्वी के आवर्तन से ज्योतिष की उपयोगिता में किसी प्रकार की कमी नहीं होती क्योंकि खगोलीय विशेषता वाली सभी बातें इस सिद्धान्त द्वारा उतनी ही सन्तोषजनक रीति से समझाई जा सकती हैं जितनी दूसरे सिद्धान्त से। परन्तु कई और कारण हैं जो इसे असंभव बना देते हैं[2]। परन्तु अल्बिरूनी ने इन अन्य कारणों पर प्रकाश नहीं डाला है।

पृथूदक स्वामी ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त के गोलाध्याय की चौथी आर्या की व्याख्या में लिखते हैं :[3] अन्य लोग इसकी व्याख्या अन्य प्रकार से करते हैं कि पृथ्वी पूर्व की ओर घूमती है नक्षत्र मण्डल आकाश में स्थिर रहता है। इस प्रकार भी नक्षत्रों का घूमना देवताओं के लिए सव्य और असुरों के लिए अपसव्य होगा।' परन्तु ऐसा नहीं है तथा पृथ्वी के घूमने के विरुद्ध वराहमिहिर के दिये तर्क[4] तथा कुछ अन्य तर्क देते हैं और आर्यभटीय के गोलपाद की दसवीं आर्या भी उद्धृत करते हैं। वस्तुतः इस आर्या का अर्थ समझने में इन आचार्यों ने भूल की है (देखिये गोलपाद में इसका अर्थ)।

---

[1]महाभास्करीयम् भास्कराचार्यकृतं गोविन्दस्वामिकृतभाष्येण, परमेश्वरकृतया सिद्धान्तदीपिकया व्याख्याया च समेतम्, मद्रास, (1957), पृ. 259।

[2]सख़ाऊ कृत अनुवाद, भाग 1, पृ. 277।

[3]ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त, रामस्वरूप शर्मा आदि द्वारा सम्पादित तथा इंडियन इंस्टीट्यूट आफ अस्ट्रानौमिकल एण्ड संस्कृत रिसर्च, दिल्ली द्वारा प्रकाशित, पृ. 1615-1616।

[4]पञ्चसिद्धान्तिका, थीबो तथा सुधाकर द्विवेदी द्वारा सम्पादित तथा चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस वाराणसी द्वारा पुनः प्रकाशित, (1968), अध्याय 13, आर्याएं 6 एवं 7।

ब्रह्मगुप्त ने आर्यभट की चन्द्रोच्च तथा चन्द्रपात भगण संख्याओं की आलोचना की है। वे कहते हैं[1]: "आर्यभट ने चन्द्रमा के मन्दोच्च की गति मेरी अपेक्षा अधिक और चन्द्रपात की गति मेरी अपेक्षा कम दी है। अतएव यदि तिथ्यन्त एवं ग्रहण में उनके साथ मेरा मतैक्य हो तो इसे घुणाक्षर न्याय समझना चाहिये"।

ब्रह्मगुप्त ने 1000 युगों में चन्द्रोच्च की भगणसंख्या 488105858 दी है और आर्यभट ने प्रति युग भगण संख्या 488219 दी है जो 1000 युगों में 488219000 होगी। यह ब्रह्मगुप्त की संख्या से अधिक है। इसी प्रकार चन्द्रपात की भगण संख्या ब्रह्मगुप्त ने 23231-1168 दी है और आर्यभट ने प्रति युग 232226; अतएव 1000 युगों में आर्यभट की भगण संख्या ब्रह्मगुप्त की अपेक्षा कम है।[2]

फिर भी ब्रह्मगुप्त द्वारा घुणाक्षर न्याय जैसे कठोर शब्द का उपयोग करना ठीक नहीं था। कई अन्य स्थलों पर ब्रह्मगुप्त ने अनावश्यक रूप से आर्यभट की आलोचना की है। ऐसे ही स्थलों को देख कर अल्बिरूनी ने लिखा है कि ब्रह्मगुप्त को आर्यभट से पूरी घृणा है अतएव वे आर्यभट के लिए अत्यधिक अपशब्दों का प्रयोग करते हैं।'[3]

काहो मनवो ढ मनुयुग श्ख गतास्ते च मनुयुग छ्ना च।
कल्पादेर्युगपादा ग च गुरुदिवसाच्च भारतात्पूर्वम् ॥३॥

अनुवाद—ब्रह्मा के एक दिन में अर्थात् एक कल्प में 14 (ढ=14) मनु होते हैं और एक मन्वन्तर में (श=70)+(ख=2) अर्थात् 72 युग होते हैं। कल्प के प्रारम्भ से महाभारत युद्ध के अन्तिम दिन वृहस्पतिवार तक च अर्थात् 6 मनु, छ्ना अर्थात् 27 युग तथा ग अर्थात् 3 युग पाद बीत चुके थे ॥2॥

इस तरह आर्यभट के अनुसार ब्रह्मा के एक दिन में 14×72=1008 युग होते हैं। अल्बिरूनी ने लिखा है[4]: "कुसुमपुर के आर्यभट, जो वृद्ध आर्यभट के मतानुयायी हैं, अपनी एक छोटी सी पुस्तिका 'अल् नत्फ़' में कहते हैं कि ब्रह्मा के एक दिन में 1008 चतुर्युग होते हैं"।

यह पुस्तिका 'अल् नत्फ़' नहीं 'अल् नग़मा' अर्थात् 'गीतिका' है। अरबी लिपि में 'ग़ैन' के ऊपर एक बिन्दु के स्थान पर दो बिन्दु हो जाने पर उसे 'ते' पढ़ा जायगा और 'मीम और 'हे' के सम्मिलित रूप पर एक बिन्दु लग जाय तो वह 'फ़े' पढ़ा जायगा।

---

[1]ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त, पृ. 134।

[2]आधुनिक मान के अनुसार चन्द्रोच्च की एक युग में भगण संख्या 488,130.97 तथा चन्द्रपात की भगण संख्या 232,297.60।

[3]सखाऊ का अनुवाद, भाग 1 पृ. 376।

[4]सखाऊ कृत अनुवाद, भाग 1, पृ. 370

अतएव अल्बिरूनी के कुछ काल बाद लिपिकारों की असावधानी से 'अल् नग़मा' 'अल् 'नत्फ' में रूपान्तरित हो गया। यह भी स्पष्ट है कि अल्बिरूनी भी भ्रमवश कुसुमपुर के आर्यभट और वृद्ध आर्यभट को दो भिन्न भिन्न व्यक्ति समझते थे।

तीन युगपाद से स्पष्ट है कि आर्यभट प्रत्येक युगपाद के वर्षमान अर्थात् सतयुग, त्रेता, द्वापर एवं कलियुग के वर्षमान बराबर मानते थे[1]। इसके विरुद्ध स्मृतियों का अनुसरण करते हुए ब्रह्मगुप्त इनकी वर्षसंख्या क्रमशः 4:3:2:1 के अनुपात में मानते थे। अतएव ब्रह्मगुप्त कहते है :[2]

'युगपादानार्यभटश्चत्वारि समानि कृतयुगादीनि।
यदभिहितवान् न तेषां स्मृत्युक्तसमानमेकमपि॥
आर्यभटो युगपादांस्त्रीन् यातानाह कलियुगादौ यत्।
तस्य कृतान्तर्यस्मात् स्वयुगाद्यन्तौ न सत् तस्मात्॥

अर्थात् आर्यभट ने सतयुग आदि चारों खण्डों को जो बराबर कहा है उनमें एक भी स्मृति कथित युगखण्डों के समान नहीं है। कलियुग के आदि में जो आर्यभट ने तीन युगपादों को बीता हुआ कहा है उससे उनके एक युग का आदि और दूसरे युग का अन्त सतयुग के मध्य में पड़ते हैं। अतएव उनके युग ठीक नहीं हैं।

'मनुसन्धि युगमिच्छत्यार्यभटस्तन्मनुर्यतः श्रुत युग।
कल्पश्चतुर्युगानां सहस्रमष्टाधिकं तस्य॥'

आर्यभट मनुसन्धि को एक युग के तुल्य मानते हैं क्योंकि उनका एक मनु 72 युग के बराबर होता है और उनका एक कल्प 1008 युग के तुल्य होता है।

'अधिकः स्मृत्युक्तमनोरार्यभटोक्तश्चतुर्युगेन मनुः।
अधिकं विंशांशयुतैस्त्रिभिर्युगैस्तस्य कल्पगतम्॥'

आर्यभट का मनुकाल स्मृति में कहे मनुकाल की अपेक्षा एक चतुर्युग अधिक है अतएव उनके अनुसार कल्प का बीता काल (स्मृत्युक्त की अपेक्षा) 3 युग तथा युग का बीसवाँ भाग अधिक है।

आर्यभट के अनुसार कल्पगत काल = 6 मनु + 27 चतुर्युग + 3 युगपाद
= 432 चतुर्युग + 27¾ चतुर्युग
= 459¾ चतुर्युग

---

[1]सखाऊ कृत अनुवाद, भाग 1, पृ. 373-374।

[2]ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त, पृ, 18, आर्या 9, तथा पृ. 657, आर्या 4, पृ. 21 आर्या 12, तथा पृ. 58, आर्या 29।

स्मृत्युक्त कल्पगत काल=6 मनु+7 मनुसन्धि+27 चतुर्युग+$\frac{9}{10}$ चतुर्युग
=$(426+\frac{14}{5}+27+\frac{9}{10})$ चतुर्युग
=$456\frac{7}{10}$ चतुर्युग

अतएव आर्यभट के अनुसार अधिक कल्पगत काल ($459\frac{3}{4}$—$456\frac{7}{10}$) चतुर्युग
=$3\frac{1}{20}$ चतुर्युग।

आर्यभट ने लिखा है
'भगणा द्वयोर्द्वयोर्ये विशेषशेषा युगे द्वियोगास्ते' (कालक्रिया 3),

तथा

'रविभूयोगा दिवसाः' (कालक्रिया 5),

अर्थात् दो ग्रहों के भगणों के अन्तर जितने होते हैं उतनी ही बार उन दोनों ग्रहों के मिलन होते हैं तथा सूर्य और पृथ्वी के मिलन सावन दिनों के तुल्य होते हैं। अतएव आर्यभटीय के अनुसार सावन दिनों की संख्या

=1582237500—4320000=1577917500।

परन्तु आर्द्धरात्रिक पद्धति में सावन दिनों की संख्या 300 अधिक है[1]। अतएव ब्रह्मगुप्त ने आलोचना करते हुए लिखा है[2]।

'युगरविभगणाः ख्युघ्रिति यत् प्रोक्तं तत् तयोर्युगं स्पष्टम्।
त्रिशती रव्युदयानां तदन्तरं हेतुना केन॥

अर्थात् आर्यभट ने दोनों पद्धतियों में युगरविभगण 4320000 कहा है तो किस कारण से सूर्योदय की संख्या में 300 का अन्तर है?

हमने अभी ऊपर गणना की कि वर्तमान चतुर्युग के पहले इस कल्प के 459 चतुर्युग बीत चुके हैं और आर्यभट के अनुसार प्रति चतुर्युग 1577917500 दिन होते हैं। अतएव कल्पादि से वर्तमान चतुर्युग के पहले तक दिनों की संख्या=459×1577917500 =724264132500 है। इसमें 7 का भाग देने से 6 शेष बचता है। अतएव यदि कल्प का प्रथम दिन बृहस्पतिवार है तो 459 वें चतुर्युग का अन्तिम दिन मंगलवार होगा और वर्तमान चतुर्युग का पहला दिन बुधवार होगा।

इसी तरह वर्तमान चतुर्युग के तीन चरणों की दिन संख्या युग दिन संख्या का $\frac{3}{4}$ अर्थात् 1183438125 होगी। इसमें 7 का भाग देने से शेष 2 आता है। अतएव यदि

---

[1]महाभास्करीय, सप्तम अध्याय, श्लोक 22।

[2]ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त, तन्त्रपरीक्षाध्याय, आर्या 5।

चतुर्युग का प्रथम दिन बुधवार था तो तीन चरणों का अन्तिम दिन वृहस्पतिवार हुआ और कलियुग का प्रथम दिन शुक्रवार हुआ।

ब्रह्मगुप्त कल्प का प्रथम दिन रविवार मानते हैं। उनके अनुसार कल्प के प्रारम्भ से द्वापर के अन्त तक $456\frac{7}{10}$ चतुर्युग बीत गये और प्रत्येक चतुर्युग में दिनों की संख्या 1577916450 है। अतएव कल्प के आदि से द्वापर के अन्त तक दिनों की संख्या

$$=1577916450\times 456\frac{7}{10},$$
$$=720634442715\text{।}$$

इसमें 7 से भाग देने पर 5 शेष आता है। अतएव द्वापर का अन्तिम दिन वृहस्पतिवार तथा कलियुग का प्रथम दिन शुक्रवार है।

आर्यभट की आर्द्धरात्रिक पद्धति में प्रत्येक चतुर्युग में 1577917800 दिन होते हैं। पुलिश सिद्धान्त के अनुसार भी चतुर्युग में दिनों की संख्या यही है[1]। पुलिश सिद्धान्त के अनुसार भी एककल्प में 1008 चतुर्युग होते हैं[2]। पुलिश सिद्धान्त की ग्रहों की भगण संख्यायें भी वही हैं जो आर्यभट की आर्द्धरात्रिक पद्धति की[3]। इससे प्रतीत होता है कि कि भट्टोत्पल एवं अल्बिरूनी को जो पुलिश सिद्धांत उपलब्ध था उसमें और आर्यभट की आर्द्धरात्रिक पद्धति में बहुत साम्य था।

आर्द्धरात्रिक पद्धति के अनुसार कल्प के प्रारम्भ से द्वापर के अन्त तक दिनों की संख्या $=1577917800\times 459\frac{3}{4}$,

$$=725447708550\text{।}$$

इसमें भी 7 से भाग देने पर शेष 5 आता है। अतएव इस पद्धति में कल्प का प्रथम दिन रविवार होना चाहिए जिससे द्वापर का अन्तिम दिन बृहस्पतिवार और कलियुग का प्रथम दिन शुक्रवार हो सके[4]।

परन्तु पंचसिद्धान्तिका का पुलिश सिद्धान्त भट्टोत्पल के पुलिश सिद्धान्त से बहुत भिन्न है। अनुमानतः वराहमिहिर के कुछ काल बाद किसी ने पुलिश सिद्धान्त को बदलकर आर्यभट की आर्द्धरात्रिक पद्धति के अनुरूप कर दिया। परन्तु अधिकमास आदि की गणना

---

[1]वराहमिहिर की वृहत्संहिता का भट्टोत्पल कृत भाष्य, वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय, 1802 शकाब्द, पृ. 36।

[2]वृहत्संहिता पृ. 48 तथा अल्बिरूनी की पुस्तक का सखाऊ कृत अनुवाद, भाग 1, पृ. 370 तथा 375।

[3]वृहत्संहिता पृ. 49।

[4]सखाऊ का अनुवाद, भाग 2 पृ. 32।

में विशेष परिवर्तन नहीं किया। इसी कारण पंचसिद्धान्तिका में सौर दिनों में 10 का गुणा करके फिर 9761 से भाग देकर अधिकमास निकालने को कहा है[1]

'दिघ्ना साष्टनवरसा दिवसा क्वर्तुसप्तनव भक्ताः ।,
पौलिशमतेऽधिमासाः.....'

अल्बिरूनी के अनुसार सौर दिनों में से एक अंश घटाकर शेष को 976 से भाग देने को कहा गया है[2]।

यदि यह अनुमान ठीक है तो हो सकता है कि अल्बिरूनी के पुलिश में ब्रह्मा की जो आयु वर्तमान कल्प के प्रारम्भ तक दी गई है वह भी आर्यभट की आर्द्धरात्रिक पद्धति के अनुसार हो[3]। आर्यभटीय में आर्यभट ने ब्रह्मा की आयु के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा है। परन्तु अल्बिरूनी के पुलिश के अनुसार ब्रह्मा की आयु 8 वर्ष, 5 महीने, 4 दिन है[4]।

आधुनिक सिद्धान्तों की गणना के अनुसार कलियुग का प्रथम दिन 18 फरवरी 3102 वर्ष ईसा पूर्व था। कल्प के प्रारम्भ से द्वापर के अन्तिम दिन तक अथवा कलियुग के प्रारम्भ तक दिनों की संख्या 725447570625 है। यह संख्या आर्यभट की औदायिक पद्धति के अनुसार है।

शशि राशयष्ठ चक्रं तेंऽशकलायोजनानि य व ञ गुणाः ।
प्राणेनैति कलां भूः खयुगांशे ग्रहजवो भवांशेऽर्कः ॥४॥

अनुवाद—चन्द्रमा की भगण संख्या को 'ठ' अर्थात् 12 से गुणा करने पर राशियों की संख्या प्राप्त होती है। इस संख्या को ,य' अर्थात् 30 से गुणा करने पर अंश मिलते हैं। अंशों की संख्या को 'व' अर्थात् 60 से गुणा करने पर कलाओं की संख्या होती है और इस संख्या को 'ञ' अर्थात् 10 से गुणने पर आकाश का कक्ष्या मान योजन में प्राप्त होता है। एक प्राण के तुल्य कालान्तर में पृथ्वी एक कला घूमती है। आकाश कक्ष्या को युग के सावन दिनों से भाग देने पर ग्रहों की दैनिक गति मिलती है। भकक्ष्या अर्थात् नक्षत्र कक्ष्या का 'व' अंश अर्थात् 60 वाँ भाग सूर्य की कक्ष्या होती है ॥ 4 ॥

इस प्रकार एक चक्र=12 राशि=360 अंश=21600 कला। प्राण की परिभाषा आर्यभट ने कालक्रिया की पहली तथा दूसरी आर्याओं में दिया है। उसके अनुसार एक दिन=60 नाडी=3600 विनाडी=21600 प्राण। इस तरह पृथ्वी के घूमने की कलाओं की तुल्यता प्राणों से होती है।

---

[1]पञ्चसिद्धान्तिका, प्रथम अध्याय, आर्या 11।

[2]सखाऊ का अनुवाद, भाग 2, पृ. 41।

[3]सखाऊ का अनुवाद, भाग 1, पृ. 375; भाग 2, पृ. 31।

[4]सखाऊ का अनुवाद, भाग 2, पृ. 31।

आकाश कक्ष्या का यही प्रमाण भास्कर प्रथम तथा वटेश्वर ने भी कहा है। भास्कर प्रथम कहते हैं[1]।

'इन्दोर्गणाः खखवियद्रसवृन्दनिघ्नाः व्योम्नो भवेयुरिह वृत्त समान संख्याः'।

रस वृन्द अर्थात् 6 के घन के दाहिने तीन शून्य रखो। इस संख्या से अर्थात् 216000 से चन्द्रमा के भगणों को गुणने से आकाशवृत्त के तुल्य संख्या प्राप्त होती है।

वटेश्वर कहते हैं[2] :

'रविशशियुगघातः खाक्षिभक्तः खकक्ष्या शशिभगणहता वा दिग्घ्नचक्रस्य लिप्ताः'।

सूर्य और चन्द्रमा के भगणों को परस्पर गुण कर 20 से भाग दें अथवा चक्र की लिप्ताओं को 10 से गुणकर उसमें चन्द्रमा के भगणों से गुणा करें तो आकाशकक्ष्या प्राप्त होती है।

इस तरह आकाश कक्ष्या $= 57753336 \times 216000$ योजन,

$= 12474720576000$ योजन।

परमेश्वर ने आर्यभटीय के भाष्य में लिखा है कि आकाश कक्ष्या में ग्रहों के भगण से भाग देने पर 'ग्रहजव' प्राप्त होता है। यह संख्या ग्रहों की कक्ष्या की परिधि के तुल्य होगी अर्थात् ग्रहों की कक्ष्या की परिधि $= \frac{\text{आकाश कक्ष्या}}{\text{ग्रह भगण}}$। ऊपर जो अर्थ दिया गया है वह परमेश्वर ने महाभास्करीय की सिद्धान्तदीपिका व्याख्या में दिया है। इसके अनुसार

ग्रहों की दैनिक गति $= \frac{\text{आकाश कक्ष्या}}{\text{युगीय सावन दिन}}$।

रविकक्ष्या की परिधि $= 2887666\frac{4}{5}$ योजन,

चन्द्रकक्ष्या की परिधि $= 216000$ योजन।

बुध शीघ्रोच्च की परिधि $= 695473\frac{373277}{896851}$ योजन।

शुक्र शीघ्रोच्च की परिधि $= 1776421\frac{255221}{585199}$ योजन।

मंगल कक्ष्या की परिधि $= 5431291\frac{132027}{287103}$ योजन।

बृहस्पति कक्ष्या की परिधि $= 34250133\frac{699}{1897}$ योजन।

---

[1]महाभास्करीय, सप्तम अध्याय, श्लोक 20।

[2]वटेश्वरसिद्धान्त, मध्यमाधिकार, सप्तम अध्याय, श्लोक 5।

शनिश्चर कक्ष्या की परिधि $=85114493\frac{5987}{36641}$ योजन ।

नक्षत्र कक्ष्या की परिधि $=173260008$ योजन ।

ग्रहों की दैनिक गति $=\frac{12474720576000}{1577917500}$ योजन ।

$$=\frac{8316480384}{1051945} \text{ योजन ।}$$

$$=7905\frac{855159}{1051945} \text{ योजन ।}$$

$$=7905\frac{13}{16} \text{ योजन (सन्निकटतः) ।}$$

भारतीय ज्योतषियों के अनुसार सभी ग्रह पृथ्वी के चारों ओर समान गति से घूमते थे । आधुनिक ज्योतिष के अनुसार सभी ग्रह सूर्य के चारों ओर घूमते हैं और उनकी गति समान नहीं होती । जो ग्रह सूर्य से दूर है वह धीरे घूमता है ।

आकाश कक्ष्या के विषय में भिन्न भिन्न आचार्यों के भिन्न भिन्न मत हैं । लल्लाचार्य ने वही मान दिया है जो आर्यभटीय का मान है[1]; अन्य आचार्यों ने कल्पचन्द्रभगण को 324000 से गुणा करने पर जो संख्या प्राप्त हो उसे आकाश कक्ष्या माना है । युग चन्द्र भगण तथा 324000 के गुणनफल को भट्टोत्पल ने प्रत्येक ग्रह का चतुर्युगीय पथ कहा है[2] । आचार्यों के युग चन्द्र भगण तथा एक कल्प में युगों की संख्या भिन्न भिन्न है । इनके अनुसार आकाशकक्ष्या के मान नीचे दिये हैं ।

पुलिशाचार्य[3] : 18,861,777,510,912,000 योजन ।

सूर्यसिद्धान्त[4] 18,712,080, 864,000,000 योजन ।

ब्रह्मगुप्त[5] 18,712,069,200,000, 00 योजन ।

श्रीपति और भास्कर द्वितीय ने ब्रह्मगुप्त के ही मान दिये हैं[6] ।

महाभास्करीय के प्रथम अध्याय की बीसवीं आर्या की व्याख्या करते हुये गोविन्द स्वामी ने लिखा है : आकाश का जो प्रदेश सूर्य की किरणों द्वारा प्रकाशित होता है उसे

---

[1]शिष्यधीवृद्धिद, मध्यमाधिकार, 13 ।

[2]वृहत्संहिता, वाराणसी, पृ. 48 ।

[3]वही, पृ. 48 ।

[4]सूर्यसिद्धान्त, द्वादश अध्याय, श्लोक 90 ।

[5]ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त, इक्कीसवाँ अध्याय, आर्या 11 ।

[6]सिद्धान्तशेखर, द्वितीय अध्याय, श्लोक 62 तथा सिद्धान्तशिरोमणि, कक्षाध्याय श्लोक 1 ।

अम्बर कहते हैं। उसी की परिधि के तुल्य ग्रह चलते हैं। अन्यथा आकाश का कुल प्रमाण अपरिमित है। अल्बिरूनी भी आर्यभट के अनुयायियों के लिए ऐसा ही कहते हैं[1]।

भास्कर प्रथम से लेकर नीलकण्ठ तक आर्यभटीय के सभी भाष्यकारों ने इस आर्या के 'प्राणेनैतिकलां भूः' को 'प्राणेनैतिकलां भं' में परिवर्तित करके व्याख्या लिखी है। गोविन्द स्वामी ने महाभास्करीय के भाष्य में दो स्थानों पर उसे उद्धृत किया है और दोनों स्थानों पर 'भूः' को भं में परवर्तित कर दिया है। परन्तु वास्तविक पाठ 'भूः' है क्योंकि ब्रह्मगुप्त ने आर्यभट की आलोचना करते हुए लिखा है[2]।

'प्राणेनैति कलां भूर्यदि तर्हि कुतो व्रजेत कमध्वानम्।
आवर्त्तनमुर्व्याश्चेन्न पतन्ति समुच्छ्रयाः कस्मात्॥'

अर्थात् यदि पृथ्वी एक प्राण में एक कला घूमती है तो आदमी किसी स्थान से किस मार्ग से आते जाते हैं और यदि पृथ्वी का भ्रमण नीचे या ऊपर होता है तो ऊँचे प्रासाद पर्वत आदि क्यों नहीं गिर पड़ते ?

पृथूदक स्वामी ने ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त के गोलाध्याय की 30 वीं आर्या की व्याख्या करते हुए लिखा है 'यदि फिर पृथ्वी के घूमने की कल्पना करें और नक्षत्र मण्डल को स्थिर मानें तो भी प्रतिदैवसिक उदय अस्त संभव है। आचार्य आर्यभट्ट ने भू भ्रमण माना है क्योंकि दशगीतिका में कहा है कि 'प्राणेन कलां भूः' तथा आर्याष्टशत में कहा है।

अनुलोम गतिर्नौस्थः पश्यत्यचलं विलोमगं यद्वत्।
अचलानि भानि तद्वत् समपश्चिमगानि लंकायाम्॥

परन्तु लोकभय से भास्कर आदि ने अन्यथा मानकर इन आर्याओं की व्याख्या की है।'

यह लोकभय वराहमिहिर आदि अन्य आचार्यों के मत के कारण था जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है।

केवल सिद्धान्तशेखर के भाष्यकार मक्कीभट्ट ने स्पष्ट शब्दों में आर्यभट के दृष्टिकोण का समर्थन किया है। वे लिखते हैं : "भूमिः प्राङ्मुखी भ्रमति, सा च यावत्तावतो वारान् क्षितिजे रविणा सह सम्बध्यते तावन्ति सावनदिनानि भूदिनानीत्युच्यन्ते," अर्थात् पृथ्वी पूर्व की ओर घूमती है। वह जितनी बार क्षितिज पर सूर्य के साथ मिलती है उतने ही सावन दिन अथवा भूदिन होते हैं[3]। मक्कीभट्ट ने अपना भाष्य शक 1299 अर्थात् ईस्वी सन् 1377 में लिखा था।

---

[1]सखाऊ का अनुवाद, भाग 1, पृ. 225।
[2]ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त, तन्त्रपरीक्षाध्याय, आर्या 17।
[3]सिद्धान्तशेखर, बबुआ जी मिश्र द्वारा सम्पादित तथा कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित, पृ. 25।

प्रसिद्ध विद्वान् अप्पय दीक्षित ने अमलानन्द के वेदान्तकल्पतरु के भाष्य (वेदान्त-कल्पतरुपरिमल) में लिखा है : (आर्यभटाद्यभिमतभूभ्रमणादिवादानां श्रुतिन्याय-विरोधेन हेयत्वात्") अर्थात् आर्यभट आदि द्वारा अभिमत भूभ्रमण का वाद श्रुति और न्याय के विरुद्ध होने के कारण हेय है। अप्पय दीक्षित 16 वीं शताब्दी में थे। कदाचित् मक्कीभट्ट की भाँति कुछ अन्य ज्योतिषी भी आर्यभट के मत के रहे हों। इसी कारण अप्पय दीक्षित ने आर्यभटादि कहा है।

नृषियोजनं त्रिला भूव्यासोऽर्केन्द्वोर्घ्रिज्ञागिण क मेरोः।
भृगुगुरुबुधशनिभौमाश्शशि ङ्ञणनमांशकास्समार्कसमाः ॥५॥

अनुवाद—षि अर्थात् 8000 'नृ' (नर) के बराबर योजन होता है। पृथ्वी का व्यास (त्रि=1000)+(ला=50) अर्थात् 1050 योजन है। सूर्य का व्यास (घि=400)+रि=4000)+(ञ=10) अर्थात् 4410 योजन है। चन्द्रमा का व्यास (गि=300)+(ण=15) अर्थात् 315 योजन है और मेरु का व्यास क अर्थात् एक योजन है।

शुक्र, वृहस्पति, बुध, शनि तथा मंगल के व्यास चन्द्रमा के व्यास के क्रमशः 5, 10, 15, 20 तथा पचीसवें भाग हैं। युग के वर्षों की संख्या सूर्य के भगण के तुल्य होती है ॥ 5 ॥

परमेश्वर के अनुसार ग्रहों के ये व्यास चन्द्रमा की दूरी पर हैं अर्थात् कलाओं में उनके मान चन्द्रमा के बिम्ब कलाओं के ऊपर बताये भाग हैं। इनका स्फुट व्यास इन कलाओं में मन्द कर्ण और शीघ्रकर्ण के योग के आधे से गुणा करने पर प्राप्त होता है।

भास्कर प्रथम ने पृथ्वी, सूर्य और चन्द्रमा के व्यासों का मान वही दिया है जो आर्यभट ने दिया है। लल्लाचार्य, जो आर्यभट के अनुयायी हैं और उन्हीं की तरह चन्द्रमा की कक्ष्या की एक कला का मान 10 योजन मानते हैं, सूर्य और पृथ्वी के व्यासों का मान आर्यभट के अनुसार देते हैं पर चन्द्रमा के व्यास को 320 योजन मानते हैं। अन्यों के मान इन मानों के लगभग ड्योढ़े हैं।

भास्कर प्रथम ने ग्रहों के बिम्बमान प्राप्त करने के लिए 32 को पांच आदि से विभाजित करने को कहा है[1]। परन्तु भाष्यकार गोविन्दस्वामी ने साढ़े इकत्तीस को 5 आदि से विभाजित करने को कहा है क्योंकि उनके अनुसार कलाओं में चन्द्रबिम्ब का मान इतना ही है। नीचे की सारणी में ये मान विभिन्न ग्रंथों के अनुसार दिये हैं।

---

[1]महाभास्करीय, षष्ठ अध्याय, श्लोक56।

		बुध	शुक्र	मंगल	बृहस्पति	शनिश्चर
(क) आर्यभट के अनुसार	चन्द्रमा की दूरी पर योजनों में	21	63	12.6	31.5	15.75
	कलाओं में	2′ 6″	6′ 18″	1′ 15.6″	3′ 9″	1′ 34.5″
(ख) , नुसार	चन्द्रमा की दूरी पर योजनों में	21.3	64	12.8	32	16
	कलाओं में	2′ 8″	6′ 24″	1′ 16″	3′ 12″	1′ 36″
(ग) सूर्यसिद्धांत के अनुसार	चन्द्रमा की दूरी पर योजनों में	45	60	30	52½	37½
	कलाओं में	3′	4′	2′	3′ 30″	2′30″
(घ) लघुमानस के अनुसार	कलाओं में	3′ 31″	5′ 43″	2′ 44″	4′ 5″	2′ 38″
(ङ) टइको ब्राहे के अनुसार	कलाओं में	2′ 10″	3′ 15″	1′ 40″	2′ 45″	1′ 50″
(च) ब्रह्मगुप्त के अनुसार	कलाओं में	6′ 14″	9′ 0″	4′ 46″	7′ 22″	5′ 24″
(छ) भास्कर द्वितीय के अनुसार	कलाओं में	6′ 15″	9′ 0″	4′ 45″	7′ 20″	5′ 20″
(ज) आधुनिक मान कलाओं में	अधिकतम	9′ 10.5″	6′ 24″	1′ 51″	4′ 54″	57.5″
	न्यूनतम	31″	1′ 2.4″	23″	3′ 19.2″	51.8″

यहाँ यह दृष्टव्य है कि ब्रह्मगुप्त और भास्कराचार्य के मान अन्यों से बहुत भिन्न हैं।

ब्रह्मगुप्त ने आर्यभट के पृथ्वी के व्यास के मान की समालोचना की है। यह समालोचना तन्त्राध्याय की पन्द्रहवीं आर्या में की गई है। छपी पुस्तक में पाठ बहुत अशुद्ध है।[1] शुद्ध पाठ नीचे दिया जाता है :

गसगियि योजन परिधिं षञिभूव्यासं पुनर्त्रिला वदता।
आत्मज्ञानं ख्यापितमनिश्चयस्तत्कृतव्यासः ॥

पृथ्वी की परिधि को ग स गि यि अर्थात् 3393 योजन (ग=3, स=90, गि=300, यि=3000) पृथ्वी के व्यास को 1080 योजन (ष=80, ञि=1000), और फिर 1050 योजन (ञि=1000, ला=50) कहते हैं। इस से आत्मज्ञान मात्र को प्रसिद्ध किया है। वस्तुतः उनके मत से भूव्यास अनिश्चित है।

आर्यभट ने आर्यभटीय में भूव्यास को 1050 योजन दिया है और भूपरिधि के मान के विषय में चुप हैं। वटेश्वर ने अपने सिद्धान्त में भूव्यास का मान 1074 योजन दिया है[2]। यह मान 1080 योजन के बहुत समीप है। अतएव यह सम्भव है कि आर्यभटीय लिखने के पश्चात् आर्यभट ने फुटकर श्लोकों द्वारा अथवा अपनी दूसरी पुस्तक में, जो अब अप्राप्य है, ये मान दिये हों। आर्यभट के अनुसार परिधि और व्यास का अनुपात 3927:1250 है। इससे 1080 में गुणा करने से 3392.928 मिलता है जो सन्निकटतः 3393 के तुल्य है।

भापक्रमो ग्रहांशाश्शशिविक्षेपोऽपमण्डलाज्झार्धं।
शनिगुरुकुज खकगार्धं भृगुबुध ख स्चाङ्गुलो घहस्तो ना ॥६॥

अनुवाद—विषुवत्त वृत्त से ग्रहों का अपक्रम 'भ' अर्थात् 24 अंश है अर्थात् सूर्य आदि ग्रह विषुवत वृत्त से 24 अंश उत्तर या दक्षिण जाते हैं। अपमण्डल अर्थात् क्रान्तिवृत्त से चन्द्रमा का विक्षेप अथवा शर 'झ' अर्थात् नव का आधा अर्थात् साढ़े चार अंश है। शनि का विक्षेप 'ख' अर्थात् 2 अंश है, बृहस्पति का विक्षेप 'क' अर्थात् 1 अंश है' मंगल का विक्षेप 'ग' अर्थात् 3 का आधा अर्थात् डेढ़ अंश है, और शुक्र तथा बुध के विक्षेप 'ख' अर्थात् 2 अंश हैं। 'स्च' (स=90, च=6) अर्थात् 96 अंगुल अथवा 'घ' अर्थात् 4 हाथ का नर अथवा पुरुष होता है ॥6॥

जिस मार्ग से सूर्य अपनी वार्षिक गति में चलता है उसे क्रान्तिवृत्त कहते हैं। यह वृत्त खगोलीय विषुवत् वृत्त के साथ 24 अंश का कोण बनाता है। यह मान्यता भारतीय ज्योतिषियों की है। वर्त्तमान काल में यह कोण 23½ अंश से कुछ कम है।

---

[1]ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त, पृ. 673, आर्या 15।

[2]वटेश्वर सिद्धान्त, मध्यमाधिकार, अष्टम अध्याय, श्लोक 3।

चन्द्रमा एवं बुध आदि ग्रहों की कक्ष्याएँ इस क्रान्तिवृत्त पर झुकी हुई हैं। जिन बिन्दुओं पर इनके कक्ष्यावृत्त क्रान्तिवृत्त को काटते हैं उन्हें पात कहते हैं। चन्द्रपात तथा अन्य पातों का स्थान क्रान्तिवृत्त पर स्थिर नहीं है। ये बिन्दु उल्टो दिशा में अर्थात् पूर्व से पश्चिम को घूमते हैं। दशगीतिका की दूसरी आर्या में चन्द्रपात की युगीय भ्रमण संख्या दी गयी है। कक्ष्या वृत्त पात बिन्दुओं पर क्रान्तिवृत्त के साथ जो कोण बनाते हैं उनके मान विभिन्न आचार्यों के अनुसार नीचे की सारणी में दिये हैं।

	आर्यभटीय	सू. सि.	ब्रा. स्फु. सि. एवं सि.शि.	पंच सि.	सि.शे.	आधुनिक
चन्द्रकक्ष्या	270′	270′	270′	270′	270′	309′
बुधकक्ष्या	120′	120′	152′	135′	152′	420′
शुक्रकक्ष्या	120′	120′	136′	101′	136′	204′
मंगलकक्ष्या	90′	90′	110′	101′	110′	111′
बृहस्पतिकक्ष्या	60′	60′	76′	101′	86′	78′
शनिश्चरकक्ष्या	120′	120′	130′	135′	130′	150′

यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि बुध और शुक्र के लिए भारतीय ज्योतिषियों द्वारा दिये मान भूकेन्द्रीय हैं और आधुनिक मान रविकेन्द्रीय हैं। यदि रविकेन्द्रीय मानों को भूकेन्द्रीय मानों में परिवर्तित करें तो बुध के लिए यह मान 157′ 30″ और शुक्र के लिए 147′ 20″ है। सिद्धान्त शेखर में सभी बातें ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त के अनुसार हैं। अत एव संभव है कि बृहस्पतिकक्ष्या का भिन्न मान पाठ की अशुद्धता के कारण हो।

परमेश्वर ने आर्यभटीय के भाष्य में कहा है[1] 'इह विक्षेपकथने शन्यादीनां भृगुबुधयोश्च पृथग्ग्रहणं कृतं। तेन तेषां तयोश्च विक्षेपानयने प्रकारभेदोऽस्तीति सूचितं।, अर्थात् इस विक्षेपकथन में शनि आदि का मान बुध एवं शुक्र से पृथक् कहा है। इससे यह सूचित किया है कि विक्षेप प्राप्त करने में इन सब के लिए उन दोनों से अलग विधि का उपयोग किया जाता है।

इसीलिए बुध और शुक्र के लिए रविकेन्द्रीय तथा भूकेन्द्रीय विक्षेपों में अन्तर होता है। पर अन्यों के लिए नहीं होता है।

---

[1]परमेश्वरकृत आर्यभटीयभाष्य, पृ. 11।

बुध भृगुकुजगुरुशनि नवराषह[1] गत्वांशकान्प्रथमपाताः ।
सवितुरमीषाञ्च तथा द्वा ञखि सा ह्दा ह्लय खिच्य मन्दोच्चं ॥७॥

अनुवाद—बुध, शुक्र, मंगल, बृहस्पति तथा शनिश्चर के प्रथम पात मेषादि से गमन करके क्रमशः 'न' 'व' 'र' 'ष' 'ह' अंशों पर स्थित हैं, अर्थात् बुध का पात 20 अंश पर, शुक्र का 60 अंश पर, मंगल का 40 अंश पर, बृहस्पति का 80 अंश पर तथा शनिश्चर का 100 अंश पर हैं। सूर्य और इनके (अर्थात् उसी क्रम में) मन्दोच्च 'द्वा' (दा=18,वा=60) अर्थात् 78 अंश पर, बुध का मन्दोच्च ञखि (ञ=10, ख=200) अर्थात् 210 अंश पर, शुक्र का सा अर्थात् 90 अंश पर, मंगल का मन्दोच्च हदा (हा=100, दा=18) अर्थात् 118 अंश पर, बृहस्पति का मन्दोच्च ह्लय (ह=100, ल=50, य=30) अर्थात् 180 अंश पर एवं शनि का मन्दोच्च खिच्य (ख=200, च=6, य=30) अर्थात् 236° अंश पर स्थित हैं ॥7॥

'गत्वा' का अर्थ है कि चन्द्रपात और चन्द्रोच्च की तरह बुध, शुक्र, मंगल, बृहस्पति तथा शनिश्चर के पात विलोम दिशा में और सूर्य एवं इन ग्रहों के मन्दोच्च अनुलोम दिशा में गतिशील हैं। परन्तु इनकी गति बहुत ही धीमी है। अतएव आर्यभट ने इनकी गति का मान नहीं दिया है। केवल अपने समय में इनकी स्थिति कही है। कालक्रिया की चौथी आर्या में कहा है कि प्रत्येक ग्रह के उच्च के भगण और स्वयं उसके भगण के अन्तर के तुल्य उनके नीचोच्च वृत का परिभ्रमण होता है। गोलपाद की द्वितीय आर्या में भी पातों को गतिशील बताया है। फिर भी ब्रह्मगुप्त लिखते हैं।[2]

आर्याष्टशते पाता भ्रमन्ति दशगीतिके स्थिराः पाता :।
मुक्त्वेन्दुपातमपमण्डले भ्रमन्ति स्थिरा नातः ॥

अर्थात् आर्याष्टशत में पात भ्रमणशील हैं और दशगीतिका में चन्द्रपात को छोड़ कर अन्य सभी स्थिर कहे गये हैं। वस्तुतः अपमण्डल में पात भ्रमणशील हैं, वे स्थिर नहीं हैं। गणितपाद, कालक्रियापाद और गोलपाद में कुल 108 आर्याएँ हैं। अतएव उन्हें ब्रह्मगुप्त ने 'आर्याष्टशत' नाम दिया है। प्रथम खण्ड में दशगीति आर्याओं में कल्पमान, भगण आदि कहे गये हैं। इसे दशगीतिका कहते हैं।

ब्रह्मगुप्त की इस आर्या के भाष्य में सुधारक द्विवेदी जी लिखते हैं :

"भौमादिमन्दपातानां वर्षशतेनापि गतिर्नोपलक्ष्यत इति स्वसमये आर्यभटेन स्थिराः पठिता इति वस्तुतो न किमपि दूषणमिहाचार्यस्याग्रह एव स्पष्टः," अर्थात् भौमादि के मन्दपात की गति सौ वर्ष में भी नहीं देखी जा सकती। आर्यभट ने अपने समय के मन्दपात की स्थिति का पाठ दिया है। इसमें कोई दोष नहीं है इससे आचार्य का दुराग्रह स्पष्ट है।

---

[1]यह पाठ भास्कर प्रथम के अनुसार है। सूर्यदेव एवं परमेश्वर ने न व र ष हा पाठ दिया है।
[2]ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त, तन्त्रपरीक्षाध्याय, आर्या 8।

झार्धानित्तं मन्दवृ शशिनश्छ गछघढछझ यथोक्तेभ्यः :
झ ग्ड ग्ल इ्ल[1]द्ड तथा शनिगुरुकुजभृगुबुधोच्चशीघ्रेभ्यः ॥८॥
मन्दात् ङ खदजडा वक्रिणां द्वितीये पदे चतुर्थे च ।
जा ण क्ल छ्ल झ्नोच्चाच्छीघ्रात् गियिङश कुवायु कक्ष्यान्त्या ॥९ ॥

अनुवाद—'झ' के आधे अर्थात् 9 के आधे साढ़ेचार से विभाजित करने पर चन्द्रमा के मन्दवृत्त की परिधि 'छ' अर्थात् 7, ऊपर कहे ग्रहों के मन्दवृत्तों की परिधियाँ यथाक्रम 'ग' (=3), 'छ' (=7), 'घ' (=4), 'ढ' (=14), 'छ' (=7)तथा 'झ' (=9)हैं अर्थात् सूर्य की मन्द परिधि 3, बुध की 7, शुक्र की 4, मंगल की 14, बृहस्पति की 7 तथा शनिश्चर की मन्द परिधि 9 (प्रथम तथा तृतीय पदों में) हैं। शनि, बृहस्पति, मंगल, शुक्र तथा बुध की शीघ्र परिधियाँ (प्रथम तथा तृतीय पदों में) क्रमशः 'झ' अर्थात् 9, 'ग्ड' अर्थात् 16 (ग=3, ड=13), 'ग्ल अर्थात् 53 (ग=3, ल=50), 'इ्ल' अर्थात् 59 (झ=9, ल=50) एवं 'द्ड' अर्थात् 31 (द=18, ड=13) हैं ॥8॥

मन्दगति के कारण द्वितीय तथा चतुर्थ पदों में ऊपर के उलटे क्रम में अर्थात् बुध शुक्र, मंगल, बृहस्पति, शनिश्चर क्रम में ग्रहों के मन्दवृत्तों की परिधियों के मान 'ङ,, 'ख', 'द', 'ज', 'डा' हैं अर्थात् बुध का 5, शुक्र का 2, मंगल का 18, बृहस्पति का 8 तथा शनि का 13 हैं। पूर्व कहे क्रम में अर्थात् शनि, बृहस्पति, मंगल, शुक्र तथा बुध क्रम में शीघ्र परिधियों के मान 'जा' (=8), 'ण' (=15), 'क्ल' (=51), 'छ्ल' (=57), तथा 'झ्न' (=29) हैं। भूवायु कक्ष्या का मान (गि=300)+(यि=3000)+(ङ=5)+(श=70) अर्थात् 3375 योजन है ॥9॥

इन आर्याओं में मन्द और शीघ्र परिधियों का मान अंशों में यह मान कर दिया गया है कि कक्ष्या की परिधि 360 अंश है। चन्द्रमा के मन्दवृत्त की परिधि का मान $7 \times 4\frac{1}{2} = 31\frac{1}{2}$ अंश कहा गया है। इसका यह अर्थ है कि चन्द्रमा के नीचोच्च वृत्त की परिधि : चन्द्रमा की कक्ष्या की परिधि $= 31\frac{1}{2}° : 360°$।

मन्दकेन्द्र और शीघ्रकेन्द्र के मान ग्रह की स्थिति और मन्दोच्च तथा शीघ्रोच्च की स्थिति पर निर्भर करते हैं। इनकी परिभाषा निम्नलिखित है :

मन्दकेन्द्र=ग्रह का रेखांश—मन्दोच्च का रेखांश,
शीघ्रकेन्द्र=शीघ्रोच्च का रेखांश—ग्रह का रेखांश।

मन्दकेन्द्र और शीघ्रकेन्द्र के मान शून्य अंश और 90 अंश के बीच में हों ता वे प्रथम पद में हैं, 90 अंश और 180 अंश के बीच में हों तो वे द्वितीय पद में हैं, फिर 270 अंश तक तृतीय पद में और इसके पश्चात् 360 अंश तक चतुर्थ पद में हैं।

---

[1]यह पाठ सूर्यदेव, परमेश्वर तथा भूतविष्णु के अनुसार है; भास्कर का पाठ 'झ' ग्ड ग्ला घं है।

आर्यभट ने बुध, शुक्र, मंगल बृहस्पति तथा शनिश्चर की मन्द और शीघ्र परिधियों के मान सम और विषम पदों में अलग अलग दिये हैं। पर यह नहीं बताया कि ये मान पदों के प्रारम्भ के हैं अथवा पदों के अन्त के हैं।

ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त तथा सूर्यसिद्धान्त में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि कौन से मान विषम पदान्त के हैं और कौन से युग्म पदान्त के हैं। नीचे की सारणियों में ये मान दिये जा रहे हैं।

मन्दवृत्त की परिधियाँ

	आर्यभटीय		सूर्यसिद्धान्त		ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त	
	विषमपद	युग्मपद	विषमपदान्त	युग्मपदान्त	विषम पदान्त	युग्मपदान्त
सूर्य	$13\frac{1}{2}°$	$13\frac{1}{2}°$	13° 40′	14°	13° 40′	13° 40′
चन्द्रमा	$31\frac{1}{2}°$	$31\frac{1}{2}°$	31° 40′	32°	31° 36′	31° 36′
बुध	$31\frac{1}{2}°$	$22\frac{1}{2}°$	28°	30°	38°	38°
शुक्र	18°	9°	11°	12°	9°	11°
मंगल	63°	81°	72°	75°	70°	70°
बृहस्पति	$31\frac{1}{2}°$	36°	32°	33°	33°	33°
शनिश्चर	$40\frac{1}{2}°$	$58\frac{1}{2}°$	48°	49°	30°	30°

इस सारणी में सूर्य तथा चन्द्रमा के लिए ब्रह्मगुप्त द्वारा कही हुई मध्याह्नकालिक मन्द परिधियाँ दी हुई हैं। मध्याह्न काल से भिन्न होने पर ये परिधिमान भी भिन्न होते हैं।

शीघ्र वृत्त की परिधियाँ

	आर्यभटीय		सूर्यसिद्धान्त		ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त	
	विषमपद	युग्मपद	विषमपद	युग्मपद	विषमपद	युग्ममद
बुध	$139\frac{1}{2}°$	$130\frac{1}{2}°$	132°	133°	132°	132°
शुक्र	$265\frac{1}{2}°$	$256\frac{1}{2}°$	260°	262°	263°	258°
मंगल	$238\frac{1}{2}°$	$229\frac{1}{2}°$	232°	235°	243° 40′	243° 40′
वृहस्पति	72°	$67\frac{1}{2}°$	72°	70°	68°	68°
शनिश्चर	$40\frac{1}{2}°$	32°	40°	39°	35°	35°

ब्रह्मगुप्त ने ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त में आर्यभट की मन्द परिधियों की तथा शीघ्र परिधियों की आलोचना की है[1]। इन पर सुधाकर द्विवेदी जी की टिप्पणियाँ हैं 'असद्दूषण-मेतत् 'मन्दपरिधिखण्डनवदिदं खण्डनमप्यसत्,, 'वाग्बलमेतत्' तथा 'इदमपि वाग्बलम्'। इन टिप्पणियों से स्पष्ट है कि ब्रह्मगुप्त की आलोचनाएँ पूर्वाग्रह पूर्ण हैं।

आर्यभट ने भूवायु की कक्ष्या 3375 योजन कही है। अतएव भूवायु का व्यास 1074.3 योजन और पृथ्वी की सतह से भूवायु की अन्तिम ऊँचाई 12.15 योजन हुई।

मखि भखि फखि धखि णखि ञखि ङखि हस्झ स्ककि किष्ग श्घकि किघ्व।
घ्लकि किग्र हक्य धकि किच स्ग श्झ ङ्व ल्क प्त फ छ कलार्धज्याः ॥१०॥

अनुवाद—अर्धज्याखण्डों के मान कलाओं में मखि अर्थात् 225, भखि अर्थात् 224, फखि अर्थात् 222, धखि अर्थात् 219, णखि अर्थात् 215, ञखि अर्थात् 210, ङखि अर्थात् 205, हस्झ अर्थात् 199, स्ककि अर्थात् 191, किष्ग अर्थात् 183, श्घकि अर्थात् 174, किघ्व अर्थात् 164, घ्लकि अर्थात् 154, किग्र अर्थात् 143, हक्य अर्थात् 131, धकि अर्थात् 119, किच अर्थात् 106, स्ग अर्थात् 93, श्झ अर्थात् 79, ङ्व अर्थात् 65, ल्क अर्थात् 51, प्त अर्थात् 37, फ अर्थात् 22, छ अर्थात् 7 हैं।

ये मान 3° 45′ के अन्तर पर कहे गये हैं। इनसे क्रमज्या तथ उत्क्रमज्या दोनों

[1]ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त, द्वितीय अध्याय, आर्या 33 एवं एकादश अध्याय, आर्याएँ 18 से 21 तक।

ही प्राप्त हो सकते हैं जैसा नीचे की सारणी से स्पष्ट है। उत्क्रमज्या प्राप्त करने लिए इन खण्डों को उलटे क्रम में लेना होता है।

कोण	खण्ड अर्ध-ज्या	पिण्ड अर्ध-ज्या	शुद्धमान	खण्डोत्क्रमज्या	पिण्डोत्क्रमज्या
3° 45′	225′	225′	224.856	7′	7′
7° 30′	224′	449′	448.749	22′	29′
11° 15′	222′	671′	670.720	37′	66′
15° 0′	219′	890′	889.820	51′	117′
18° 45′	215′	1105′	1105.109	65′	182′
22° 30′	210′	1315′	1315.666	79′	261′
26° 15′	205′	1520′	1520.589	93′	354′
30° 0′	199′	1719′	1719.000	106′	460′
33° 45′	191′	1910′	1910.050	119′	579′
37° 30°	183′	2093′	2092.922	131′	710′
41° 15′	174′	2267′	2266.831	143′	853′
45° 0′	164′	2431′	2431.033	154′	1007′
48° 45′	154′	2585′	2584.825	164′	1171′
52° 30′	143′	2728′	2727.549	174′	1345′
56° 15′	131′	2859′	2858.592	183′	1528′
60° 0′	119′	2978′	2977.495	191′	1719′
63° 45′	106′	3084′	3083.448	199′	1918′
67° 30′	93′	3177′	3177.531	205′	2123′
71° 15′	79′	3256′	3255.546	210′	2333′
75° 0′	65′	3321′	3320.853	215′	2548′
78° 45′	51′	3372′	3374.940	219′	2767′
82° 30′	37′	3409′	3408.588	222′	2989′
86° 15′	22′	3431′	3430.639	224′	3213′
90° 0′	7′	3438′	3438.000	225′	3438′

आधुनिक समय में अर्धज्या का मान निकालने के लिए वृत्त के अर्द्धव्यास को एक माना जाता है। आर्यभट ने इसका मान 3438′ इस आधार पर माना है कि वृत्त की परिधि में 21600 कलाएँ होती हैं तथा वृत्त की परिधि और व्यास का अनुपात π है। आर्यभट ने π का मान $\frac{3927}{1250}=3.1416$ निकाला था। π के इस मान से अर्द्धव्यास का मान $\frac{10800'}{3.1416}=3437'\ 44''\ 19'''\ 26.08''''$ होगा। आर्यभट ने अर्द्धव्यास का मान सन्नि-

कटतः 3438′ लिया है। वटेश्वर ने अपने सिद्धान्त में अर्द्धव्यास का मान 3437′ 44″ लिया है[1] और गोविन्दस्वामी ने अर्द्धव्यास का मान 3437′ 44″ 19‴ लिया है[2]; परन्तु परिधि का मान 21600′ माना जाय तो अर्द्धव्यास का अधिक शुद्ध मान 3437′ 44″ 48‴ है जिसे माधव ने लिया है[3]।

आर्यभट द्वारा दिये गये अर्धज्या तथा उत्क्रमज्या के मान वही हैं जो सूर्यसिद्धान्त में दिये गये है[4] परन्तु ब्रह्मगुप्त और श्री पति से भिन्न हैं[5] (छपे सि. शे. में 78° 45′ की अर्धज्या का मान अशुद्ध छपा है। इसे नगसागरामराः के स्थान पर नवसागरामराः अर्थात् 3347 के स्थान पर 3349 होना चाहिए)। भास्कर द्वितीय के मान भी वही हैं जो आर्यभट के हैं। केवल 60° की अर्धज्या का मान भास्कर द्वितीय ने 2977 दिया है जो अधिक शुद्ध है[6]।

दशगीतिका सूत्रमिदं भूग्रहचरितं भपञ्जरे ज्ञात्वा[7]।
ग्रहभगणपरिभ्रमणं स याति भित्त्वा परं ब्रह्म ॥ग॥

अनुवाद—नक्षत्रमण्डल में पृथ्वी तथा ग्रहों के गमन का वर्णन करने वाले इस दशगीतिका सूत्र को जो जानता है वह ग्रहों तथा नक्षत्रों के मण्डलों को भेद कर परम ब्रह्म को प्राप्त करता है ॥ग॥

इति गीतिकापाद समाप्त।

---

[1]वटेश्वर सिद्धान्त, स्पष्टाधिकार, प्रथम अध्याय, श्लोक 15 तथा 25।

[2]महाभास्करीयभाष्य, पृ. 200।

[3]नीलकण्ठ कृत तन्त्रसङ्ग्रह पृ. 19।

[4]सूर्यसिद्धान्त, द्वितीय अध्याय, श्लोक 17 से 27 तक।

[5]ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त, द्वितीय अध्याय, आर्या 2 से 9 तक तथा सिद्धान्तशेखर तृतीय अध्याय, श्लोक 3 से 10 तक।

[6]इस आर्या के विभिन्न पाठो में बहुत अन्तर है। पहली पंक्ति में सूर्यदेव ने 'किघ्व' के स्थान पर 'किघ्वा' दिया है। अन्य लोगों ने 'किघ्व' दिया है। परन्तु दूसरी पंक्ति के पाठ में बहुत भेद है। इन्हें नीचे दिया जाता है।
घ्लकि क्रिग्र हक्य धकि किच स्ग झ्श ङ्व क्ल प्त फ छ कलार्धज्याः (भास्कर प्रथम)।
घ्लकि किग्र हक्य घह हच स्ग श्झ ङ्व ल्क प्त फ छ कलार्धज्याः (सूर्यदेव)।
घ्लकि किग्र हक्य घह स्त स्गा झ्श ङ्व ल्क थ्न फ छ कलार्धज्याः (भूतविष्णु)।

[7]इस आर्या के विभिन्न पाठ निम्नलिखित हैं :
दशगीतिक सूत्रमिदं (भास्कर प्रथम)।
दशगीति सूत्रमेतद् (सूर्यदेव एवं भूतविष्णु)।

गणितपाद

ब्रह्मकुशशिबुधभृगुरविकुजगुरुकोणभगणान्नमस्कृत्य ।
आर्यभटस्त्विह निगदति कुसुमपुरेऽभ्यर्चितं ज्ञानम् ॥१॥

अनुवाद—ब्रह्मा, पृथ्वी, चन्द्रमा, बुध, शुक्र, सूर्य, मंगल, वृहस्पति, शनि तथा नक्षत्रों को नमस्कार करके आर्यभट इस कुसुमपुर अर्थात् पाटलिपुत्र नगर में अतिशय पूजित ज्ञान का वर्णन करता है ॥1॥

दशगीतिका में आर्यभट ने कहा था कि वे गणित, कालक्रिया और गोल का वर्णन करेंगे। अब इस मंगलाचरण की आर्या में उसी ज्ञान के लिए कहते हैं कि वह कुसुमपुर में अतिशय पूजित था।

दशगीतिका के मंगलाचरण की आर्या में ब्रह्मा की वन्दना की थी। अब इस आर्या में ब्रह्मा की वन्दना के साथ साथ पृथ्वी और ग्रहों तथा नक्षत्रों की भी वन्दना की तथा यह भी बताया कि पृथ्वी से दूरी की दृष्टि से ग्रहों और नक्षत्रों का क्या क्रम है।

कुछ लोगों का विचार है कि 'इह कुसुमपुरे' से यह इङ्गित होता है कि आर्यभट कुसुमपुर के निवासी थे। परमेश्वर ने लिखा है 'कुसुमपुराख्येऽस्मिन्देशे'। इससे भी उनका कुसुमपुर निवासी होना प्रकट होता है। परन्तु नीलकंठ ने इस आर्या के भाष्य में आर्यभट को 'अश्मकजनपदजात' लिखा है। भास्कर प्रथम ने भी 'स्फुटतन्त्रमाश्मकं' लिखा है।

यह सम्भव है कि आर्यभट ने कुसुमपुर में केवल ज्ञानार्जन किया हो। उस समय कुसुमपुर विद्या का बड़ा केन्द्र था। जैनों के प्रसिद्ध मुनि भद्रबाहु जिनका काल 313 वर्ष ईसा के पूर्व बताया जाता है' यहीं रहते थे। बिहार में अकाल की स्थिति आ जाने के कारण वे दक्षिण में मैसूर के पास श्रवणबेलगोला में जाकर रहने लगे[1]। यह भी गणित का बड़ा केन्द्र था। भद्रबाहु ने सूर्य-प्रज्ञप्ति पर भाष्य लिखा था और एक अन्य ग्रन्थ भद्रभावोसंहिता लिखा था। ये दोनों अब अप्राप्य हैं।

एक अन्य जैन विद्वान् उमास्वाति भी कुसुमपुर में ही रहते थे। श्वेताम्बर जैनियों के अनुसार ये लगभग 150 वर्ष ईसा के पूर्व में थे। परन्तु दिगम्बर जैनियों के अनुसार ये 135 ई. से 219 ई. तक जीवित थे[2]। इस प्रकार ईस्वी पूर्व 300 से लेकर कम से कम आर्यभट के समय तक पाटलिपुत्र, विद्या गणित एवं ज्योतिष का केन्द्र था[3]।

---

[1]A Comprehensive History of India, Vol 2, p 356।
[2]A New History of The Indian People, Vol 6, p 393।
[3]गुप्तसम्राट और उनका काल, डा० उदयनारायण राय, पृ० 207।

एक च दश च शतं च सहस्रमयुतनियुते तथा प्रयुतम् ।
कोट्यर्बुदं च वृन्दं स्थानात् स्थानं दशगुणं स्यात् ॥२॥

अनुवाद—एक, दश, शत, सहस्र, अयुत, नियुत, प्रयुत, कोटि, अर्बुद, तथा वृन्द में प्रत्येक पिछले स्थान वाले से अगले स्थान वाला दश गुना है ॥2॥

साधारणतः यही अर्थ प्रतीत होता है। परन्तु श्री शारदाकान्त गांगुली इससे भिन्न अर्थ करते हैं[1] ।

'प्रथम दश स्थानों के नाम एक, दश, शत, सहस्र, अयुत, नियुत, प्रयुत, कोटि, अर्वद तथा वृन्द हैं; ऊँचे स्थानों के नाम इस नियम से प्राप्त किये जा सकते हैं कि प्रत्येक स्थान अगले नीचे के स्थान का दस गुना है और प्रत्येक स्थान का नाम उस संख्या का बोधक है जिस पर उसका नाम रखा गया है, जैसा प्रथम दस स्थानों से प्रकट है।

उनका कहना है कि जब भारत में वेदों के समय से इन दस स्थानों से अधिक के नाम दिये हैं तब आर्यभट दस ही नाम इस कारण दे रहे हैं कि जिस तरह इन स्थानों में प्रत्येक अपने से नीचे वाले का दस गुना है वैसे ही अन्य स्थानों के लिए समझना चाहिए।

यजुर्वेद के चौथे काण्ड के चौथे प्रपाठक के मन्त्र 4.11 में एक, दश, शत, सहस्र, अयुत, नियुत, प्रयुत, अर्बुद, न्यर्बुद, समुद्र, मध्य, अन्त्य, परार्ध ये तेरह नाम दिये हैं। इनमें प्रयुत तक वही नाम हैं जो आर्यभट ने दिये हैं। उसके पश्चात् कुछ अन्तर है। जैन ग्रंथ अनुयोगद्वारसूत्र (लगभग 100 वर्ष ईसा पूर्व) में 10^{29} से बड़ी संख्याओं के नाम दिये हैं। बौद्ध वाङ्मय में 10^{53} तक की संख्याओं के नाम आते हैं।

श्रीधराचार्य, भास्कराचार्य तथा नारायण पण्डित ने 18 स्थानों तक के नाम दिये हैं। महावीराचार्य ने 24 स्थानों तक के नाम दिए हैं। अर्बुद तक इनके नाम वही हैं जो आर्यभट ने दिए हैं। केवल नियुत के स्थान पर इन सभी ने लक्ष दिया है और वृन्द के स्थान पर अब्ज दिया है। शेष नये स्थानों के नाम हैं। अल्बिरूनी ने भी इन 18 स्थानों के नाम दिये हैं[2]। परन्तु उन्होंने अर्बुद की जगह न्यर्बुद लिखा है तथा मध्य को सोलहवें स्थान पर और अन्त्य को सत्रहवें स्थान पर रखा है। आर्यभट के नामों में भी उन्होंने थोड़ी गड़बड़ की है और प्रयुत के बाद कोटिपद्म तथा परपद्मनाम दिये हैं।

श्री गांगुली का विचार है कि आर्यभटीय पहला ग्रन्थ है जिसमें स्थानीय मान और दशमलव प्रणाली का विवेचन किया गया है। परन्तु डा. विभूतिभूषण दत्त का मत

---

[1]शारदाकान्त गांगुली, अमेरिकन मैथेमेटिकल मंथली, 34, (1927), 409।
[2]सखाऊ कृत अनुवाद, भाग 1, पृ० 175।

है कि ईस्वी सन् के प्रवर्तन से पूर्व भारत में दशमलव पद्धति का प्रचार था[1]। बख्शाली पोथी में भी संख्याओं को दशमलव पद्धति से लिखने के उदाहरण हैं और इसे तीसरी शताब्दी का माना जाता है।

वर्गः समचतुरश्रः फलञ्च सदृशद्वयस्य संवर्गः।
सदृशत्रयसंवर्गो घनस्तथा द्वादशाश्रिः[2] स्यात् ॥३॥

अनुवाद—जिस क्षेत्र की चारों भुजाएँ बराबर हों तथा चारों कोण परस्पर बराबर हों उसे समचतुरश्र कहते हैं। इस क्षेत्र विशेष को वर्ग कहते हैं। इसके क्षेत्रफल को तथा दो सदृश संख्याओं के गुणनफल को वर्ग कहते हैं।

तीन सदृश संख्याओं के गुणनफल को घन कहते हैं। बारह किनारे वाला ठोस जिसके सब कोण बराबर हों घन कहलाता है और उसका आयतन उसके तीन किनारों के गुणनफल के बराबर होता है ॥3॥

इस आर्या में आर्यभट ने संक्षेप में केवल यही कहा है कि दो सदृश संख्याओं के गुणनफल को वर्ग कहते हैं परन्तु ब्रह्मगुप्त ने वर्ग निकालने की विधि का भी वर्णन किया है। परन्तु उन्होंने या उनके भाष्यकार पृथूदक स्वामी ने गुणा करने की विधि का विस्तृत वर्णन नहीं दिया है। यह विधि श्रीधराचार्य की पाटी गणित के भाष्यकार ने दिया है। यह विधि उससे भिन्न है जिसे क़ुश्यार इब्न लब्बान ने अपनी पुस्तक 'किताब फ़ी उसूल हिसाबुलहिन्द' में दिया है। इब्न लब्बान की विधि नीचे दी जा रही है।

पहले गुण्य और गुणक को इस प्रकार लिखा जाता है कि गुणक का प्रथम अंक गुण्य के अन्तिम अंक के नीचे हो। फिर गुणक के अन्तिम अंक से गुण्य के अन्तिम अंक में गुणा करके गुणक के अन्तिम अंक के ऊपर लिखा जाता है।

325	6 325
243	243

अब गुणक के अगले अंक से गुण्य के अन्तिम अंक में गुणा किया जाता है। और इस अंक के ऊपर लिखा जाता है और गुणनफल 9 से अधिक हो तो दहाई के अंक को गुणनफल के पहले प्राप्त अंक में जोड़ दिया जाता है।

7 2 3 2 5
2 4 3

---

[1]विभूतिभूषण दत्त, बुलेटिन आफ कैलकटा मैथेमेटिकल सोसायटी, 21, (1930) पृ० 139।

[2]यह पाठ नीलकंठ ने अपने भाष्य में दिया है। कर्न ने 'द्वादशाग्रः' तथा पं० बलदेव मिश्र ने 'द्वादशास्रः' पाठ दिया है।

फिर गुणक के अगले अंक से गुण्य के अन्तिम में गुणा करके लिखा जाता है। यदि यह गुणक का प्रथम अंक है तो गुणनफल को इसके ऊपर लिख कर गुण्य के अन्तिम अंक को मिटा दिया जाता है।

72925
243

अब गुण्य के द्वितीय अंक में गुणक के अन्तिम अंक से गुणन करके गुणक के द्वितीय अंक के ऊपर के अंक में जोड़ा जाता है और यह फल मिलता है :

769 25
243

यदि गुणनफल दस से अधिक होता है तो दहाई के स्थान के अंक को गुणनफल के बायीं ओर के अंक में जोड़ दिया जाता है। अब गुणक के द्वितीय अंक से गुण्य के उसी अंक को गुणित करके उसकी दायीं ओर के अंक में जोड़ा जाता है। योग 17 है। अतएव 1 को 6 में जोड़ दिया जाता है और फल मिलता है :

777 25
243

अब 3 से गुणा करके 3 के ऊपर एक स्थान दाहिने रखकर 2 को मिटा दिया जाता है और अब फल मिलता है :

7776 5
243

अब 2 से 5 में गुणा करके शून्य को 2 से दो स्थान दाहिने के अंक के ऊपर के गुणनफल के अंक 7 में और 1 को इसके बायें स्थान के अंक 7 में जोड़ा जाता है और फल मिलता है :

7876 5
243

अब 4 से 5 में गुणा करके शून्य को 6 में और 2 को इसके बायें के अंक 7 में जोड़ा जाता है और फल मिलता है :

7896 5
243

ऐसे ही गुणक के अन्तिम अंक के साथ किया जाता है और फल मिलता है :

78975

ब्रह्मगुप्त ने संख्याओं के घन निकालने की विधि का भी वर्णन किया है जो वही है जिसे श्रीधराचार्य और भास्कराचार्य ने दिया है।

भागं हरेदवर्गान्नित्यं द्विगुणेन वर्गमूलेन ।
वर्गाद्वर्गे शुद्धे लब्धं स्थानान्तरे मूलम् ॥४॥

अनुवाद—अवर्ग को (पहले के) वर्ग के वर्गमूल के दूने से सर्वदा विभाजित करना चाहिए । लब्धि के वर्ग को वर्ग में से घटाने पर लब्धि वर्गमूल के अगले स्थान का अंक होगा ॥4॥

दशगीतिका की दूसरी आर्या में वर्ग तथा अवर्ग स्थानों को बताया जा चुका है । दाहिने से प्रथम, तृतीय, पंचम आदि विषम स्थान वर्ग स्थान हैं । और युग्म स्थान अवर्ग स्थान हैं । आचार्य के अनुसार पहले अन्तिम वर्ग स्थान की संख्या से मूल प्राप्त करना चाहिए । फिर उसके दूने से अवर्ग स्थान की संख्या को सर्वदा विभाजित करना चाहिए । इस लब्धि के वर्ग को वर्ग स्थान की संख्या में से घटाना चाहिए और लब्धि को वर्गमूल की पंक्ति में अगले स्थान पर रखना चाहिए । यही क्रिया वर्गमूल की पंक्ति के अगले अंक को प्राप्त करने के लिए फिर करनी चाहिए । नित्य का अर्थ यह है कि भाग सर्वदा देना चाहिए चाहे लब्धि स्थान में शून्य ही प्राप्त हो ।

नीचे क़ुश्यार इब्न लब्बान द्वारा दिये उदाहरण को दिया जा रहा है :

हम 65342 का वर्गमूल निकालना चाहते हैं । इसे हम धूलिपट्टिका पर लिखते हैं और (दाहिने से) दो दो करके तब तक चिह्नित करते हैं जब तक अन्त तक नहीं पहुँच जाते । फिर हम ऐसी संख्या चुनते हैं जिसके वर्ग को वर्ग स्थान की संख्या में से घटाने पर शून्य मिले अथवा शेष इस संख्या से कम हो । इसे हम वर्ग

2
65342
2

स्थान की संख्या के ऊपर और नीचे रखते हैं जैसा चित्र (1) में दिखाया गया है । फिर हम इसके वर्ग को 6 में से घटाते हैं । नीचे के 2 को द्विगुणित करते हैं और इसे और ऊपर के 2 को एक स्थान (दाहिने) हटाते हैं जैसा चित्र 2 में दिखाया गया है । फिर हम ऐसी

2
25342
4

संख्या प्राप्त करना चाहते हैं जिसे हम 3 के नीचे रखते हैं और जिसे 4 से तथा स्वयं उसी से गुणित कर प्राप्त गुणनफल को वर्ग के उस खण्ड में से घटाने पर जो इसके ऊपर है शेष शून्य हो अथवा नीचे की संख्या से कम हो । ऐसी संख्या 5 है । इसे हम 3 के ऊपर नीचे रखते हैं । जैसा चित्र 3 में दिखाया गया है । फिर हम 45 और 5 के गुणनफल को वर्ग खण्ड में से

25
25342
45

घटाते हैं और नीचे के 5 को द्विगुणित करके ऊपर और नीचे की संख्याओं को एक स्थान (दाहिने) हटाते हैं जैसा चित्र (4) में दिखाया गया है।

25
2842
50

हम फिर ऐसी संख्या प्राप्त करते हैं जिसे नीचे की संख्या और स्वयं उसी से गुणित करके गुणनफल को वर्ग में से घटाने पर शेष शून्य हो अथवा ऐसी संख्या हो जो नीचे की संख्या से कम हो। यह संख्या 5 है। इसे हम 2 के ऊपर नीचे रख कर इससे नीचे की संख्या को गुणित करके वर्ग में से घटाते हैं। फिर नीचे के 5 को द्विगुणित करके तथा 1 जोड़ करके रखते हैं जैसा चित्र (5) में दिखाया है। प्राप्त वर्गमूल 255 तथा 1 के 511 भागों में

255
317
511

से 317 भाग है (अर्थात् वर्गमूल $255\frac{317}{511}$ है)।

यदि कोई संख्या पूर्ण वर्ग न हो तो उसके मूल का आसन्न मान प्राप्त करने के लिए ईसा से कई शताब्दी पूर्व जो सूत्र दिया गया था वह था $(क^2+ख)^{\frac{1}{2}}=\left(क+\frac{ख}{2क}\right)$ $\left(क+\frac{ख}{2क}\right)$ का वर्ग $(क^2+ख)$ से अधिक होता है। इब्न लब्बान ने आसन्न मान $\left(क+\frac{ख}{2क+1}\right)$ दिया है। इसका वर्ग $(क^2+ख)$ से कम होता है। यह दिखाया जा सकता है कि ख का मान $\frac{8क^3+4क^2}{8क^2+4क+1}=क-\frac{1}{8क^2+4क+1}$ से कम हो तो प्रथम सूत्र अधिक शुद्धमान देता है। परन्तु यदि ख का मान उपर्युक्त भिन्न से अधिक हो तो द्वितीय सूत्र से अधिक शुद्ध मान प्राप्त होता है। इस तरह हम देख सकते हैं कि इस संख्या के लिए इब्न लब्बान का मान अधिक शुद्ध है। परन्तु ब्रह्मगुप्त के अनुसार

$$(क^2+ख)^{\frac{1}{2}}=क+\frac{ख}{2क+\frac{ख}{2क}}।$$

इसके अनुसार $\sqrt{65432}=255+\frac{317}{510+\frac{317}{510}}$। इब्न लब्बान के सूत्र की अपेक्षा इस सूत्र से अधिक शुद्ध फल मिलता है।

बख्शाली पोथी में जो सूत्र मिलता है वह निम्नलिखित है :

$$(\text{क}^2+\text{ख})^{\frac{1}{2}}=\text{क}+\frac{\text{ख}}{2\text{क}}-\frac{1}{2}\left(\frac{\text{ख}}{2\text{क}}\right)^2\Big/\left(\text{क}+\frac{\text{ख}}{2\text{क}}\right)।$$

यह देखा जा सकता है कि यह सूत्र ब्रह्मगुप्त के सूत्र के बहुत समीप है।

फ्रान्सीसी विद्वान् रोडे का अनुमान है कि शुल्व सूत्र के रचयिताओं को अकृति राशियों के मूल के लिए चतुर्थ श्रेणी तक आसन्नमान ज्ञात था, अर्थात्

$$(\text{क}^2+\text{ख})^{\frac{1}{2}}=\text{क}+\frac{\text{ख}}{2\text{क}+1}+\frac{\frac{\text{ख}}{2\text{क}+1}\left(1-\frac{\text{ख}}{2\text{क}+1}\right)}{\left(2\,\text{क}+\frac{\text{ख}}{2\text{क}+1}\right)}+\text{ए},$$

जहाँ

$$\text{ख}-\left\{\frac{\text{ख}}{2\text{क}+1}+\frac{\frac{\text{ख}}{2\text{क}+1}\left(1-\frac{\text{ख}}{2\text{क}+1}\right)}{2\left(\text{क}+\frac{\text{ख}}{2\text{क}+1}\right)}\right\}\left\{2\text{क}+\frac{\text{ख}}{2\text{क}+1}+\frac{\frac{\text{ख}}{2\text{क}+1}\left(1-\frac{\text{ख}}{2\text{क}+1}\right)}{2\left(\text{क}+\frac{\text{ख}}{2\text{क}+1}\right)}\right\}$$

$$\text{ए}=\frac{}{2\left\{\text{क}+\frac{\text{ख}}{2\text{क}+1}+\frac{\frac{\text{ख}}{2\text{क}+1}\left(1-\frac{\text{ख}}{2\text{क}+1}\right)}{2\left(\text{क}+\frac{\text{ख}}{2\text{क}+1}\right)}\right\}}।$$

और इसी सूत्र से उन्होंने $\sqrt{2}=1+\frac{1}{3}+\frac{1}{3\times4}-\frac{1}{3\times4\times34}$ प्राप्त किया था।

परन्तु आर्यभटीय के भाष्यकार नीलकंठ का कहना है कि भगवान बौधायन ने बारह राशि के वर्गक्षेत्र को मन में रख कर देखा कि इसका दूना 288 है जो 17 के वर्ग से एक कम है। अतः इसका मूल $17-\frac{1}{34}$ है। इस तरह

$$\sqrt{2}\times12=17-\frac{1}{34}$$

तथा $$\sqrt{2}=\frac{1}{12}\left(17-\frac{1}{34}\right)=\frac{1}{12}\left(12+4+1-\frac{1}{34}\right),$$

$$=1+\frac{1}{3}+\frac{1}{3\times4}-\frac{1}{3\times4\times34},$$

$$=1.4142156\ldots,$$

जो कि दशमलव के चार अंकों तक शुद्ध है।

अघनाद्भजेद् द्वितीयात् त्रिगुणेन घनस्य मूलवर्गेण ।
वर्गस्त्रिपूर्वगुणितः शोध्यः प्रथमाद् घनश्च घनात् ॥५॥

अनुवाद—(पहिले के) घन के (घन) मूल के वर्ग के तिगुने से द्वितीय अघन में भाग देना चाहिए। (लब्धि के) वर्ग तथा पूर्व के (मूल के) तथा तीन के गुणनफल को प्रथम अघन में से घटाना चाहिए और (लब्धि के) घन को घन में से घटाना चाहिए ॥5॥

वर्गमूल की तरह जिस संख्या का घनमूल निकालना हो उसके अंकों का वर्गीकरण किया जाता है। दाहिने से प्रथम, चतुर्थ, सप्तम आदि स्थानों के अंक घन स्थानों के अंक हैं, द्वितीय, पंचम, अष्टम आदि स्थानों के अंक प्रथम अघन स्थानों के अंक हैं, तृतीय, षष्ठ,, नवम आदि स्थानों के अंक द्वितीय अघन स्थानों के अंक हैं।

ऐसा वर्गीकरण करने के पश्चात् सबसे बायीं ओर एक, दो या तीन अंक बचेंगे। इनमें से 1 से 9 तक किसी संख्या के घन घट सकेंगे। इनमें उस सबसे बड़ी संख्या को चुनना चाहिए जिसका घन घट सके। आगे की प्रक्रिया के लिए यह पूर्व घनमूल होगा। इसके वर्ग के तीन गुने से द्वितीय अघन में भाग देना चाहिए और सूत्र में बतायी गई प्रक्रिया करनी चाहिए। इसके बाद जो संख्या मिलेगी वह आगे की प्रक्रिया के लिए पूर्व घनमूल होगी।

शून्यों का उपयोग करते हुए इब्न लब्बान ने जिस विधि को दिया है वह नीचे दी जा रही है।

हम घनमूल निकालना चाहते हैं। हम संख्या को धूलिपट्टिका पर लिखते हैं और (दाहिने से तीन तीन के) समूह गिनते हैंऔर 2 तक पहुँचते हैं। इसके नीचे हम शून्यों की

2986100
0000000

चित्र (1)

पंक्ति लिखते हैं (चित्र 1)। इसके (अर्थात् 2 के) ऊपर और नीचे हम 1 लिखते हैं (जिसका घन 2 में से घट सकता है)। सबसे ऊपर की संख्या को सबसे नीचे की संख्या से गुण कर फल को मध्य पंक्ति (शून्यों की पंक्ति) में जोड़ते हैं। फिर हम सबसे ऊपर की पंक्ति को मध्य पंक्ति से गुणते हैं और फल को संख्या में से घटा देते हैं तो चित्र (2) का फल पाते हैं।

1
1986100
1000000
1

चित्र (2)

अब सबसे नीचे की पंक्ति को द्विगुणित करते हैं और उसे सबसे ऊपर की पंक्ति से गुणते हैं और उसे मध्य पंक्ति में जोड़ देते हैं। अब हम उच्चतम पंक्ति को निम्नतम में जोड़ देते हैं और इसे दो स्थान और मध्य को एक स्थान दाहिने हटाते हैं (चित्र 3)।

1
1986100
300000
3

चित्र (3)

अब हम ऐसी महत्तम संख्या ढूंढ़ते हैं जिसे निम्नतम पंक्ति में गुणकर फल को अपने स्थान में मध्य पंक्ति में जोड़ने पर और फल के साथ इस संख्या का गुणनफल संख्या के संगत अंश से घट सके। ऐसी संख्या 4 है। इसे हम निम्नतम 3 के साथ रखते हैं और (इसी की सीध में) संख्या के 6 अंक के ऊपर रखते हैं। अब हम निम्नतम पंक्ति को उच्चतम पंक्ति (अर्थात् 4) से गुण कर फल को मध्य पंक्ति में जोड़ते हैं। फिर हम मध्य पंक्ति को उच्चतम से गुणित कर फल को संख्या में से घटाते हैं तो चित्र (4) का फल पाते हैं।

1 4
242100
436000
34

चित्र (4)

अब हम निम्नतम के 4 को द्विगुणित कर निम्नतम को (अर्थात् 38 को) उच्चतम (अर्थात् 4) से गुणित कर फल को मध्य पंक्ति में जोड़ देते हैं। अब हम उच्चतम 4 को निम्नतम में जोड़ कर मध्य पंक्ति को एक स्थान और निम्नतम को दो स्थान दाहिने हटाते हैं। तब चित्र (5) की स्थिति प्राप्त होती है।

1 4
242100
58800
42

चित्र (5)

अब उपर्युक्त विधि से फिर एक संख्या ढूंढते हैं। वह संख्या 4 है। इसे हम निम्नतम 2 के पार्श्व में, तथा इसी की सीध में उच्चतम पंक्ति में भी रखते हैं। अब हम निम्नतम में4 का गुणा करके फल को मध्य पंक्ति में जोड़ते हैं। मध्य पंक्ति को उच्चतम (अर्थात् 4) से गुणित करके फल को संख्या में से घटाते हैं तो हमें चित्र (6) प्राप्त होता है।

1 4 4
116
60496
424

चित्र (6)

फिर हम निम्नतम 4 को द्विगुणित करके निम्नतम को उच्चतम 4 (अर्थात् द्वितीय 4) से गुणते हैं और फल को मध्य पंक्ति में जोड़ देते हैं और कार्य की समाप्ति पर मध्य में 1 और जोड़ते हैं। तब हमें चित्र (7) की स्थिति प्राप्त होती है। उच्चतम पंक्ति घनमूल

1 4 4
116
62209
428

चित्र (7)

है जिसमें 1 के मध्य पंक्ति की संख्या के बराबर भागों में शेष के बराबर भाग जुड़ हैं (अर्थात् घनमूल 144 $\begin{matrix}116\\62209\end{matrix}$ है)।

यहाँ भी देखा जा सकता है कि $(क^3+ख)^{\frac{1}{3}}$ का मान इब्न लब्बान ने $क+\frac{ख}{3क^2}$ नहीं दिया है प्रत्युत् $क+\frac{ख}{3क^2+1}$ दिया है।

यह दृष्टव्य है कि इब्न लब्बान की विधि आर्यभट की बतायी विधि की अपेक्षा अधिक जटिल है। कदाचित् इसका कारण यह हो कि पश्चिमी एशिया में संख्यायें पहले अक्षरों द्वारा निरूपित की जाती थीं। इसी कारण स्थान निर्देशन के लिए मध्य पंक्ति में शून्य भी लिखे गये हैं।

त्रिभुजस्य फलशरीरं समदलकोटी भुजार्धसंवर्गः।
ऊर्ध्वभुजा तत्संवर्गार्धं स घनष्षडश्रिरिति ॥६॥

अनुवाद—त्रिभुज का क्षेत्रफल उसका शरीर है और यह लम्ब और भुजार्ध के गुणनफल के तुल्य होगा। इसके (अर्थात् इस क्षेत्रफल के) तथा ऊँचाई के गुणनफल का आधा उस ठोस का घनफल होता है जिसके छः किनारे होते हैं ॥6॥

परमेश्वर[1] ने कहा है कि त्रिभुज के शीर्ष से आधार पर जो लम्ब डाला जायगा वह दोनों पार्श्ववर्ती त्रिभुज खण्डों की उभयनिष्ठ कोटि होगा। अतएव उसे समदलकोटी कहा है। विषमबाहु त्रिभुज के लिए इसका मान निकालने के लिए आधार के दो खण्डों में से किसी एक का ज्ञान आवश्यक है। नीलकंठ ने कहा है कि उनका मान इस तरह ज्ञात किया जा सकता है कि उनका वर्गान्तर उनके योग (अर्थात् आधार) और अन्तर के गुणनफल के तुल्य है तथा त्रिभुज की भुजाओं के वर्गान्तर के तुल्य है। इस प्रकार यदि आधार और दोनों भुजाएँ ज्ञात हैं तो आधार के दोनों खण्डों का अन्तर और उनका अलग अलग मान ज्ञात किया जा सकता है।

नीलकंठ ने यह भी बताया है कि बराबर भुजा वाले षडश्रि के लिए ऊर्ध्वभुजा का मान कैसे ज्ञात किया जाता है और अन्त में सूर्यदेव यज्वा का सूत्र उद्धृत किया है[2]।

---

[1]परमेश्वर कृत आर्यभटीय भाष्य, पृ. 23।

[2]नीलकंठ कृत आर्यभटीय भाष्य, भाग 1, पृ. 36।

द्विघ्ना कर्णकृतिर्भक्ता त्रिभिरूर्ध्वभुजाकृतिः ।

अर्थात् कर्ण (षडश्रि की कोई भुजा) के वर्ग के दूने को तीन से भाग देने पर फल ऊर्ध्वभुजा के वर्ग के तुल्य होता है।

इसे सहज ही सिद्ध किया जा सकता है। शीर्ष से आधार तल पर खींचा गया लम्ब आधार की समदलकोटी के ऐसे बिन्दु पर पड़ेगा जो इसे दो तिहाई और एक तिहाई के खण्डों में बाँटेगा। लम्ब का वर्ग और एक तिहाई खण्ड का वर्ग पार्श्व वाली समदलकोटी के तुल्य होगा। अतएव

$$\begin{aligned} \text{लम्ब}^2 &= \text{समदलकोटी}^2 - \tfrac{1}{9}\ \text{समदलकोटी वर्ग} \\ &= \tfrac{3}{4}\ \text{भुजा}^2 - \tfrac{1}{9} \times \tfrac{3}{4}\ \text{भुजा}^2 \\ &= \tfrac{2}{3}\ \text{भुजा}^2 । \end{aligned}$$

षडश्रि के लिए आर्यभट का सूत्र अशुद्ध है। शुद्ध सूत्र में $\frac{1}{2}$ क स्थान पर $\frac{1}{3}$ होना चाहिए। आर्कीमिडीस के अनुसार यह शुद्ध सूत्र युडाक्सस ने 370 वर्ष ईसा पूर्व प्राप्त किया था। आर्यभट के पश्चात् ब्रह्मगुप्त ने शुद्ध सूत्र दिया है[1]।

भास्कर प्रथम ने आर्यभटीय भाष्य में विषमबाहु त्रिभुज का क्षेत्रफल निकालने का उदाहरण दिया है: एक त्रिभुज की भुजाएँ 13 तथा 15 और आधार 14 हैं तो क्षेत्रफल क्या होगा? इसमें यदि आधार पर लम्ब डालने से उसके दो खण्ड य तथा र हैं तो $य+र=14$, तथा $य^2-र^2=15^2-13^2=28\times2$। अतः $य-र=4$ एवं $य=9$ और $र=5$ तथा लम्ब का मान 12 है। एक दूसरे उदाहरण में आधार 51 तथा भुजाएँ 37 और 20 हैं। इसमें लम्ब डालने पर उपर्युक्त विधि से खण्डों के मान 35 तथा 16 और लम्ब का मान 12 हैं।

समपरिणाहस्यार्धं विष्कम्भार्धहतमेव वृत्तफलम् ।
तन्निजमूलेन हतं घनगोलफलं निरवशेषम् ॥७॥

अनुवाद—वृत्त की परिधि के आधे को अर्द्धव्यास से गुणने से वृत्त का क्षेत्रफल मिलता है। इस क्षेत्रफल को इसके ही वर्गमूल से गुणा करने से गोल का शुद्ध घनफल प्राप्त होता है ॥7॥

वृत्त के क्षेत्रफल के लिए आर्यभट का सूत्र पूर्णतः शुद्ध है। यदि 'व' व्यास है तो आर्यभट के अनुसार, यदि $\pi=3.1416$ लिया जावे,

---

[1]ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त, गणिताध्याय, आर्या 44।

परिधि $= 3.1416 \times$ व,

तथा वृत्त का क्षेत्रफल $= \frac{3.1416 \times \text{व}^2}{4}$ ।

यह दोनों ही सूत्र बहुत शुद्ध हैं। ब्रह्मगुप्त के अनुसार

परिधि $= \sqrt{10}$ व $= 3.1623$ व,

क्षेत्रफल $= \frac{\sqrt{10}\ \text{व}^2}{4} = \frac{3.1623\ \text{व}^2}{4}$ ।

ये सूत्र काफी स्थूल हैं क्योंकि π का मान $\sqrt{10}$ लिया गया है। परन्तु गोल के लिए आर्यभट का दिया सूत्र बहुत स्थूल है। इसके अनुसार

घनफल $= \frac{5.568\ \text{व}^3}{8}$ है,

जबकि अधिक शुद्धमान $= \frac{4.1888\ \text{व}^3}{8}$ है।

बाद के गणितज्ञों ने आर्यभट की अशुद्धि को जान लिया था और अधिक शुद्ध सूत्र प्राप्त करने का प्रयत्न किया है। इन सूत्रों को नीचे उद्धृत किया गया है :

भास्कर प्रथम : $\frac{4.5\ \text{व}^3}{8}$,

महावीराचार्य : $\frac{4.05\ \text{व}^3}{8}$,

श्रीधराचार्य : $\left(1+\frac{1}{18}\right)\frac{\text{व}^3}{2} = \frac{4.22\ \text{व}^3}{8}$ ।

शुद्ध सूत्र भास्कर द्वितीय ने लीलवती में दिया है[1] तथा इसकी उपपत्ति गोलाध्याय में दी है[2]।

आयामगुणे पार्श्वे तद्योगहृते स्वपातरेखे ते।
विस्तरयोगार्धगुणे ज्ञेयं क्षेत्रफलमायामे ॥८॥

अनुवाद—(समलम्ब विषम चतुर्भुज में) आयाम और किसी पार्श्व के गुणनफल में पार्श्वों के योग से भाग देने पर उसकी पातरेखा प्राप्त होती है और पार्श्वों के योग के आधे में आयाम से गुणा करने पर क्षेत्रफल प्राप्त होता है ॥8॥

---

[1]लीलावती, आनन्दाश्रम संस्करण, श्लोक 201।

[2]सिद्धान्तशिरोमणि, गोलाध्याय, भुवनकोश, 58-61 श्लोकों का वासनाभाष्य।

समलम्ब विषम चतुर्भुज में समान्तर रेखाएँ पार्श्व कहलाती हैं। नीचे की रेखा को भूमि और ऊपर की रेखा को मुख कहते हैं। इन दोनों के बीच की दूरी आयाम है। जहाँ दोनों कर्ण मिलते हैं वह संपात बिन्दु है। वहाँ से पार्श्वों पर डाले गये लम्ब पात रेखाएँ हैं।

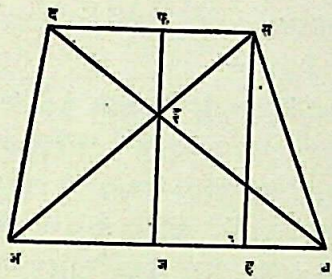

आकृति 2.1

अ ब स द समलम्ब विषम चतुर्भुज है। अ ब, स द पार्श्व रेखाएँ हैं; अ ब भूमि तथा स द मुख हैं। स ह आयाम है। इ संपात बिन्दु तथा इ फ एवं इ ज पात रेखाएँ हैं। सूत्र के अनुसार

$$\text{इ फ} = \frac{\text{स द} \times \text{स ह}}{\text{स द} + \text{अ ब}},$$

$$\text{इ ज} = \frac{\text{अ ब} \times \text{स ह}}{\text{अ ब} + \text{स द}},$$

$$\text{तथा क्षेत्रफल} = \frac{(\text{अ ब} + \text{स द})\ \text{स ह}}{2}।$$

अ ज इ तथा स फ इ समरूप त्रिभुजों में

इ फ : इ ज = स फ : अ ज।

इसी प्रकार ब ज इ तथा द फ इ समरूप त्रिभुजों में

इ फ : इ ज = फ द : ब ज।

अतएव,

इ फ : इ ज = (स फ + द फ) : (अ ज + ब ज),

= स द : अ ब,

और इ फ : (इ फ + इ ज) = स द : (अ ब + स द),

अथवा $$\text{इ फ} = \frac{\text{स द} \times (\text{इ फ} + \text{इ ज})}{\text{अ ब} + \text{स द}},$$

$$= \frac{\text{स द} \times \text{स ह}}{\text{अ ब} + \text{स द}}।$$

इसी प्रकार, $$\text{इ ज} = \frac{\text{अ ब} \times \text{स ह}}{\text{अ ब} + \text{स द}}।$$

चतुर्भुज का क्षेत्रफल अ ब स तथा अ स द त्रिभुजों के क्षेत्रफल के तुल्य है एवं सूत्र के अनुसार है।

सर्वेषां क्षेत्राणां प्रसाध्य पार्श्वे फलं तदभ्यासः ।
परिधेष्षड्भागज्या विष्कम्भार्धेन सा तुल्या ।।९।।

अनुवाद—सभी क्षेत्रों में पार्श्वों को (आयाम और विस्तार को) ज्ञात करके उनके गुणनफल से क्षेत्रफल ज्ञात करना चाहिए। परिधि के छठें भाग की ज्या अर्धव्यास के तुल्य होती है ।।9।।

परमेश्वर ने अपने भाष्य में कहा है कि सभी क्षेत्रों में उपयुक्त साधनों के उपयोग से आयाम और विस्तार को ज्ञात करना चाहिए। जैसे त्रिभुज में शीर्ष बिन्दु से आधार पर लम्ब आयाम और आधार का आधा विस्तार है। विषम चतुर्भुज में एक कर्ण को आधार बनाना चाहिए। तब दूसरे दो विन्दुओं से डाले लम्बों का योग आयाम होगा और कर्ण का आधा विस्तार। इसी प्रकार अन्य क्षेत्रों के लिए आयाम और विस्तार का ज्ञान करके उनके गुणन से क्षेत्रफल ज्ञात करना चाहिए।

क ख ग वृत्त में क वृत्त का केन्द्र और ख ग चाप परिधि का छठाँ भाग है। अतएव कोण ग क ख 360 अंश का छठाँ भाग अर्थात् 60 अंश का है। क ख तथा क ग अर्द्धव्यास होने के कारण बराबर हैं। अतएव कोण क ख ग तथा क ग ख भी परस्पर बराबर हैं। अतएव त्रिभुज क ख ग समत्रिबाहु त्रिभुज है और ग ख ज्या क ख के बराबर है।

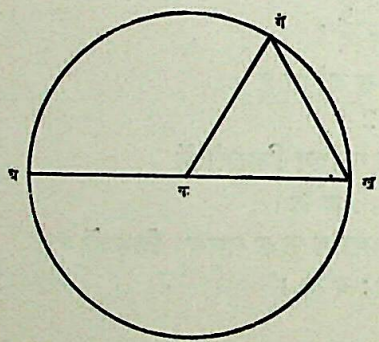

आकृति 2.2

यदि वृत्त में एक त्रिभुज बनाया जाय जिसका शीर्ष बिन्दु केन्द्र पर हो, दो भुजाएँ अर्धव्यास हों और आधार अर्धव्यास के तुल्य हो, तो इसके सभी कोण 60^0 के होंगे। आधार परिधि के छठें भाग के चाप की ज्या होगा। इस तरह 60^0 की पूर्णज्या अर्धव्यास के तुल्य होती है।

चतुरधिकं शतमष्टगुणं द्वाषष्टिस्तथा सहस्राणाम् ।
अयुतद्वयविष्कम्भस्यासन्नो वृत्तपरिणाहः ।।१०।।

अनुवाद—चार अधिक एक शत अर्थात् 104 का आठ गुना अर्थात् 832 तथा बासठ सहस्र अर्थात् 62832 उस वृत्त की परिधि का आसन्न मान है जिसका व्यास 20,000 है ।।10।।

आसन्न मान क्यों कहा है इसका कारण बताते हुए नीलकंठ कहते हैं[1] : "वास्तविक संख्या को छोड़ कर केवल आसन्न मान क्यों कहा ? इसका उत्तर यह है कि इसका यथार्थ मान कहना असम्भव है। जिस मान से नापने पर व्यास निरवयव अर्थात् पूर्ण संख्या है उसी से नापने पर परिधि सावयव है अर्थात् उसका ठीक मान नहीं जाना जा सकता। जिस मान से नापने पर परिधि निरवयव होती है उसी से नापने पर व्यास सावयव है। अतः एक ही मान से नापने पर दोनों में एक साथ निरवयवता नहीं आ सकती। बहुत दूर तक जाने पर भी अर्थात् लम्बी गणित करके अवयवता को अल्प किया जा सकता है किन्तु निरवयवता अलभ्य है।"

इसके पश्चात् नीलकंठ ने माधव (1350-1410) द्वारा दिया हुआ मान दिया है जो आर्यभट के मान से अधिक सूक्ष्म है[2]।

विबुधनेत्रगजाहिहुताशनत्रिगुणवेदभवारणबाहवः ।
नवनिखर्वमिते वृतिविस्तरे परिधिमानमिदं जगदुर्बुधाः ॥

प्रथम पंक्ति में विबुध=33, नेत्र=2, गज=8, अहि=8, हुताशन=3, त्रि=3, गुण=3, वेद=4, भ=27, वारण=8, बाहु=2 और 'अङ्कानां वामतो गतिः' का उपयोग करने से यह संख्या 2,827,433,388,233 है। अतः यह संख्या उस वृत की परिधि का मान बताती है जिसका व्यास 900,000,000,000 है।

बहुत प्राचीन काल से विद्वानों ने परिधि और व्यास के अनुपात का मान ज्ञात करने का प्रयत्न किया है। इनमें कुछ मान नीचे दिये जाते हैं :

$\frac{\text{परिधि}}{\text{व्यास}}$ = 3.0864 (इजिप्ट में आह्मी ने),

= 3.097 (शुल्व सूत्र),

$= \frac{62832}{20,000} = 3.1416$ (आर्यभट, लगभग 500 ई०),

$= \frac{355}{113} = 3.1415929$ (चीनी, लगभग 500 ई०),

$= \frac{377}{120} = 3.1417$ (अपोलोनियस),

= 3.14159265359 (माधव, लगभग 1400 ई०),

= 3.1415926535897932 (अल्काशी, लगभग 1430 ई०)।

कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने यह कहा है कि आर्यभट ने अपना मान ग्रीस के विद्वानों से लिया है। परन्तु यह धारणा निर्मूल है। किसी भी पाश्चात्य विद्वान् ने यह मान अथवा इतना शुद्ध मान नहीं दिया है।

---

[1]नीलकंठ कृत आर्यभटीय भाष्य, युनिवर्सिटी आफ त्रावङ्कोर संस्कृत सीरीज में प्रकाशित, भाग 1, पृ० 41।

[2]वही पृ० 42।

अल्बिरूनी का कहना है कि याक़ूब इब्न तारिक़ ने अपनी पुस्तक 'गोलों की रचना' में अपने हिन्दू जानकार के आधार पर तारों की परिधि का मान 1,256,640,000 योजन तथा व्यास का मान 400,000,000 योजन दिया है[1]। इनका अनुपात आर्यभट के अनुपात के तुल्य है।

यह प्रश्न स्वाभाविक है कि आर्यभट ने तथा अन्यों ने ये मान कैसे ज्ञात किये। इस पर प्रकाश अगली आर्या के पश्चात् डाला जायगा।

समवृत्तपरिधिपादं छिन्द्यात् त्रिभुजाच्चतुर्भुजाच्चैव।
समचापज्यार्धानि तु विष्कम्भार्धे यथेष्टानि ॥११॥

अनुवाद—किसी वृत्त के चतुर्थांश को त्रिभुज और चतुर्भुज (आयत) द्वारा काटना चाहिए। इस तरह किसी अर्द्धव्यास पर इच्छानुसार बराबर चापों की अर्धज्याएँ प्राप्त की जा सकती हैं ॥11॥

यही बात परमेश्वर और नीलकंठ ने अपने भाष्यों में विस्तार से कही है। ब्राह्म-स्फुटसिद्धान्त के गोलाध्याय की 19 से 23 आर्याओं में स्पष्ट रूप से कहा है और पृथूदक स्वामी ने अपने भाष्य में संख्यात्मक उदाहरण भी दिये हैं। जो नियम ब्रह्मगुप्त ने बताये हैं लगभग वही नियम पहले वराहमिहिर पंचसिद्धान्तिका के चौथे अध्याय में बता चुके थे।

त्रिभुजों तथा चतुर्भुजों से अर्धज्याएँ कैसे ज्ञात की जा सकती हैं इसे अब स्पष्ट किया जाता है।

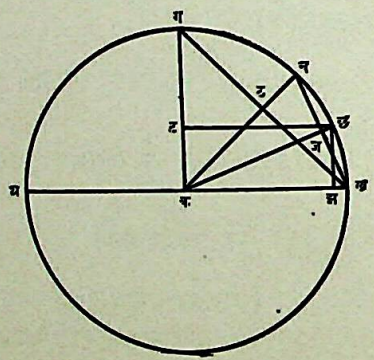

आकृति 2.3

ख छ च ग घ एक वृत है जिसका केन्द्र क है। ख छ च ग चाप वृत्त का चतुर्थांश है जिसकी ज्या रेखा ख ग है इसका आधा ख ठ, ख च चाप की अर्धज्या है। क ठ को च तक बढ़ा कर क ख च त्रिभुज बनाएँ तो चाप ख च (45°) की ज्या रेखा ख च है

[1]सखाऊ कृत अनुवाद, भाग 1, पृ० 169।

तथा ख च^2 = ख ठ^2+ठ च^2,

= (ज्या 45°)^2+(उत्क्रमज्या 45°)^2।

अतः ख ज = $\frac{1}{2}$ ख च,

= $\frac{1}{2}$ { (ज्या 45°)^2+(उत्क्रमज्या 45°)^2 }$^{\frac{1}{2}}$

= अर्धज्या $22\frac{1}{2}$° ।

क ज को परिधि तक बढ़ा कर छ से क ख तथा क ग पर क्रमशः छ भ तथा छ ट लम्ब हैं और

छ ट = क भ,

= (क छ^2—छ भ^2)$^{\frac{1}{2}}$ = (क छ^2—ख ज^2)$^{\frac{1}{2}}$,

= अर्धज्या $67\frac{1}{2}$° = (त्रिज्या^{2}—अर्धज्या^{2} $22\frac{1}{2}$°)$^{\frac{1}{2}}$ ।

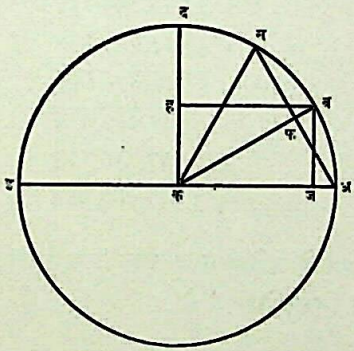

आकृति 2:4

इसी तरह $11\frac{1}{4}$° तथा $78\frac{3}{4}$° की ज्याएँ प्राप्त की जा सकती हैं ।

दूसरे वृत्त में अ स चाप परिधि का षष्ठांश है। यह पहले ही बता चुके हैं कि इसकी ज्या रेखा अ स अर्धव्यास के तुल्य है। इसका आधा अ फ 30° की अर्धज्या है। क फ को परिधि तक बढ़ाकर ब ज तथा ब ह लम्ब डालकर और आयत क ज ब ह पूरा करके 60° की अर्धज्या ज्ञात की जा सकती है। इसी प्रकार इच्छानुसार 24, 48, 96 अथवा अधिक अर्धज्याएँ प्राप्त की जा सकती हैं। आर्यभट, ब्रह्मगुप्त आदि ने 24 अर्धज्याएँ प्राप्त की हैं। परन्तु वटेश्वर ने 96 अर्धज्याओं का मान दिया है।

यह भी स्पष्ट है कि ज्याओं और अर्धज्याओं की संख्या जितनी ही बढ़ती जाती है उतना ही उनमें तथा चाप में अन्तर कम होता जाता है। इसी कारण आर्यभट ने 3° 45′ की अर्धज्या का मान 225′ माना है। यदि अर्धव्यास बड़ा लिया जाय तो ज्या का सूक्ष्म मान इससे भी छोटे कोणों के लिए ज्ञात किया जा सकता है और बहुभुज क्षेत्र का परिमाप सन्निकटतः परिधि के तुल्य होगा। भास्कर द्वितीय ने कहा है कि यदि ज्योत्पत्ति विधि से वृत के शतांश से भी सूक्ष्म भाग की ज्या ज्ञात की जाय और उसे उस भाग संख्या से

गुणित किया जाय तो फल परिधि होगा[1]। कदाचित् आर्यभट ने इसी तरह 20,000 व्यास का वृत्त लेकर वृत्त के 96 से भी कई गुने भाग के चाप की ज्या की गणना करके परिधि का मान ज्ञात किया हो।

प्रबोधचन्द्र सेन गुप्त ने 20,000 व्यास के भीतर खींचे गये भिन्न संख्या के सम-बहुभुज क्षेत्रों के परिमाप की गणना करके उसके और व्यास के अनुपात का मान निकाला है जिसे नीचे दिया जा रहा है।

बहुभुजक्षेत्रों की भुजाओं की संख्या	परिमाप	अनुपात
6	$\sqrt{3,600,000,000}$	3.000,000
12	$\sqrt{3,858,468,371}$	3.105,828
24	$\sqrt{3,925,344,811}$	3.132,629
48	$\sqrt{3,942,207,878}$	3.139,350
96	$\sqrt{3,946,432,686}$	3.141,032
192	$\sqrt{3,947,489,454}$	3.141,452
384	$\sqrt{3,947,736,725}$	3.141,550
768	$\sqrt{3,947,802,784}$	3.141,577

उन्होंने य भुजा के क्षेत्र के परिमाप प तथा 2 य भुजा वाले क्षेत्र के परिमाप प′ के बीच एक सम्बन्ध दिया है जो निम्नलिखित है :

$प' = \sqrt{8य^2अ^2 - \sqrt{64य^4अ^4 - 16य^2अ^2प^2}}$, जिसमें अ वृत्त का अर्धव्यास है। इस सम्बन्ध को इस पाद की सत्रहवीं आर्या के पश्चात् सिद्ध किया जाएगा।

गणेश दैवज्ञ ने लीलावती की टीका में 100 व्यास के वृत्त में 384 भुजा के क्षेत्र का परिमाप $\sqrt{98683}$ और 12 भुजा के क्षेत्र की भुजा मान $\sqrt{673}$ दिया है। कोलब्रुक के अनुवाद में भी ये ही मान दिए हैं। ये मान ठीक नहीं हैं। शुद्ध मान क्रमशः $\sqrt{98693}$ तथा $\sqrt{670}$ हैं।

प्रथमाच्चापज्यार्धाद् यैरूनं खण्डितं द्वितीयार्धम्।
तत्प्रथमज्यार्धांशैस्तैस्तैरूनानि शेषाणि ॥१२॥

अनुवाद—प्रथम चाप की अर्धज्या से द्वितीय अर्धज्या (खण्ड अर्धज्या) जितना कम है वह प्रथम चाप की अर्धज्या से स्वयं उसीको विभाजित करने पर प्राप्त लब्धि के तुल्य है। अन्य अर्धज्या खण्डों के अन्तर उसीसे पिण्डज्याओं को विभाजित करने से प्राप्त होते हैं ॥12॥

[1]सिद्धान्तशिरोमणि, गोलाध्याय, तृतीय अध्याय के श्लोक 52 का वासनाभाष्य।

अर्थात्

$$\text{द्वितीय खण्ड अर्धज्या—तृतीय खण्ड अर्धज्या} = \frac{\text{द्वितीय पिण्ड अर्धज्या}}{\text{प्रथम अर्धज्या}},$$

$$\text{तृतीय खण्ड अर्धज्या—चतुर्थ खण्ड अर्धज्या} = \frac{\text{तृतीय पिण्ड अर्धज्या}}{\text{प्रथम अर्धज्या}},$$

आदि।

यही बात स्पष्ट रूप से पितामह सिद्धान्त में कही गई है[1]। नीलकंठ सोमसुत्वन भी तंत्रसंग्रह में इसी तरह अर्धज्याओं का मान प्राप्त करने को कहते हैं। केवल वे अर्धज्याओं का मान अधिक सूक्ष्मता से देते हैं और विभाजित करने वाली संख्या का मान 225′ न होकर 233′ 30″ है। उनके व्याख्याकार अर्धज्याओं का मान माधव के अनुसार और अधिक सूक्ष्मता से देते हैं और भाजक भी 233′ 30″ के स्थान पर 233′ 32″ देते हैं[2]।

यदि अर्धज्याओं के मान ख अंश के अन्तर पर दिए गए हैं तो

$$\frac{\text{अर्धज्या क}}{\text{अर्धज्या (क—ख)}+\text{अर्धज्या(क+ख)}} = \frac{\text{त्रि}\times\text{अर्धज्या क}}{2\,\text{अर्धज्या क}\times\text{कोटिज्या ख}}$$

$$= \frac{\text{त्रि}}{2\,\text{कोटिज्या ख}} = \frac{\text{त्रि}^2}{2\,\text{त्रि}^2-4\left(\text{अर्धज्या}\,\frac{\text{ख}}{2}\right)^2},$$

अथवा $$\text{अर्धज्या क}\left[2\,\text{त्रि}^2-4\left(\text{अर्धज्या}\,\frac{\text{ख}}{2}\right)^2\right]$$

$$=\text{त्रि}^2[\text{अर्धज्या(क—ख)}+\text{अर्धज्या(क+ख)}],$$

अथवा $$\text{अर्धज्या (क+ख)—अर्धज्या क}=\text{अर्धज्या क—अर्धज्या(क—ख)}$$

$$-\frac{\text{अर्धज्या क}}{\left(\dfrac{\text{त्रि}}{2\,\text{अर्धज्या}\,\frac{\text{ख}}{2}}\right)^2},$$

अथवा अग्रिम खण्ड अर्धज्या=पूर्व खण्ड अर्धज्या—अर्धज्या क×य,

$$\text{जहाँ}\quad \text{य}=\frac{\left(2\,\text{अर्धज्या}\,\frac{\text{ख}}{2}\right)^2}{\text{त्रि}^2}$$

$$= 4\sin^2\frac{\text{ख}}{2}=0.0042821535,$$

$$=\frac{1}{233\ 5273}\text{।}$$

---

[1]पितामाह सिद्धान्त, विन्ध्येश्वरी प्रसाद द्वारा संपादित, पृ० 4-7।

[2]तंत्रसंग्रह, पृ० 17।

नीलकंठ की कम सूक्ष्म गणना के लिए भाजक का मान 233·5 है और माधव की अधिक सूक्ष्म गणना के लिए भाजक का मान 233;32 (षष्ठि गुणोत्तर गणना के अनुसार) है[1]।

यदि इस नियम को आर्यभट के कथनानुसार पूरी तरह लागू किया जाय तो अर्धज्या खण्डों के वे मान ठीक-ठीक नहीं मिलते जो दशगीतिका 10 में दिए गए हैं। कहीं कहीं संशोधन की आवश्यकता होती है। परन्तु यदि 225 के स्थान पर भाजक 233 लिया जाए तो भी ऐसे संशोधनों की आवश्यकता होती है। इससे यह स्पष्ट है कि आर्यभट का यह नियम बहुत स्थूल है। वस्तुतः दशगीतिका में दिए मान उन्हीं विधियों से निकाले गए हैं जिन्हें वराहमिहिर ने तथा ब्रह्मगुप्त ने दिये हैं। इसी कारण वराहमिहिर 3438 के स्थान पर त्रिज्या का मान 120 मान कर भी अर्धज्या के मान निकाल सके हैं।

वृत्तं भ्रमेण साध्यं त्रिभुजश्च चतुर्भुजश्च कर्णाभ्याम्।
साध्या जलेन समभूरधऊर्ध्वं लम्बकेनैव ॥१३॥

अनुवाद—कर्कट यंत्र को घुमाकर वृत्त बनता है। कर्णों से त्रिभुज तथा चतुर्भुज बनते हैं। जल की सहायता से धरातल अथवा सम भूमि को प्राप्त करना चाहिए और लम्बक की सहायता से ऊर्ध्व दिशा तथा अधोदिशा का ज्ञान होता है ॥13॥

शुद्ध दिशाओं के ज्ञान के लिए वृत्त खींचना आवश्यक होता है। इसे कर्कट यंत्र से खींचा जाता है जिसके बनाने की विधि परमेश्वर ने अपने भाष्य में लिखी है। त्रिभुज बनाने के लिए तीन भुजाओं का ज्ञान होना चाहिए। परमेश्वर के अनुसार इसमें किसी भुजा को कर्ण माना जा सकता है। यदि यह भी जाना जाय कि यहाँ समकोण त्रिभुज ही के लिए निर्देशन दिया गया है तो भी उसकी दोनों भुजाओं का ज्ञान आवश्यक है। इसके अतिरिक्त चतुर्भुज के लिए भी कर्ण के ज्ञान के साथ-साथ चारों भुजाओं का ज्ञान आवश्यक है। इससे भी यही आशय निकलता है कि त्रिभुज और चतुर्भुज दोनों के लिए भुजाएँ भी ज्ञात होनी चाहिए।

जल के द्वारा समभूमि की जाँच के लिए यह करना चाहिए कि कर्कट यंत्र के द्वारा एक ही केन्द्र से दो या तीन अंगुल के अन्तराल पर दो परिधियाँ खींचना चाहिए और उनके बीच की भूमि को खोदकर कुल्या बनानी चाहिए जिसे पानी से भर देने पर कुल्या के चारों तरफ की भूमि का समत्व अथवा असमत्व जाना जा सकता है।

इसके अतिरिक्त आँख तथा सूत्र की सहायता से सन्निकटतः सम की हुई भूमि पर विभिन्न अर्धव्यासों के वृत्त खींचना चाहिए। फिर एक त्रिकाठ के ऊपर एक घड़े को स्थापित करना चाहिए। इसकी पेंदी में एक सूक्ष्म छेद हो जो ठीक केन्द्र के ऊपर हो। घड़े को जल से भरने पर भूमि पर गिरा पानी यदि समान वृत्तों में चारों ओर फैले तो भूमि सम है अन्यथा नहीं। शंकु और छाया से सम्बन्धित प्रश्नों के लिए भूमि का सम होना आवश्यक है।

---

[1]बेबीलोनिया के विद्वान् इस प्रकार की गणना का उपयोग करते थे। 233; 32=$233\frac{32}{60}$।

शङ्कोः प्रमाणवर्गं छायावर्गेण संयुतं कृत्वा।
यत्तस्य वर्गमूलं विष्कम्भार्धं स्ववृत्तस्य* ॥१४॥

अनुवाद—शंकु की नाप के वर्ग और छाया की नाप के वर्ग के योग का वर्गमूल स्ववृत्त का अर्द्ध व्यास होता है॥14॥

परमेश्वर तथा नीलकंठ के अनुसार स्ववृत्त वह वृत्त है जो ऊर्ध्वाधर तल में खींचा जाता है और जिसका केन्द्र छाया का अन्तिम विन्दु है और जो शंकु के शीर्ष को छूता खींचा जाता है।

भारतीय ज्योतिष में इस वृत्त का बड़ा महत्त्व है। इसको समझने के लिए हम कुछ अन्य बातों पर विचार करेंगे। आकृति 2.5 में ख ध स ख′ ध′ द याम्योत्तर वृत्त है, ख तथा ख′, ख स्वस्तिक तथा अधः स्वस्तिक, ध एवं ध′ उत्तरी तथा दक्षिणी ध्रुव हैं। स पू द प क्षितिज है, व पू व′ प विषुवत् वृत है, अ उ अ′ उ′ अहोरात्र वृत्त है। उ बिन्दु पर सूर्योदय होता है और उ′ पर सूर्यास्त होता है। अतएव उ उ′ रेखा उदयास्त सूत्र है तथा पू प रेखा पूर्वापर सूत्र है। ख पू ख′ सममण्डल का अर्धांश है। इस याम्योत्तर वृत का अर्धव्यास त्रिज्या के तुल्य है जिसका मान आर्यभट के अनुसार 3438′, वटेश्वर के अनुसार 3437′ 44″ तथा माधव के अनुसार 3437′ 44″ 48‴ है।

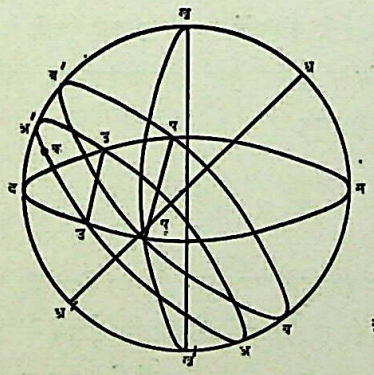

आकृति 2.5

उ पू चाप की ज्या को अग्रा कहते हैं। यदि सूर्य क्षितिज पर है तो सूर्य की इस स्थिति से अग्रा सममण्डल पर लम्ब है। यदि दिन में किसी अन्य समय सूर्य क बिन्दु पर है और उससे सममण्डल पर लम्ब डाला जाय तो यह लम्ब विषुवन्मण्डल को जिस बिन्दु पर

*कर्न के संस्करण में 'खवृत्तस्य' पाठ दिया है। कदाचित् प्रूफ संशोधन में यह त्रुटि रह गयी है क्योंकि परमेश्वर की व्याख्या में 'तत्स्ववृत्तमित्युच्यते' लिखा है। प्रूफ संशोधन की ऐसी अशुद्धियाँ गीतिकापाद की व्याख्या में भी हैं। पृ० 8 पंक्ति 13 में 'खर' के स्थान पर स्वर होना चाहिए। पृ० 13 में सावन दिवसों की संख्या भी अशुद्ध है।

काटेगा क बिन्दु से उसकी दूरी अग्रा के तुल्य होगी क्योंकि अहोरात्रवृत्त तथा विषुवत् वृत्त दो समान्तर तल हैं।

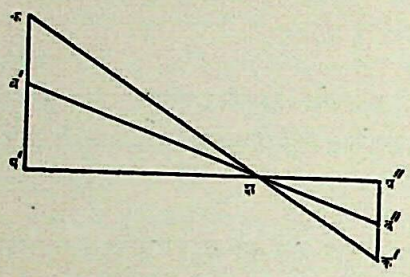

आकृति 2.6

अब आकृति 2.6 में कल्पना करें कि प' श प" शंकु के शीर्ष से गुज़रता हुआ सम-मण्डल है और क सूर्य की स्थिति है तथा क से क प' सममण्डल पर लम्ब है जो विषुवत् वृत्त को व' पर काटता है। तो क व' अग्रा है तथा क श त्रिज्या है। यदि क, व', प' से श तक खींची रेखाएँ पृथ्वी तल से क्रमशः क', व" तथा प" पर मिलती हैं, तो प", व", क' सम-रेखीय हैं क्योंकि यह वह रेखा है जिसमें क प' श तल पृथ्वी तल को काटता है और कोण श प" क' समकोण है क्योंकि क प' श तल सममण्डल पर लम्बवत् है। अतएव क व' श तथा क' व" श समरूप हैं। अतएव

$$\text{क}'\,\text{व}'' = \frac{\text{क व}' \times \text{क}'\,\text{श}}{\text{क श}}\,।$$

जिस दिन सूर्य विषुवंत् वृत्त पर होता है उस दिन की मध्याह्नच्छाया को पलभा कहते हैं। उस दिन शंकु की छाया का अन्तिम बिन्दु पूर्व से पश्चिम को जाने वाली सीधी रेखा होगी क्योंकि यह रेखा वह काट होगी जिसमें विषुवत् वृत्त की परिधि और शंकुशीर्ष में से गुज़रने वाला तल क्षितिज को काटेगा। शंकुमूल से इस रेखा की दूरी पलभा के तुल्य होगी। किसी अन्य दिन किसी समय छाया का अन्तिम बिन्दु उस बिन्दु से जहाँ छाया इस रेखा को काटती है कुछ दूरी पर होगा। इस दूरी को कर्णवृत्ताग्रा अथवा कर्णाग्रा कहते हैं। ऊपर जो कुछ सिद्ध किया जा चुका है उसके अनुसार

$$\text{कर्णाग्रा} = \frac{\text{स्ववृत्त कर्ण} \times \text{अग्रा}}{\text{त्रिज्या}}\,।$$

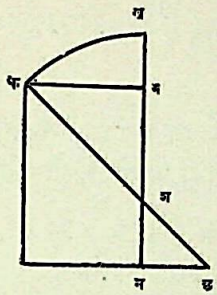

आकृति 2.7

आकृति 2.7 में ख, ख स्वस्तिक है और क सूर्य की स्थिति है। श शंकु का शीर्ष, म शंकु का मूल, श छ छाया कर्ण हैं। कोण क श ख सूर्य का नतांश है। क श ग और छ श म दो त्रिभुजों में $\frac{\text{श ग}}{\text{श क}} = \frac{\text{श म}}{\text{श छ}}$,

अथवा कोटिज्या नतांश $= \frac{\text{श म}}{\text{श छ}} \times$ श क,

यदि शंकु का मान 12 है तो

$$\text{कोटिज्या नतांश} = \frac{12 \times \text{त्रिज्या}}{\text{छाया कर्ण}},$$

$$= \frac{12 \times \text{त्रिज्या}}{\sqrt{144 + \text{छाया}^2}}।$$

अतएव छाया को नापने से नतांश ज्ञात किया जा सकता है। यह भी देखा जा सकता है कि नतांश का कुछ भी मान हो,

$$\text{छाया कर्ण} \times \text{कोटिज्या नतांश} = 12 \times \text{त्रिज्या},$$
$$= \text{नियत संख्या}।$$

भास्कर प्रथम ने आर्यभटीय भाष्य में शंकु और उसकी छाया पर कई प्रश्न दिए हैं। उनमें से दो दिए जाते हैं।

(1) किसी स्थान पर 15 अंगुल के शंकु की पलभा $6\frac{1}{4}$ अंगुल है। तो उस स्थान के अक्षांश की ज्या एवं कोटिज्या क्या हैं ?

$$\text{छाया कर्ण} = \sqrt{15^2 + (\tfrac{25}{4})^2} = \sqrt{\tfrac{4225}{16}} = \tfrac{65}{4}।$$

$$\text{अतएव, ज्या अक्षांश} = \frac{\frac{25}{4} \times 3438}{\frac{65}{4}} = 1322.31,$$

कोटिज्या अक्षांश $= \frac{15 \times 3438}{\frac{65}{4}} = 3173.54$ ।

(2) जिस समय सूर्य की किरणें पूर्णतः फैली हैं उस समय किसी स्थान पर 30 अंगुल के शंकु की छाया 16 अंगुल पायी जाती है, तो सूर्य का नतांश क्या है ?

छाया कर्ण $= \sqrt{30^2 + 16^2} = \sqrt{1156} = 34$ ।

अतएव, कोटिज्या नतांश $= \frac{30 \times 3438}{34} = 3033.53$,

तथा नतांश $= 28° \; 4'$ ।

शङ्कुगुणं शङ्कुभुजाविवरं शङ्कुभुजयोर्विशेषहृतम् ।
यल्लब्धं सा छाया ज्ञेया शङ्कोः स्वमूलाद्धि ॥१५॥

अनुवाद—शंकु स्थान और भुज स्थान (दीप स्थान) के अन्तराल को शंकु से गुणित कर फल को शंकु और भुज की (ऊँचाइयों के) अन्तर से भाग दें तो जो लब्धि होती है वह शंकु के मूल से छाया की लम्बाई आती है ॥15॥

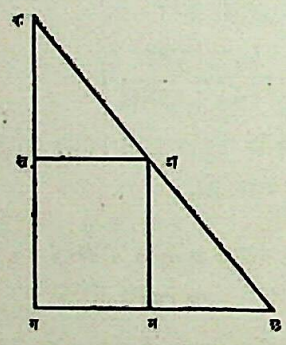

आकृति 2.8

आकृति 2.8 द्वारा यह सरलता से सिद्ध किया जा सकता है कि

$$\frac{\text{म छ}}{\text{म श}} = \frac{\text{श ख}}{\text{क ख}} = \frac{\text{म ग}}{\text{क ख}}$$

अतएव $\text{म छ} = \frac{\text{म श} \times \text{म ग}}{\text{क ख}}$ ।

इस सूत्र की सहायता से पृथ्वी की छाया की लम्बाई भी ज्ञात की जा सकती है। इसमें पृथ्वी के केन्द्र से उसकी परिधि तक की दूरी शंकु है, सूर्य के केन्द्र से उसकी परिधि

तक दूरी भुज की ऊँचाई है और पृथ्वी से सूर्य तक की दूरी शंकु का अन्तराल है। अतएव यदि क क′=सूर्य का अर्धव्यास, ख ख′=पृथ्वी का अर्धव्यास, क ख=सूर्य और पृथ्वी का

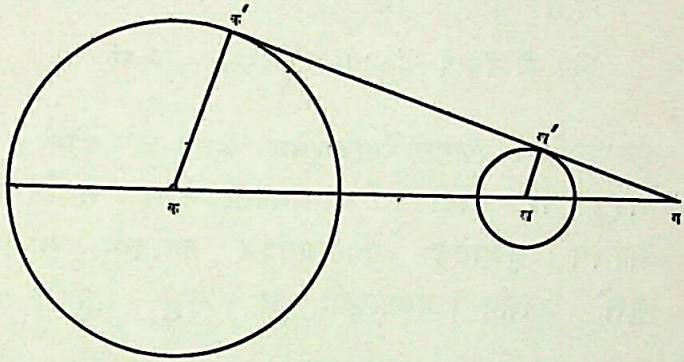

आकृति 2.9

अन्तराल तथा ख ग=पृथ्वी से भूच्छाया के अन्तिम बिन्दु की दूरी तो

$$\text{ख ग} = \frac{\text{ख ख}' \times \text{क ख}}{\text{क क}' - \text{ख ख}'}\ .$$

परमेश्वर ने इसको स्पष्ट करते हुए ग्रहणन्यायदीपिका में कहा है[1] :

भानोर्व्यासदलं दीपोन्नतिः शङ्कून्नतिर्भुवः।
शङ्कुदीपान्तराले भूः स्याद्रवेर्योजनश्रुतिः ॥7॥

अर्थात् रवि का अर्धव्यास दीप की ऊँचाई, पृथ्वी का अर्धव्यास शंकु की ऊँचाई एवं पृथ्वी से रवि की योजनों में दूरी शंकु और दीप के बीच की दूरी है।

भास्कर प्रथम के उदाहरण :

(1) 72 अंगुल ऊँचे दीप से 12 अंगुल ऊँचे शंकु की छाया की लम्बाई 16 अंगुल है, तो दीप से शंकु का अन्तराल क्या है ?

ऊपर के सूत्र से

$$\text{म ग} = \frac{\text{म छ} \times \text{क ख}}{\text{म श}} = \frac{16 \times 60}{12} = 80 \text{ अंगुल}\ .$$

(2) दीप से 50 अंगुल पर स्थित शंकु की छाया की लम्बाई 10 अंगुल है, तो दीप की ऊँचाई क्या है ?

---

[1]परमेश्वरकृत ग्रहणन्यायदीपिका, विश्वेश्वरानन्द संस्थान, होशियारपुर द्वारा प्रकाशित, आर्या 7।

उपर्युक्त सूत्र से,

$$\text{क ख} = \frac{\text{म ग} \times \text{म श}}{\text{म छ}} = \frac{50 \times 12}{10} = 60 \text{ अंगुल।}$$

अतएव, दीप की ऊँचाई $= (60 + 12)$ अंगुल $= 72$ अंगुल।

छायागुणितं छायाग्रविवरमूनेन भाजिता कोटी।
शङ्कुगुणा कोटी सा छायाभक्ता भुजा भवति ॥१६॥
यश्चैव भुजावर्गः कोटीवर्गश्च कर्णवर्गः सः।
वृत्ते शरसंवर्गोऽर्धज्यावर्गः स खलु धनुषोः ॥१७॥

अनुवाद—(यदि दीप यष्टि और दो शंकु एक ही सीधी रेखा में हों तो) छायाग्रों के अन्तराल को छाया से गुणाकर फल को छायाओं की लम्बाई के अन्तर से भाग देने पर कोटि प्राप्त होती है। कोटि को शंकु से गुणाकर छाया से भाग देने पर भुजा मिलती है। भुजा के वर्ग और कोटि के वर्ग के योग के तुल्य कर्ण का वर्ग होता है। किसी वृत्त में दोनों शरों का गुणनफल चाप की अर्धज्या के वर्ग के तुल्य होता है ॥16-17॥

आकृति 2.10 में क ख भुज है, ख छ कोटि है, ग च तथा घ झ दो शंकु हैं अथवा एक ही शंकु की दो स्थितियाँ हैं।

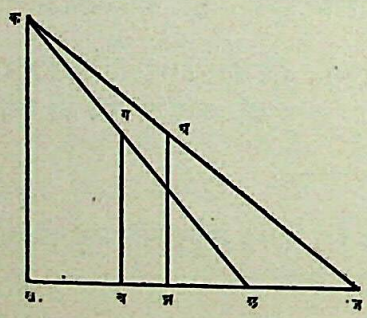

आकृति 2.10

छ ज छायाग्रों का अंतराल है च छ और झ ज छायाएँ हैं।

अब $\frac{\text{च ग}}{\text{क ख}} = \frac{\text{च छ}}{\text{ख छ}}$,

तथा $\frac{\text{झ घ}}{\text{क ख}} = \frac{\text{झ ज}}{\text{ख ज}}$,

किन्तु, ग च = झ ख,

अतएव, $\frac{\text{च छ}}{\text{ख छ}} = \frac{\text{झ ज}}{\text{ख ज}} = \frac{\text{झ ज—च छ}}{\text{ख ज—ख छ}} = \frac{\text{छायाओं की लम्बाइयों का अन्तर}}{\text{छायाओं के बीच अन्तराल}}$,

अतएव, $\text{ख छ} = \frac{\text{च छ} \times \text{छायाओं के बीच अन्तराल}}{\text{छायाओं की लम्बाइयों का अन्तर}}$।

पुनः $\frac{\text{ग च}}{\text{क ख}} = \frac{\text{च छ}}{\text{ख छ}}$,

अतएव, $\text{क ख} = \frac{\text{ख छ} \times \text{ग च}}{\text{च छ}} = \frac{\text{कोटि} \times \text{शंकु}}{\text{छाया}}$।

यही सिद्ध करना था।

'भुजा के वर्ग और कोटि के वर्ग का योग कर्ण के वर्ग के तुल्य होता है' यह सूत्र पाइथागोरस प्रमेय के नाम से जाना जाता है परन्तु इसकी जानकारी बहुत पहले से ही शुल्व सूत्रों के काल से थी।

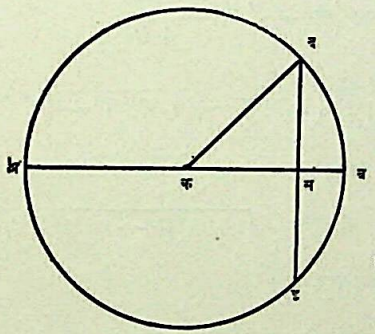

आकृति 2.11

आकृति 2.11 में अ द ब इ वृत्त का क केन्द्र तथा अ ब व्यास है द इ ज्या द्वारा परिधि द ब इ एवं द अ इ दो चापों में विभाजित होता है जिनके शर ब स तथा अ स हैं।

क द स त्रिभुज में

$\text{द स}^2 = \text{क द}^2 - \text{क स}^2$,

$= (\text{क द} + \text{क स})\ (\text{क द} - \text{क स})$।

किन्तु, $\text{क द} + \text{क स} = \text{अ क} + \text{क स} = \text{अ स}$,

तथा $\text{क द} - \text{क स} = \text{क ब} - \text{क स} = \text{स ब}$।

अतएव, $\text{द स}^2 = \text{अ स} \times \text{ब स}$,

यही सिद्ध करना था।

पुनः $\text{द स}^2 = \text{अ स} \times \text{ब स}$,

$$=(\text{अ ब}-\text{ब स})\ \text{ब स},$$

और $\text{अ ब}\times\text{ब स}=\text{द स}^2+\text{ब स}^2=\text{द ब}^2$,

अथवा, $\text{द ब}^2=\text{अ ब}\times\text{ब स}$,

$$=\text{अ ब}\ (\text{क ब}-\text{क स})\ ।$$

यदि अर्धव्यास=अ, तो अ ब=2 अ, क ब=अ, $\text{क स}=\sqrt{\text{अ}^2-\text{द स}^2}$ ।

यदि द इ उस य भुजीय बहुभुजक्षेत्र की भुजा है जिसका परिमाप प हो तो

$$\text{द स}=\frac{1}{2}\ \text{द इ}=\frac{\text{प}}{2\,\text{य}}\ ।$$

इसी तरह 2 य भुजीय बहुभुजक्षेत्र की भुजा द ब है। यदि इसका परिमाप प′ है तो

$$\text{द ब}=\frac{\text{प}'}{2\,\text{य}}\ ।$$

अतएव $\frac{\text{प}'^2}{4\,\text{य}^2}=2\,\text{अ}\left(\text{अ}-\sqrt{\text{अ}^2-\frac{\text{प}^2}{4\,\text{य}^2}}\right)$,

$$=\frac{2\,\text{अ}}{2\,\text{य}}\left(2\,\text{अ य}-\sqrt{4\,\text{अ}^2\,\text{य}^2-\text{प}^2}\right),$$

अथवा $\text{प}'^2=4\,\text{अ य}\left(2\,\text{अ य}-\sqrt{4\text{अ}^2\text{य}^2-\text{प}^2}\right)$,

$$=\left(8\,\text{अ}^2\text{य}^2-\sqrt{64\,\text{अ}^4\text{य}^4-16\,\text{अ}^2\text{य}^2\text{प}^2}\right)\ ।$$

भास्कर प्रथम के उदाहरण :

(1) दो समान शंकुओं की छायाओं की लम्बाइयाँ क्रमशः 10 तथा 16 अंगुल हैं तथा छायाओं का अन्तराल 30 अंगल है, तो दीप की ऊँचाई तथा शंकुओं की स्थितियाँ क्या हैं ?

उपर्युक्त सूत्रों से

$$\text{ख छ}=\frac{\text{च छ}\times\text{छायाओं का अन्तराल}}{\text{छायाओं की लम्बाइयों का अन्तर}},$$

$$=\frac{10\times30}{6}=50\ \text{अंगुल}\ ।$$

अतएव, ख च=(50—10) अंगुल=40 अंगुल ।

इसी प्रकार, $\text{ख ज}=\frac{16\times30}{6}=80$ अंगुल ।

अतएव, ख झ=(80—16) अंगुल=64 अंगुल ।

पुनः $\quad$ क ख $= \dfrac{\text{ख छ} \times \text{ग च}}{\text{च छ}}$,

$$= \frac{50 \times 12}{10} = 60 \text{ अंगुल।}$$

(2) एक वृत्त में यह देखा गया कि व्यास 10, शरों के खण्ड 2 तथा 8 एवं दो अन्य शरों के खण्ड 9 तथा 1 हैं, तो उनकी अलग अलग अर्धज्याएँ क्या हैं ?

पहले प्रश्न में अर्धज्या $= \sqrt{2 \times 8} = 4$,

दूसरे प्रश्न में अर्धज्या $= \sqrt{9 \times 1} = 3$।

(3) 18 हाथ ऊँचा बाँस वायु के कारण बीच से टूटकर कर इस तरह गिरता है कि उसका शीर्ष जड़ से 6 हाथ पर है, तो उसके टूटने का स्थान क्या है ?

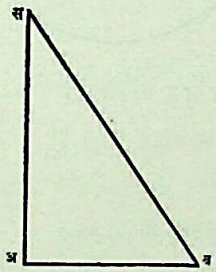

आकृति 2.12

आकृति 2.12 में, $\quad$ अ ब $= 6$ हाथ,

ब स + अ स $= 18$ हाथ,

ब स^2 — अ स^2 = अ ब^2 = 36 हाथ^2,

अतः $\quad$ ब स — अ स $= 2$ हाथ,

तथा $\quad$ ब स $= 10$ हाथ, अ स $= 8$ हाथ।

(4) किसी पूर्ण प्रस्फुटित कमल की नाल जल से ठीक 8 अंगुल ऊपर है। वायु के झोंके से वह एक हाथ पर जल में डूब जाती है, तो जल की गहराई क्या है ?

इसमें कमल के मूल को केन्द्र तथा उसकी नाल को अर्धव्यास मानकर वृत्त खींचें तो अर्धज्या 24 अंगुल, एक शर 8 अंगुल, तथा दूसरा शर = (जल की गहराई + नाल की लम्बाई)।

अतएव, $\quad$ जल की गहराई + नाल की लम्बाई $= \frac{24^2}{8}$ अंगुल $= 72$ अंगुल।

नाल की लम्बाई — जल की गहराई $= 8$ अंगुल,

अतः $\quad$ नाल की लम्बाई $= \frac{1}{2}(72 + 8)$ अंगुल $= 40$ अंगुल,

जल की गहराई $= 32$ अंगुल।

इसे प्रश्न 3 की तरह भी हल किया जा सकता है।

(5) एक बाज़ 12 हाथ ऊँचे प्राकार पर बैठा है। वह एक चूहे को देखता है जो प्राकार के मूल से 24 हाथ पर है। चूहा भी बाज़ को देखकर प्राकार के मूल में स्थित अपनी बिल की ओर भागता है। पर बाज़ तिर्यक् पथ पर चल कर उसे पकड़ लेता है। (यदि दोनों की चालें समान हैं तो) चूहा कितनी दूर दौड़ सका तथा बाज़ क्षैतिज दिशा में कितना चला ?

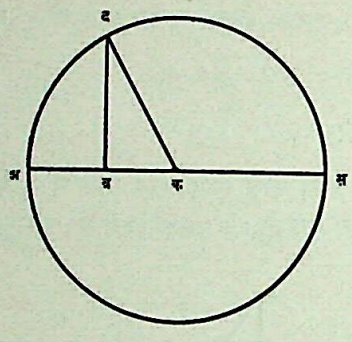

आकृति 2.13

क को केन्द्र मान कर वृत्त खींचें तो

ब द=12 हाथ, ब स=24 हाथ।

अतः, अ ब=6 हाथ।

क स=$\frac{1}{2}$ (अ ब+ब स)=15 हाथ,

तथा ब क=9 हाथ।

अतः चूहा 15 हाथ चला तथा बाज़ क्षैतिज दिशा में 9 हाथ चला।

(6) पानी के एक हौज़ का आयाम 6×12 है। उसके ईशान कोण में एक मछली तथा वायव्य कोण में एक सारस है। सारस के डर से मछली दक्षिण दिशा में तिरछे चली, परन्तु किनारे से चल कर सारस ने उसे दूसरे किनारे पर पकड़ लिया। (यदि दोनों की चालें बराबर हों तो) उन्होंने कितनी दूरियाँ तय कीं ?

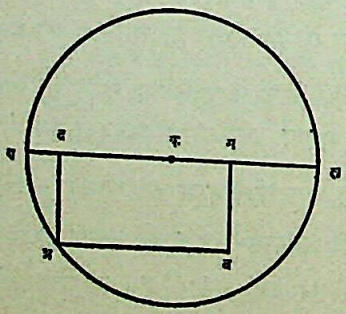

आकृति 2.14

अ ब स द हौज़ है जिसमें मछली अ पर तथा सारस ब पर हैं। यदि सारस ने मछली को क बिन्दु पर पकड़ा तो मछली अ क दरी चली तथा सारस ब स+स क=अ क। यदि

क स को ख विन्दु तक बढ़ायें, जिसमें स ख=स ब, तो क अ=क ख। क को केन्द्र तथा क अ को अर्धव्यास मान कर वृत खींचें तथा क द को वृत्त की परिधि ग तक बढ़ायें तो

$$\text{ग द} \times \text{द ख} = \text{अ द}^2 = 36,$$

अतः $$\text{ग द} = \frac{36}{18} = 2,$$

तथा $$\text{क अ} = \text{क ख} = \tfrac{1}{2}\,(\text{ग द} + \text{द ख}),$$
$$= 10\,।$$

सारस तथा मछली इतनी ही दूरी चले।

ग्रासोने द्वे वृत्ते ग्रासगुणे भाजयेत् पृथक्त्वेन।
ग्रासोनयोगभक्ते सम्पातशरौ परस्परतः ॥१८॥

अनुवाद—(जब दो वृत्त एक दूसरे को काटते हैं तब उनकी परिधियों के बीच का भाग ग्रास कहलाता है। विशेषतः ग्रास की नाप उनके व्यासों के उस भाग से की जाती है जो दोनों वृत्तों के लिए उभयनिष्ठ है।) व्यास में से ग्रास को घटाकर और उसे ग्रास से गुणित कर फल को ग्रास हीन व्यासों के योग से विभाजित करने पर उनके परस्पर सम्पात शर प्राप्त होते हैं। परस्पर का अर्थ यह है कि एक के ग्रासहीन व्यास से दूसरे का शर मिलता है ॥18॥

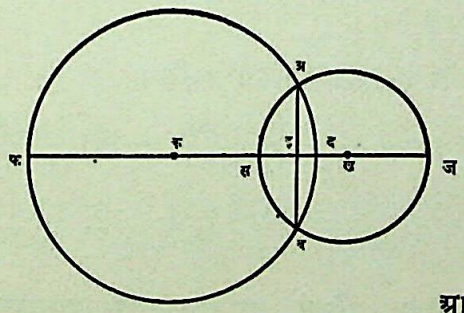

आकृति 2.15

आकृति 2.15 में अ फ ब द तथा अ स ब ज दो वृत्त हैं। स द ग्रास है। इ द पहले वृत्त का शर है और स इ दूसरे वृत्त का शर है। पहले वृत्त का ग्रासोन भाग फ स है और दूसरे वृत्त का ग्रासोन भाग द ज है। तो सूत्र के अनुसार

$$\text{इ द} = \frac{\text{स द} \times \text{द ज}}{\text{फ स} + \text{द ज}},$$

तथा

$$\text{इ स} = \frac{\text{स द} \times \text{फ स}}{\text{स फ} + \text{द ज}}\ ।$$

उपपत्ति : यदि फ द=व, स ज=व′, स द=ग्र, इ द=य, स इ=र,

$$\text{तो ग्र इ}^2 = \text{य (व—य)} = \text{र(व′—र)},$$

$$\therefore \text{य व—र व′} = \text{य}^2 - \text{र}^2 = (\text{य}+\text{र})(\text{य}-\text{र})\ ।$$

पर $\text{य}+\text{र}=\text{ग्र},$

अतएव,

$$\text{य व—र व′} = \text{ग्र (य—र)},$$

अथवा, $$\frac{\text{य}}{\text{व′—ग्र}} = \frac{\text{र}}{\text{व—ग्र}} = \frac{\text{य}+\text{र}}{(\text{व′—ग्र})+(\text{व—ग्र})} = \frac{\text{ग्र}}{(\text{व′—ग्र})+(\text{व—ग्र})},$$

अतएव,

$$\text{य} = \frac{\text{ग्र (व′—ग्र)}}{(\text{व′—ग्र})+(\text{व—ग्र})},$$

तथा $$\text{र} = \frac{\text{ग्र (व—ग्र)}}{(\text{व′—ग्र})+(\text{व—ग्र})}\ ।$$

भास्कर प्रथम का उदाहरण :

यदि चन्द्रमा के व्यास के 32 में से 8 ग्रसित हैं तथा छाया का व्यास 80 है तो छाया और चन्द्रमा के शर क्या हैं ?

इस उदाहरण में व′=32, व=80, ग्र=8 ।

अतएव, छाया का शर $= \frac{8\ (32-8)}{(32-8)+(80-8)} = \frac{8 \times 24}{24+72} = 2,$

चन्द्रमा का शर $= \frac{8\ (80-8)}{(32-8)+(80-8)} = \frac{8 \times 72}{24+72} = 6\ ।$

इष्टं व्येकं दलितं सपूर्वमुत्तरगुणं समुखमध्यम् ।
इष्टगुणितमिष्टधनं त्वथवाद्यन्तं पदार्धहतम् ॥१९॥

अनुवाद—इष्ट में से एक घटा कर उसका आधा करे उसमें पूर्व पदों की संख्या जोड़कर फल में उत्तर (चय) से गुणा करे। इसमें मुख अर्थात् आदि पद जोड़ने से मध्य पद प्राप्त होता है। इसमें इष्ट से गुणा करने से धन (श्रेढ़ी का योग) प्राप्त होता है। अथवा आदि तथा अन्तिम पद के योग में पदों की संख्या के आधे से गुणा करने से योग प्राप्त होता है ॥19॥

इष्ट =पदों की वह संख्या जिनका योग प्राप्त करना है।

उत्तर=चय अर्थात् पदों का अन्तर।

मुख =प्रथम पद अथवा आदि पद।

पूर्व =किसी पद से पहिले के पदों की संख्या

यदि प्रथम पद म है, इष्ट इ है तथा चय च है तो

$$\text{मध्य पद}=\left(\frac{\text{इ}-1}{2}\right)\text{च}+\text{म}, \qquad (1)$$

$$\text{धन}=\text{इ}\left\{\text{म}+\frac{\text{च}}{2}(\text{इ}-1)\right\}। \qquad (2)$$

परन्तु यदि य वें पद से आरम्भ कर के इ पदों का योग प्राप्त करना है तो,

$$\text{मध्य पद}=\left(\frac{\text{इ}-1}{2}+\text{य}-1\right)\text{च}+\text{म}=\frac{\text{च}}{2}(2\,\text{य}+\text{इ}-3)+\text{म}, \qquad (3)$$

$$\text{धन}=\text{इ}\left\{\frac{\text{च}}{2}(2\,\text{य}+\text{इ}-3)+\text{म}\right\}। \qquad (4)$$

यदि अन्तिम पद अ है, तो दूसरे भाग के सूत्र के अनुसार

$$\text{धन}=\frac{\text{इ}}{2}(\text{म}+\text{अ})। \qquad (5)$$

अतएव द्वितीय तथा अन्तिम समीकरणों से

$$\frac{\text{इ}}{2}(\text{म}+\text{अ})=\text{इ}\left\{\text{म}+\frac{\text{च}}{2}(\text{इ}-1)\right\},$$

$$=\frac{\text{इ}}{2}\left\{2\,\text{म}+\text{च}\,(\text{इ}-1)\right\},$$

$$\text{अतएव}\quad \text{अ}=\text{म}+(\text{इ}-1)\,\text{च}। \qquad (6)$$

इस तरह यह स्पष्ट है कि इस आर्या में ये 6 सूत्र निहित हैं। इस आर्या के संबंध में परमेश्वर ने एक उदाहरण दिया है जिसे यहाँ उद्धृत किया जाता है[1]।

आदि पद 5, चय 7, गच्छ=17।

अतएव समीकरण (1) के अनुसार

$$\text{मध्य पद}=\frac{17-1}{2}\times 7+5=61,$$

$$\text{सर्व धन}=17\times 61=1037।$$

---

[1]परमेश्वरकृत आर्यभटीय का भाष्य, पृ० 37।

यदि आठवें पद से आरम्भ करके तीन पदों का योग निकालना है तो समीकरण (3) से

$$\text{मध्य पद}=\left(\frac{3-1}{2}+7\right)7+5,$$
$$=61,$$
$$\text{धन}\quad=61\times3=183\text{ ।}$$

भास्कर प्रथम ने अपने भाष्य में इस सूत्र के कई उदाहरण दिये हैं।

परमेश्वर ने कहा है कि यदि कोई पद मध्यपद न हो तो मध्य से पहिले और पश्चात् के दो पदों के योग का आधा मध्य पद होता है।

गच्छोऽष्टोत्तरगुणिताद् द्विगुणाद्युत्तरविशेषवर्गयुतात् ।
मूलं द्विगुणाद्यूनं स्वोत्तरभाजितं सरूपार्धम् ॥२०॥

अनुवाद—धन को आठ गुने चय से गुणें और फल में प्रथम पद के दूने तथा चयके अन्तर के वर्ग को जोड़ें। फिर इस फल के वर्गमूल में से प्रथम पद के दूने को घटा कर फल में चय से भाग दें। प्राप्त लब्धि में एक जोड़ कर फल का आधा करें तो श्रेढ़ी के पदों की संख्या प्राप्त होगी ॥20॥

इस सूत्र के अनुसार

$$\text{इ}=\tfrac{1}{2}\left(\frac{\sqrt{8\,\text{ध च}+(2\text{म}-\text{च})^2}-2\text{म}}{\text{च}}+1\right),$$

जिसमें ध श्रेढ़ी का योग है और अन्य संकेत वही हैं जो पिछली आर्या में थे। पिछली आर्या के दूसरे समीकरण से

$$\text{ध}=\text{इ}\left\{\text{म}+\frac{\text{च}}{2}(\text{इ}-1)\right\},$$
$$=\text{इ}\left(\text{म}-\frac{\text{च}}{2}\right)+\tfrac{1}{2}\text{इ}^2\text{च},$$

अथवा

$$2\text{ध}=\text{इ}^2\text{च}+\text{इ}\,(2\text{म}-\text{च}),$$

अथवा

$$\text{इ}^2\text{च}+\text{इ}\,(2\text{म}-\text{च})-2\text{ध}=0,$$
$$\therefore\ \text{इ}=\frac{-(2\text{म}-\text{च})\pm\sqrt{(2\text{म}-\text{च})^2+8\text{ध च}}}{2\,\text{च}}\text{ ।}$$

इसमें करणी के पहले केवल धन चिह्न लिया जा सकता है क्योंकि इ मान ऋणात्मक नहीं हो सकता। अतएव

$$इ=\frac{1}{2}\left(\frac{\sqrt{8\,ध\,च+(2म-च)^2}-2म}{च}+1\right)।$$

इससे स्पष्ट है कि आर्यभट को द्विघातीय समीकरण

$$क\,य^2+ख\,य+ग=0$$

का हल प्राप्त करने की विधि ज्ञात थी।

पिछली आर्या के उदाहरण में ध=1037, म=5, च=7 हैं। अतः

$$इ=\frac{1}{2}\left(\frac{\sqrt{1037\times8\times7+(10-7)^2}-10}{7}+1\right),$$

$$=\frac{1}{2}\left(\frac{\sqrt{58072+9}-10}{7}+1\right),$$

$$=\frac{1}{2}\left(\frac{241-10}{7}+1\right)=\frac{34}{2}=17।$$

वख्शाली ग्रंथ में इस सूत्र के उपयोग का उदाहरण दिया हुआ है।

भास्कर प्रथम का उदाहरण :

किसी श्रेढ़ी के चय तथा मुख क्रमशः 9 तथा 8 हैं और धन 583 है, तो पदों की संख्या क्या है ?

$$इ=\frac{1}{2}\left(\frac{\sqrt{583\times8\times9+(16-9)^2}-16}{9}+1\right)।$$

$$=11।$$

एकोत्तराद्युपचितेर्गच्छाद्येकोत्तरत्रिसंवर्गः।
षड्भक्तस्स चितिधनस्सैकपदघनो विमूलो वा ॥२१॥

अनुवाद—जिसका आदि पद एक है और चय भी एक है ऐसी उपचिति के चितिघन का मान, पद, पद धन एक तथा पद धन दो, इन तीन संख्याओं के परस्पर गुणनफल को छः से विभाजित करने से प्राप्त होता है, अथवा पद धन एक के घन और उस घन के घनमूल के अन्तर को भी छः से विभाजित करने से प्राप्त होता है ॥21॥

अर्थात् यदि संख्या प है तो

$$चितिघन\ का\ मान=\frac{प\,(प+1)\cdot(प+2)}{6},$$

$$=\frac{(प+1)^3-(प+1)}{6}।$$

यदि हम एक पंक्ति में प गुलिकाएँ रखें, दूसरी पंक्ति में (प—1) गुलिकाएँ, तीसरी में (प—2) गुलिकाएँ और अन्त में एक गुलिका हो जैसा आकृति 2.16 में दिखाया गया है, फिर इसके ऊपर के स्तर में प्रथम पंक्ति में (प—1) गुलिकाएँ द्वितीय में (प—2) गुलिकाएँ और इसी तरह अन्त में एक गुलिका हो। इसी तरह अन्य स्तरों में भी गुलिकाएँ रखी

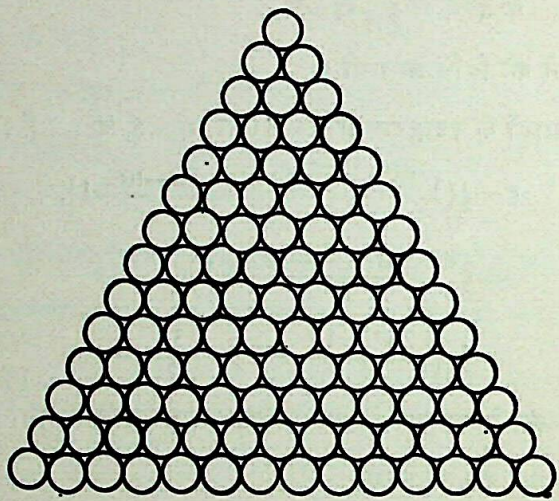

आकृति 2.16

जाएँ और शीर्षस्थ स्तर में एक गुलिका हो तो इस ढेर की गुलिकाओं की संख्या ऊपर दिये सूत्रों से प्राप्त होगी। निम्नतम स्तर में $\frac{प(प+1)}{2}$ गुलिकाएँ, उससे ऊपर के स्तर में $\frac{(प-1)प}{2}$ गुलिकाएँ और इसी तरह शीर्षस्थ स्तर में 1 गुलिका होगी। अतएव ढेर में गुलिकाओं की कुल संख्या

$$=\frac{1}{2}\{1\times 2+2\times 3+3\times 4+\ldots\ldots\ldots+(प-1)\,प+प\,(प+1)\},$$

$$=\frac{1}{2}\{[1^2+2^2+3^2+\ldots\ldots+(प-1)^2+प^2]+[1+2+3+\ldots\ldots+(प-1)+प]\},$$

अब कल्पना करें कि

$$1^2+2^2+3^2+\ldots\ldots+(प-1)^2+प^2=य\,प^3+र\,प^2+ल\,प+व\,।$$

यदि इसमें हम क्रमशः प=1,2,3,4 रखें तो निम्न समीकरण प्राप्त होंगे :

$$य+र+ल+व=1,$$

$$8\,य+4\,र+2\,ल+व=5,$$

$$27\,य+9र+3\,ल+व=14,$$

$$64\,य+16\,र+4\,ल+व=30\,।$$

प्रथम को द्वितीय में से, द्वितीय को तृतीय में से, तृतीय को चतुर्थ में से घटाने से

$$7य+3र+ल=4,$$
$$19य+5र+ल=9,$$
$$37य+7र+ल=16।$$

यही क्रिया फिर दुहराने से

$$12य+2र=5,$$
$$18य+2र=7,$$

अतएव $य=\frac{1}{3}, र=\frac{1}{2}, ल=\frac{1}{6}, व=0$ ।

अतएव गुलिकाओं की संख्या $=\frac{1}{2}\left(\frac{2प^3+3प^2+प}{6}+\frac{प(प+1)}{2}\right)$,

$$=\frac{2प^3+6प^2+4प}{12},$$
$$=\frac{प^3+3प^2+2प}{6},$$
$$=\frac{प(प^2+3प+2)}{6},$$
$$=\frac{प(प+1)(प+2)}{6},$$
$$=\frac{(प+1)(प^2+2प+1-1)}{6},$$
$$=\frac{(प+1)\{(प+1)^2-1\}}{6},$$
$$=\frac{(प+1)^3-(प+1)}{6}।$$

आर्यभट ने इसे चितिघन कहा है। परन्तु ब्रह्मगुप्त आदि ने इसे संकलित संकलित की संज्ञा दी है[1]।

यह आश्चर्य की बात है कि इस शुद्ध सूत्र को जानते हुए भी आर्यभट ने आर्या 6 में षडश्रि के लिए अशुद्ध सूत्र दिया है।

भास्कर प्रथम का उदाहरण :

त्रिभुजाकार चितिघनों में क्रमशः 5, 8 तथा 14 स्तर हैं। उनमें (गुलिकाओं को) संख्याएँ क्या हैं ?

पाँच स्तर के ढेर में गुलिकाओं की संख्या

$$=1+(1+2)+(1+2+3)+\ldots\ldots+(1+2+3+4+5),$$
$$=\frac{5\times6\times7}{6}=35।$$

इसी प्रकार 8 स्तर में संख्या 120 तथा 14 में संख्या 560 हैं।

---

[1]ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त, गणिताध्याय, आर्या 19 एवं परमेश्वरकृत आर्यभटीय का भाष्य, पृ० 39।

सैकसगच्छपदानां क्रमात् त्रिसंवर्गितस्य षष्ठोंऽशः ।
वर्गचितिघनस्स भवेच्चितिवर्गो घनचितिघनश्च ॥२२॥

अनुवाद—पदों की संख्या, यह संख्या धन एक तथा इस दूसरी संख्या तथा पदों की संख्या के योग, इन तीनों के गुणनफल के छठे भाग के तुल्य वर्गचितिघन का मान होता है। चितिवर्ग के तुल्य घनचितिघन अर्थात् पद तक घन संख्याओं का योग होता है ॥22॥

इस सूत्र के अनुसार

$$\frac{प(प+1)}{6}\frac{(2प+1)}{} = 1^2+2^2+3^2+\cdots\cdots+(प-1)^2+प^2,$$

एवं $$\left\{\frac{प\,(प+1)}{2}\right\}^2 = 1^3+2^3+3^3+\cdots\cdots+)प-1)^3+प^3\,।$$

पहले सूत्र की उपपत्ति पिछली आर्या में दी जा चुकी है। कल्पना करें कि

$$य\,प^4+र\,प^3+ल\,प^2+व\,प = 1^3+2^3+3^3+\cdots\cdots+(प-1)^3+प^3,$$

तो

$$य+र+ल+व = 1,$$
$$16य+8र+4ल+2व = 9,$$
$$81य+27र+9ल+3व = 36,$$
$$256य+64र+16ल+4व = 100,$$

अथवा

$$14य+6र+2ल = 7,$$
$$78य+24र+6ल = 33,$$
$$252य+60र+12ल = 96,$$

अथवा

$$36य+6र = 12,$$
$$96य+12र = 30\,।$$

अतः $य=\frac{1}{4}$, $र=\frac{1}{2}$, $ल=\frac{1}{4}$, $व=0$।

अतएव, घनों का योग $=\dfrac{प^4+2प^3+प^2}{4}$,

$$=\left\{\frac{प\,(प+1)}{2}\right\}^2\,।$$

भास्कर प्रथम के उदाहरण :

(1) वर्गचितिघनों के स्तरों की संख्याएँ 7, 8 तथा 17 हैं। उनमें (ईंटों की) संख्याएँ क्या हैं ?

प्रथम ढेर में संख्या $=1^2+2^2+3^2+\cdots\cdots+7^2$,

$$=\frac{7\times8\times15}{6}=140\,।$$

8 स्तर में संख्या 204 तथा 17 स्तर में संख्या 1785 हैं।

(2) तीन घनचितिघनों में स्तरों की संख्याएँ 5, 4 तथा 6 हैं। उनमें ईंटों की संख्याएँ क्या हैं ?

प्रथम ढेर में ईंटों की संख्या

$$=1^3+2^3+3^3+4^3+5^3,$$

$$=\left(\frac{5\times 6}{2}\right)^2=225।$$

4 स्तर में संख्या 100 तथा 6 में संख्या 441 हैं।

सम्पर्कस्य हि वर्गाद्विशोधयेदेव वर्गसम्पर्कम्।
यत्तस्य भवत्यर्धं विद्याद्गुणकारसंवर्गम् ॥२३॥

अनुवाद—दो राशियों के योग के वर्ग में से उन दोनों राशियों के वर्गों के योग को घटायें, फल का आधा करें तो उन दोनों राशियों का गुणनफल प्राप्त होगा ॥23॥

यदि राशियाँ क एवं ख हैं तो

$$(\text{क}+\text{ख})^2=(\text{क}+\text{ख})\ (\text{क}+\text{ख})=\text{क}^2+2\text{क ख}+\text{ख}^2,$$

अतः $$\frac{(\text{क}+\text{ख})^2-\text{क}^2-\text{ख}^2}{2}=\text{क ख}।$$

परमेश्वर का दिया उदाहरण[1] :

पाँच और सात दो राशियों का गुणनफल क्या होगा ?

इन राशियों का योग 12। इसका वर्ग 144। इन राशियों के वर्ग 25 तथा 49। इनके जोड़ 74 को 144 में से घटाने पर शेष 70। इसका आधा 35 दोनों राशियों का गुणनफल है।

यदि दो राशियों का योग तथा उनके वर्गों का योग दिये हों तो इस सूत्र के उपयोग से उनका गुणनफल ज्ञात किया जा सकता है। फिर आर्या 24 में दिये सूत्र के द्वारा उनके अन्तर का वर्ग ज्ञात किया जा सकता है। और अन्त में उन संख्याओं को ज्ञात किया जा सकता है। परमेश्वर के उदाहरण में दोनों संख्याओं का योग 12 और उनके वर्गों का योग 74 है। तो इस सूत्र से उनका गुणनफल 35 ज्ञात हुआ। फिर आर्या 24 के सूत्र के उपयोग से उनके अन्तर का वर्ग $=144-4\times 35=4$ है तथा उनका अन्तर 2 है और वे संख्याएँ 7 तथा 5 हैं।

---

[1]परमेश्वरकृत आर्यभटीय का भाष्य, पृ. 40।

द्विकृतिगुणात् संवर्गाद् द्वयन्तरवर्गेण संयुतान्मूलम् ।
अन्तरयुक्तं हीनं तद्गुणकारद्वयं दलितम् ॥२४॥

अनुवाद—दो के वर्ग से दो राशियों के गुणनफल को गुणित कर उनके अन्तर के वर्ग को फल में जोड़ें। प्राप्त राशि के वर्गमूल में अन्तर को जोड़ें तथा घटायें और फलों का आधा करें तो दोनों राशियाँ प्राप्त होंगी ॥24॥

यदि दोनों राशियाँ य तथा र हैं तो

$$4\,य\,र+(य-र)^2=4\,य\,र+य^2-2\,य\,र+र^2,$$
$$=(य+र)^2,$$

अतः $\{4\,य\,र+(य-र)^2\}^{\frac{1}{2}}=य+र,$

$$(य+र)+(य-र)=2\,य,$$

तथा $(य+र)-(य-र)=2\,र।$

इस सूत्र के द्वारा

$$य\,र=क,$$
$$य-र=ख,$$

इन दो समीकरणों की सहायता से य तथा र का मान निकाला जा सकता है।

$$य=\frac{\sqrt{4क+ख^2}+ख}{2},$$

$$र=\frac{\sqrt{4\,क+ख^2}-ख}{2}।$$

भास्कर का उदाहरण :

दो संख्याओं का गुणनफल 8 और अन्तर 2 हैं, (दो अन्य संख्याओं का) गुणनफल 18 तथा अन्तर 7 हैं। दोनों प्रश्नों में कौन सी संख्याएँ गुणित की गयी हैं ?

पहले प्रश्न की एक संख्या $=\frac{\sqrt{4\times 8+2^2}+2}{2},$

$$=4,$$

दूसरी संख्या $=\frac{\sqrt{4\times 8+2^2}-2}{2},$

$$=2।$$

दूसरे प्रश्न की एक संख्या $=\frac{\sqrt{4\times 18+7^2}+7}{2},$

$$=9,$$

$$\text{दूसरी संख्या} = \frac{\sqrt{4 \times 18 \times 7^2} - 7}{2},$$

$$= 2 \text{ ।}$$

मूलफलं सफलं कालमूलगुणमर्धमूलकृतियुक्तम् ।
मूलं मूलार्धोनं कालहृतं स्यात् स्वमूलफलम् ॥२५॥

अनुवाद—यदि मूल का फल (व्याज) (अपने कुछ काल के) व्याज के साथ दिया हो तो इस राशि को मूल और काल से गुणित कर गुणनफल में मूल के आधे का वर्ग जोड़ें। फल का वर्गमूल ज्ञात कर उसमें से मूल का आधा घटा दें। फल को काल से विभाजित करें तो लब्धि मूल का फल होगी ॥25॥

यदि मूल म, मूल का फल अपने फल सहित स, तथा काल क है तो फल

$$\text{य} = \frac{\sqrt{\text{स म क} + \left(\frac{\text{म}}{2}\right)^2} - \frac{\text{म}}{2}}{\text{क}}$$

इसमें यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि मूल का फल एक वर्ष अथवा एक महीने का होना चाहिए तथा फल का फल किसी नियत वर्ष अथवा महीनों का होना चाहिए।

यदि म मूल का एक वर्ष का व्याज य है तो य का क वर्षों का व्याज $\frac{\text{क य}^2}{\text{म}}$ होगा। अतएव

$$\text{स} = \text{य} + \frac{\text{क य}^2}{\text{म}},$$

अथवा,

$$\text{क य}^2 + \text{म य} - \text{म स} = 0,$$

अतएव

$$\text{य} = \frac{-\text{म} \pm \sqrt{\text{म}^2 + 4\text{म स क}}}{2\,\text{क}}.$$

इसमें करणी के पहले ऋण चिह्न त्याज्य है। अतएव,

$$\text{य} = \frac{\sqrt{\text{म स क} + \left(\frac{\text{म}}{2}\right)^2} - \frac{\text{म}}{2}}{\text{क}}.$$

उदाहरण :

यदि 400 रुपयों का एक वर्ष का व्याज अपने 8 वर्ष के व्याज के साथ 72 रुपया है तो 400 रुपयों का व्याज कितना है ?

यदि 400 रुपयों का व्याज य है तो

$$य=\frac{\sqrt{72\times400\times8+(200)^2}-200}{8},$$

$$=\frac{\sqrt{270400}-200}{8},$$

$$=40।$$

त्रैराशिक फलराशिं तमथेच्छाराशिना हतं कृत्वा ।
लब्धं प्रमाणभजितं तस्मादिच्छाफलमिदं स्यात् ॥२६॥

अनुवाद—त्रैराशिक में फल (प्रमाण फल) को इच्छा राशि से गुणित कर गुणन-फल को प्रमाण से विभाजित करें तो लब्धि इच्छा फल होगी ॥26॥

इस सूत्र के अनुसार

$$\text{इच्छा फल}=\frac{\text{प्रमाण फल}\times\text{इच्छा राशि}}{\text{प्रमाण}}।$$

यह स्पष्ट है कि प्रमाण और इच्छा राशि एक ही जाति की होती हैं।

उदाहरण :

आधा कोच तिहाव जल दसईं अंश सेवार ।
गज बावन बाकी बचै कतिक ताल विस्तार ॥

किसी तालाब का आधा भाग कीचड़, तीसरा भाग जल, दसवाँ भाग सेवार है। यदि 52 वर्गगज़ शेष बचता है तो ताल का विस्तार क्या है ?

कीचड़, जल तथा सेवार के भागों का योग $=\frac{1}{2}+\frac{1}{3}+\frac{1}{10}$,

$$=\frac{15+10+3}{30},$$

$$=\frac{14}{15}।$$

यदि शेष $\frac{1}{15}$ भाग $=52$ वर्ग गज़,
तो पूरा ताल $=780$ वर्ग गज़।

वख्शाली ग्रंथ से एक उदाहरण :

अध्यर्धं पल क्रीते त्रिभागं क्षय गच्छति।
अष्टादश पल क्रीता किं क्षयं बद पण्डित ॥

यदि डेढ़ पल खरीदने पर एक तिहाई पल क्षय को प्राप्त होता है तो हे पंडित बताओ अठारह पल खरीदा जाये तो कितना क्षय होगा।

उत्तर : 4 पल।

छेदाः परस्परहता भवन्ति गुणकारभागहाराणाम् ।
छेदगुणं सच्छेदं परस्परं तत्सवर्णत्वम् ॥२७॥

अनुवाद—गुणकार भागहार के छेद (हर) से गुणित होता है तथा भागहार गुणकार के छेदों से गुणित होता है। छेद सहित राशि अर्थात् भिन्न राशियों में परस्पर अंश और हर के गुणन से सवर्णत्व अर्थात् सजातीयता प्राप्त होती है ॥27॥

इस आर्या की प्रथम पंक्ति का संबंध पिछली आर्या से है। गोविन्दस्वामी ने महाभास्करीय के भाष्य में कहा है[1]: "यदि पुनः सच्छेदा राशयस्तदा प्रमाणच्छेदेन फलमिच्छां वा गुणयेत्। तच्छेदाभ्याम् प्रमाणम्।" अर्थात् यदि राशियाँ हर वाली अर्थात् भिन्न हों तो प्रमाण के हर से फल या इच्छा को गुणना चाहिए तथा उनके हरों से प्रमाण को गुणना चाहिए।

गोविन्दस्वामी की बात का स्पष्टीकरण करते हुए सिद्धान्तदीपिका में परमेश्वर कहते हैं[2]: "इच्छाप्रमाणफलराशीनां सच्छेदत्वे प्रमाणराशेः छेदेनेच्छाफलराश्योरेको निहन्तव्यः।.....इच्छाफलच्छेदाभ्यां द्वाभ्यामपि प्रमाणराशिर्निहन्तव्यः।" अर्थात् इच्छा, प्रमाण तथा प्रमाण फल राशियों के छेदयुक्त होने पर प्रमाण राशि के छेद से इच्छा एवं फल राशियों में केवल एक को गुणना चाहिए।.....इच्छा तथा फल दोनों के हर से प्रमाण राशि को गुणित करना चाहिए। परंतु आर्यभटीय भाष्य में परमेश्वर ने इससे भिन्न अर्थ दिया है।

इसी प्रकार नीलकंठ आर्यभटीय भाष्य में कहते हैं[3]: "गुणकारशब्देनैव फलराशिरिच्छाराशिश्च गृह्येते 'गुणकारद्वयमि' त्यादिवत्। अतएव बहुत्वं च। गुणकारयोर्भागहारस्य चेत्यर्थः। परस्पर हताः, गुणकारच्छेदौ भागहारहतौ भागहारच्छेदश्च गुणकार हतः।" अर्थात् गुणकार शब्द से फल राशि तथा इच्छा राशि दोनों का ग्रहण करना चाहिए। गुणकार दो हैं इस कारण बहुवचन है। अर्थ यह है कि दोनों गुणकारों का तथा भागहार का। 'परस्पर हताः' का अर्थ है कि दोनों गुणकारों के छेदों से भागहार को गुणित किया जाय तथा भागहार के छेद से गुणकार को गुणित किया जाय।

पिछली आर्या का सूत्र है:

$$\text{इच्छाफल} = \frac{\text{प्रमाण फल} \times \text{इच्छा राशि}}{\text{प्रमाण}}।$$

---

[1]गोविन्दस्वामिकृत महाभास्करीय भाष्य, मद्रास, पृ. 8।
[2]महाभास्करीय भाष्य, पृ. 10।
[3]नीलकंठकृत आर्यभटीय भाष्य, गणितपाद, पृ. 156।

इसमें प्रमाण फल तथा इच्छा राशि गुणकार तथा प्रमाण भागहार है। यदि तीनों ही सच्छेद हों तो शुद्धफल तब मिलेगा जब प्रमाणफल अथवा इच्छा राशि में किसी एक को प्रमाण के हर से गुणित किया जाय और प्रमाण को प्रमाणफल तथा इच्छा राशि दोनों ही के हरों से गुणित किया जाय।

उदाहरण :

यदि $\frac{7}{5}$ रुपये का $\frac{3}{4}$ किलो गेहूँ मिलता है तो $\frac{13}{2}$ रुपयों का कितना गेहूँ मिलेगा ?

$$\text{इच्छाफल} = \frac{\frac{3}{4} \times \frac{13}{2}}{\frac{7}{5}} = \frac{3 \times 13 \times 5}{7 \times 4 \times 2} = \frac{195}{56} \text{ किलो।}$$

यदि दोनों भिन्न $\frac{\text{क}}{\text{ख}}$ तथा $\frac{\text{ग}}{\text{घ}}$ हों तो क को घ से गुणित करने पर तथा ग को ख से गुणित करने पर सवर्णत्व होता है। यह भिन्नों के जोड़ने घटाने के लिए प्रचलित नियम है। सवर्ण का अर्थ है एक ही हर (छेद) का होना।

गुणकारा भागहरा भागहरा ये भवन्ति गुणकाराः ।
यः क्षेपः सोऽपचयोऽपचयः क्षेपश्च विपरीते ॥२८॥

अनुवाद—(ज्ञात राशि से अज्ञात राशि प्राप्त करने के लिए) विपरीत कार्य में जिससे गुणा किया गया हो उससे भाग देना चाहिए, जिससे भाग दिया गया हो उससे गुणा करना चाहिए, जो जोड़ा गया हो उसे घटाना चाहिए तथा जिसे घटाया गया हो उसे जोड़ना चाहिए ॥28॥

भास्कर के उदाहरण :

(1) कोई संख्या 2 से गुणित की जाती है, फल में 1 जोड़ा जाता है, फिर 5 से भाग दिया जाता है, फिर 3 से गुणा किया जाता है, फिर 2 घटाया जाता है, फिर 7 से भाग दिया जाता है तो 1 प्राप्त होता है। प्रथम संख्या क्या थी ?

$$\begin{aligned}\text{प्रथम संख्या} &= [\{(1 \times 7 + 2) \div 3\} \times 5 - 1] \div 2, \\ &= [(9 \div 3) \times 5 - 1] \div 2, \\ &= 7 \text{।}\end{aligned}$$

(2) वह कौन सी संख्या है जिसमें 3 से गुणा करें फिर 1 घटायें फिर आधा करें, फिर 2 जोड़ें, फिर 3 से भाग दें और अन्त में 2 घटायें तो 1 प्राप्त होगा ?

$$\begin{aligned}\text{प्रथम संख्या} &= [\{(1+2) \times 3 - 2\} \times 2 + 1] \div 3, \\ &= [7 \times 2 + 1] \div 3, \\ &= 5 \text{।}\end{aligned}$$

राश्यूनं राश्यूनं गच्छधनं पिण्डितं पृथक्त्वेन ।
व्येकेन पदेन हृतं सर्वधनं तद्भवत्येव ॥२९॥

अनुवाद—यदि एक एक राशि हीन संघधन ज्ञात हों तो उनको अलग अलग लिख कर जोड़ें तथा योग को पदों की संख्या से एक कम संख्या से विभाजित करें तो सब राशियों का जोड़ ज्ञात होगा ॥29॥

भास्कर के उदाहरण :

(1) एक वन में हाथियों के चार झुण्ड हैं, एक मद युक्त का, दूसरा मद हीन का, तीसरा हथिनियों का तथा चौथा किशोर हाथियों का। एक एक झुण्ड छोड़कर झुण्डों के हाथियों की संख्याएँ (क्रमशः) 30, 36, 49 तथा 50 हैं। सब हाथियों की ठीक संख्या तथा प्रत्येक झुण्ड के हाथियों की संख्या बताएँ।

कुल हाथियों की संख्या $=\frac{1}{3}(30+36+49+50)$,
$=55$।

अतएव मदयुक्त हाथियों की संख्या $=55-30=25$,
मदहीन हाथियों की संख्या $=55-36=19$,
हथिनियों की संख्या $=55-49=6$,
किशोरों की संख्या $=55-50=5$।

(2) हाथियों, घोड़ों, बकरियों, गधों, ऊँटों, खच्चरों तथा गायों की संख्याओं के योग, एक एक को छोड़ते हुए, 28, और 28 ही बार बार 1 कम करके और अन्तिम संख्या को एक और कम करके हैं। यदि आपने आर्यभट की गणित को गुरु से ठीक से पढ़ा है तो जानवरों की कुल संख्या और उनकी संख्याएँ अलग अलग बताएँ।

कुल संख्या $=\frac{1}{6}(28+27+26+25+24+23+21)$,
$=29$।

अतएव, हाथी 1, घोड़े 2, बकरियाँ 3, गधे 4, ऊँट 5, खच्चर 6, गायें 8।

बख्शाली ग्रन्थ का एक उदाहरण :

पाँच आदमियों में क्रमशः प्रथम, द्वितीय आदि को छोड़कर उनके धनों का योग 317, 347, 357, 362 तथा 365 हैं, तो उनका सम्मिलित धन क्या है और उनके धनों के पृथक् पृथक् परिमाण क्या हैं ?

आदमियों का सम्मिलित धन

$=\frac{1}{4}(317+347+357+362+365)$,
$=437$।

अतएव उनके धन क्रमशः 120, 90, 80, 75 तथा 72 हैं।

यदि प्रत्येक के धन $ध_1, ध_2 \ldots ध_न$ हैं तथा

$$ग_1 = ध_2 + ध_3 + \cdots + ध_न;\ ग_2 = ध_1 + ध_3 + \cdots + ध_न,$$

$$ग_प = ध_1 + ध_2 + \cdots ध_{प-1} + ध_{प+1} + \cdots + ध_न,$$

तो $$ग_1 + ग_2 + \cdots + ग_न = (न-1)(ध_1 + ध_2 + \cdots + ध_न),$$

और $$ग = ध_1 + ध_2 + \cdots + ध_न = \left(\frac{1}{न-1}\right)\left(ग_1 + ग_2 + \cdots + ग_न\right)।$$

गुलिकान्तरेण विभजेद् द्वयोः पुरुषयोस्तु रूपकविशेषम् ।
लब्धं गुलिकामूल्यं यद्यर्थकृतं भवति तुल्यं ॥३०॥

अनुवाद—यदि दो पुरुषों के कुल धन बराबर हों तो उनके रूपयों के अन्तर को वस्तुओं के अन्तर से विभाजित करने पर प्रत्येक वस्तु का मूल्य प्राप्त होता है ॥30॥

भास्कर प्रथम के उदाहरण :

(1) (दो व्यापारियों में) एक के पास सात हृष्ट पुष्ट तथा शुभ चिह्नयुक्त घोड़े तथा 100 रूपए हैं; दूसरे के पास 9 घोड़े तथा 80 रूपए हैं। यदि दोनों के धन बराबर हों और प्रत्येक घोड़े का मूल्य एक ही हो तो प्रत्येक घोड़े का मूल्य तथा उनमें से प्रत्येक के पास कुल धन क्या है ?

प्रत्येक घोड़े का मूल्य $= \frac{100-80}{9-7} = 10$ रूपये।

यदि एक के पास क रूपए तथा ख घोड़े और दूसरे के पास ग रूपए तथा घ घोड़े हैं और प्रत्येक घोड़े का मूल्य य है, तो

$$क + ख\ य = ग + घ\ य,$$

अथवा $$क - ग = (घ - ख)\ य,$$

अथवा $$य = \frac{क-ग}{घ-ख}।$$

$$दोनों\ के\ धन = क + ख\frac{क-ग}{घ-ख},$$

$$= 100 + 7 \times 10 = 170\ रूपये।$$

(2) 7 यावत्तावत् + 7 रूपक = 2 यावत्तावत् + 12 रूपक, तो एक यावत्तावत् का क्या मान है ?

अथवा 5 यावत्तावत्=5 रूपक,

1 यावत्तावत्=1 रूपक।

(3) 9 गुलिका—24 रूपक=2 गुलिका+18 रूपक, तो एक गुलिका का दाम क्या है ?

9 गुलिका—24 रूपक=2 गुलिका+18 रूपक,

अथवा 7 गुलिका=42 रूपक,

अथवा 1 गुलिका=6 रूपक।

भक्ते विलोमविवरे गतियोगेनानुलोमविवरे द्वे ।

गत्यन्तरेण लब्धौ द्वियोगकालावतीतैष्यौ ।।३१।।

अनुवाद—यदि दो ग्रह विलोम गति वाले हों अथात् एक मार्गी तथा दूसरा वक्री हो तो उन दोनों की दूरियों को उनकी गति के योग से भाग देने पर और यदि वे अनुलोम गति वाले हों अर्थात् दोनों ही मार्गी अथवा वक्री हों तो उन दोनों की दूरियों को उनकी गति के अन्तर से भाग देने पर उनके योग के अतीत और ऐष्य (आने वाला) काल प्राप्त होते हैं ।।31।।

यदि दोनों ग्रहों में एक ग्रह मार्गी तथा दूसरा ग्रह वक्री हो और उनकी दूरी उनके विपरीत गमन के कारण बढ़ रही है तो योग का काल अतीत है; यदि उनकी दूरी घट रही है तो योगकाल ऐष्य है अर्थात् आने वाला है। इन दोनों स्थितियों में दोनों दूरियों में उनकी गति के योग से विभाजित करने पर अतीत अथवा ऐष्य काल आता है।

इसी प्रकार यदि वे दोनों ही वक्री अथवा मार्गी हैं तथा शीघ्र गति वाला आगे है तो योगकाल अतीत है और यदि मन्द गति वाला आगे है तो योगकाल ऐष्य है।

भास्कर के उदाहरण :

(1) एक आदमी वल्लभी से $1\frac{1}{2}$ योजन दैनिक गति से चलता है; दूसरा हरुकच्छ से (उसी रास्ते पर) $1\frac{1}{4}$ योजन दैनिक गति से चलता है। उन दोनों स्थानों के बीच की दूरी 18 योजन ज्ञात है। हे गणितज्ञ बताओ कि वे कितने काल के बाद मिलेंगे ?

यदि वे य दिन बाद मिलते हैं तो पहला इतने काल में $\frac{3}{2}$ य योजन चलेगा तथा दूसरा $\frac{5}{4}$ य योजन चलेगा। अतः

$\frac{3}{2}$ य+$\frac{5}{4}$ य=18,

अथवा 11 य=18×4,

अथवा य=$\frac{72}{11}$=$6\frac{6}{11}$ दिन।

(1) एक आदमी वल्लभी से गङ्गा को $1\frac{1}{2}$ योजन दैनिक गति से जाता है और दूसरा शिवभागपुर से $\frac{2}{3}$ योजन दैनिक गति से चलता है। विद्वानों ने कहा है कि उनके बीच की दूरी 24 योजन है। यदि वे दोनों एक ही मार्ग पर चलते हैं तो कितने काल के पश्चात् एक दूसरे से मिलेंगे।

यदि वे य दिन बाद मिलते हैं तो पहला इतने काल में $\frac{3}{2}$ य योजन चलता है और दूसरा इतने ही काल में $\frac{2}{3}$ य योजन चलता है। अतः

$$\frac{3}{2}\text{य} - \frac{2}{3}\text{य} = 24,$$

अथवा
$$\frac{5\text{य}}{6} = 24,$$

अथवा
$$\text{य} = \frac{144}{5},$$
$$= 28\frac{4}{5}।$$

कुट्टक

अधिकाग्रभागहारं छिन्द्यादूनाग्रभागहारेण ।
शेषपरस्परभक्तं मतिगुणमग्रान्तरे क्षिप्तम् ॥३२॥
अधउपरिगुणितमन्त्ययुगूनाग्रच्छेदभाजिते शेषम् ।
अधिकाग्रच्छेदगुणं द्विच्छेदाग्रमधिकाग्रयुतम् ॥३३॥

अनुवाद—अधिक शेष वाले भाजक को कम शेष वाले भाजक से भाग देना चाहिए। फिर शेषों को भी परस्पर तब तक विभाजित करना चाहिए जब तक शेषों से प्राप्त लब्धियों की सम संख्या न प्राप्त हो जाये। फिर अन्तिम शेष को किसी ऐसी स्वकल्पित राशि से गुणा करके तथा शेषों के अन्तर को जोड़कर फल में अन्तिम भाजक से भाग देना चाहिए कि फल भाजक से पूर्णतः विभाजित हो जाये। फिर लब्धियों, स्वकल्पित राशि (जिसे मति कहते हैं) तथा मतिगुणित राशि में अग्रान्तर जोड़ने से प्राप्त फल से मिली लब्धि को ऊपर नीचे एक वल्ली में रखें। वल्ली में उपान्त्य को ऊपर वाली राशि से गुणा कर अन्तिम राशि को जोड़ कर उपान्त्य के ऊपर रखें और अन्त्य (अन्तिम राशि को) मिटा दें। यह तब तक करें जब तक केवल दो राशियाँ रह जायें। फिर ऊपर की संख्या को कम शेष वाले भाजक से विभाजित करें तथा शेष में अधिकाग्र भाजक से गुणा करके अधिकाग्र को जोड़ दें तो इष्ट राशि प्राप्त होगी ॥32-33॥

'शेष परस्पर भक्तं' का यह अर्थ है कि शेषों से विभाजित लब्धियों की संख्या सम होनी चाहिए। यह सब एक उदाहरण से स्पष्ट होगा।

उदाहरण :

(1) वह कौन सी संख्या है जिसमें 7509 से भाग देने से 13 शेष आता है और 5301 से भाग देने से 25 शेष आता है ?

इसमें 5301 अधिकाग्र है तथा 7509 ऊनाग्र है।

यदि इष्ट संख्या स है तो

स=7509 य+13=5301 र+25,

```
7509)5301(0
     0
  5301)7509(1
       5301
       2208)5301(2
            4416
             885)2208(2
                 1770
                  438)885(2
                      876
                        9)438(48
                          36
                           78
                           72
                            6) 9 (1
                               6
                            3×2+12=18
                                  6)18(3
                                    18
                                    ×
```

वल्ली

	1	1	1	1	1	1	4149
	2	2	2	2	2	2929	2929
	2	2	2	2	1220	1220	
	2	2	2	489	489		
	48	48	242	242			
	1	5	5				
(मति)	2	2					
	3						

इसमें मति 2 है। स्वकल्पित राशि (मति) से उस स्थिति में शेष को गुणित करके अग्रान्तर में जोड़ते हैं, जब भाजक तथा शेष इतने छोटे हों कि सरलता से मति के मान को चुना जा सके। वल्ली में लब्धियों को फिर मति को और अन्त में अन्तिम लब्धि को रखा गया है। उपान्त्य 2 से उसके ऊपर की संख्या 1 में गुणित कर अन्तिम संख्या 3 में जोड़ते हैं। प्राप्त राशि 5 को 1 के स्थान पर रख कर अन्तिम संख्या 3 को मिटा देते हैं। इसी प्रकार अगली पंक्ति में करते हैं। 4149 में 7509 का भाग देने से वही शेष आता है। अतः र=4149 तथा य=2929 तथा स=4149×5301+25=21993874। यह देखाजा सकता है कि इस प्रश्न में हम य और र के भी मान प्राप्त करते हैं। अतएव इसको एक वर्ग समीकरण का रूप भी दिया जा सकता है, जिसमें य तथा र अज्ञात राशियाँ होंगी। यह समीकरण होगा :

7509 य=5301 र+12।

इसमें सभी राशियाँ 3 से विभाज्य हैं। अतः विभाजन का कार्य प्रारम्भ करने से पहले यह देख लेना चाहिए कि क्या भागहार और अग्रान्तर किसी संख्या से विभाज्य हैं या नहीं। यदि भागहार किसी संख्या से विभाज्य हों और अग्रान्तर उसी संख्या से विभाज्य न हो तो कुट्टक का प्रश्न हल नहीं किया जा सकता। यदि क और ख भागहार हैं और ग अग्रान्तर है तथा क एवं ख किसी संख्या च से विभाज्य हैं तो

क य=ख र+ग,

अथवा क य−ख र=ग,

अथवा च (क' य−ख' र)=ग, जिसमें क=क' च एवं ख=ख' च।

अतः $\text{क}' \text{य} - \text{ख}' \text{र} = \frac{\text{ग}}{\text{च}}$।

यदि क', ख', य, र सभी को पूर्णांक होना है तो $\frac{\text{ग}}{\text{च}}$ को भी पूर्णांक होना चाहिए।

3 से विभाजित करने के पश्चात् उपर्युक्त प्रश्न में वल्ली में कोई अन्तर नहीं पड़ता।

केवल शेष 3 से विभाजित हो जाते और विभाजन का कार्य सरल हो जाता। यह भी आवश्यक नहीं कि शेषों से विभाजित लब्धियाँ सम हों। परन्तु यदि वे विषम हों तो मति को ऐसा चुनना चाहिए कि इससे शेष को गुणा करने पर और अग्रान्तर घटाने पर फल पिछले भाजक से विभाज्य हो।

(2) चार चोरों ने एक बाग़ में से कुछ आम चुराए और यह निश्चय करके कि आमों को सवेरे बाँटेंगे सो गये। कुछ देर बाद एक चोर उठा। उसने आमों के चार भाग किए तो एक आम शेष रहा। उसने एक भाग तथा एक आम अलग छिपा दिया और तीन भाग एक में मिला दिए और सो गया। कुछ देर बाद एक और चोर उठा। उसने भी बचे आमों के चार भाग किए तो एक आम बच रहा। उसने भी एक आम और एक भाग छिपा दिया और शेष तीन भाग इकट्ठा रख कर सो गया। ऐसा ही तीसरे तथा चौथे ने भी किया। हर बार एक आम शेष रहा और दोनों ने एक भाग और एक आम छिपा दिए। सवेरे चोरों ने बचे आमों के चार भाग किए तो कोई आम शेष न रहा। उन्होंने कम से कम कितने आम चुराये थे।

यदि कुल आमों की संख्या य थी तो

पहले चोर के आमों को छिपाने के पश्चात् बचे आमों की संख्या

$$=3\frac{य-1}{4}=\frac{3\,य-3}{4},$$

दूसरे चोर के आमों को छिपाने के पश्चात् बचे आमों की संख्या

$$=\frac{3}{4}\left(\frac{3\,य-3}{4}-1\right)=\frac{9\,य}{16}-\frac{21}{16}।$$

तीसरे चोर के आमों को छिपाने के पश्चात् बचे आमों की संख्या

$$=\frac{3}{4}\left(\frac{9\,य}{16}-\frac{37}{16}\right)=\frac{27\,य}{64}-\frac{111}{64}।$$

चौथे चोर के आमों को छिपाने के पश्चात् बचे आमों की संख्या

$$=\frac{3}{4}\left(\frac{27\,य}{64}-\frac{175}{64}\right)।$$

यदि सवेरे प्रत्येक चोर को र आम मिले तो

$$\frac{81\,य}{256}-\frac{525}{256}=4र$$

अथवा $$81\,य=1024\,र+525,$$

अथवा $$81\,(य-6)=1024\,र+39।$$

इसमें अधिकाग्र भाजक 1024, ऊनाग्र भाजक 81 हैं। अग्रान्तर 525 है जो ऊनाग्र

भाजक के 6 गुने से अधिक है। ऊनाग्र के 6 गुने को इसमें से घटाकर नया समीकरण है

81 य′=1024 र+39, जिसमें य′=य−6 है।

उपर्युक्त विधि से इसकी वल्ली निम्नलिखित है।

1	1	1	1	60
1	1	1	39	39
1	1	21	21	
3	18	18		
3 (मति)	3			
9				

अतएव र=60 तथा य′=759 अथवा य=765। अतएव चोरों ने कम से कम 765 आम चुराये थे।

कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने कहा है कि यह पता नहीं है कि किस प्रकार के प्रश्नों को हल करने के लिए आर्यभट ने यह विधि निकाली थी। वस्तुतः इस विधि से आर्यभट ने ज्योतिष के प्रश्नों को हल किया था। ज्योतिष सम्बन्धी ऐसे बहुत से प्रश्न भास्कर ने आर्यभटीय भाष्य में दिए हैं। उनमें से कुछ को देने से पहले उपर्युक्त प्रश्न को थोड़ा सरलीकृत करके हल किया जाएगा। हमें जो समीकरण मिला था वह था :

81 य=1024 र+525। (क)

यह स्पष्ट है कि यदि हम

81 य=1024 र+1 (ख)

समीकरण के लिए हल निकालें कि वे य=$य_1$ तथा र=$र_1$ हैं तो

य′=525 $य_1$ तथा र′=525 $र_1$ पहले समीकरण के हल होंगे, यद्यपि ये हल न्यूनतम नहीं होंगे। पर हम देखेंगे कि न्यूनतम हल प्राप्त करने में आर्यभट के नियम का पूरा उपयोग होगा। समीकरण (ख) की वल्ली होगी :

1	1	1	1	14
1	1	1	9	9
1	1	5	5	
3	4	4		
1 (मति)	1			
1				

अतएव समीकरण (ख) के लिए य=177 तथा र=14 और समीकरण (क) के लिए य=177×525=92925 तथा र=7350। अब 7350 में 81 से भाग देने पर लब्धि 90 तथा शेष 60 जो र का मान है। ऐसे ही 92925 में 1024 का भाग देने से लब्धि 90 तथा शेष 765 है जो य का न्यूनतम मान है। इस तरह यह भी स्पष्ट है कि य तथा र के व्यापक मान होंगे य=1024 च+765 तथा र=81 च+60।

अब भास्कर के ज्योतिष सम्बन्धी कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं :

(1) सूर्य द्वारा गमन किए हुए भगण, राशि तथा अंश सभी वायु द्वारा उड़ गए हैं। केवल 5 लिप्तिका ही दृष्टिगोचर हो रही है। यदि आप आश्मकीय (गणित) को जानते हैं तो क्षण भर में द्युगण तथा सूर्य द्वारा गमन किए हुए भगण आदि बतायें।

कल्पना किया कि अहर्गण य है। इसको 43,20,000 से गुणा करके युगीय सावन दिन 1,57,79,17,500 से भाग देने पर भगणादि प्राप्त होते हैं। अतएव

$$\text{भगणादि}=\frac{43,20,000\ \text{य}}{1,57,79,17,500}=\frac{576\ \text{य}}{210389}\ ।$$

$$\text{अतएव, अंशादि}=\frac{576\times 360\ \text{य}}{210389}=\frac{207360\ \text{य}}{210389}\ ।$$

प्रश्न के अनुसार 5 लिप्तिकाएँ ज्ञात हैं। इसको 210389 से गुणित करके 60 से भाग देने पर 17532 प्राप्त होता है। अतएव

$$\frac{207360\ \text{य}-17532}{210389}=\text{पूर्ण अंश}=\text{र}। \qquad (\text{क})$$

पहले हम

$$\frac{207360\ \text{य}-1}{210389}=\text{र अथवा } 207360\ \text{य}=210389\ \text{र}+1 \qquad (\text{ख})$$

के लिए य तथा र के मान निकालेंगे। इसके लिए वल्ली है :

68	68	68	68	68	68	59011
2	2	2	2	2	862	862
5	5	5	5	395	395	
2	2	2	72	72		
17	17	35	35			
1	2	2				
1 (मति)	1					
1						

अतः (ख) समीकरण के लिए र=59011 तथा य=59873। अतएव समीकरण (क) के लिए य=59873×17532−210389×4989=62715,

तथा र=59011×17532−207360×4989=61812।

अतएव अहर्गण=62715 तथा सूर्य का गमन=171 भगण, 8 राशि, 12 अंश, एवं 5′।

(2) किसी बुधवार को मध्यम सूर्य धनु राशि के 25 अंश 36 कला दश विकला पर है, तो विशद रूप से कहिए कि किस काल में भविष्य में सूर्य उसी स्थान पर वृहस्पति, शुक्र अथवा बुधवार को होगा।

धनु राशि नवीं राशि है। अतएव सूर्य की स्थिति=8 राशि, 25°, 36′, 10″

=956170″।

इसको 210389 से गुणा करके भगण बनाने पर 155222 प्राप्त होता है। अतएव यदि बुधवार तक अहर्गणों की संख्या य थी तो

$$\frac{576\,य-155222}{210389}=र।$$

अग्रान्तर 1 मानकर समीकरण है

576 य=210389 र+1

और इसको हल करने के लिए वल्ली है:

	3	3	3	3	259
	1	1	1	67	67
	6	6	58	58	
	2	9	9		
(मति)	4	4			
	1				

अतएव र=259 तथा य=94602।

अब अग्रान्तर यदि 155222 है तो

र=259×155222−576×69796=2, तथा य=1000।

अब हमें यह ज्ञात करना है कि कितने दिनों बाद सूर्य की यही स्थिति फिर वृहस्पति को होगी। यदि ऐसा व दिनों बाद होता है तो

$$\frac{576\,व}{210389}=पूर्णांक \quad तथा \quad \frac{व-1}{7}=पूर्णांक।$$

अतः $\quad$ व$=210389\times$श $\quad$ तथा $\dfrac{210389\text{ श}-1}{7}=$पूर्णांक$=$स,

अथवा $\quad$ स$=30055$ श$+\dfrac{4\text{ श}-1}{7}$।

श का निम्नतम मान, जिसके लिए $\dfrac{4\text{ श}-1}{7}$ पूर्णांक है, 2 है। अतएव

व$=210389\times2=420778$

और कलियुग के आरम्भ से अहर्गण$=420778+1000=421778$।

इसी तरह यह सिद्ध किया जा सकता है कि शुक्र के लिए श का निम्नतम मान 4 होगा तथा अहर्गण$=210389\times4+1000=842556$ तथा बुधवार के लिए श का निम्नतम 7 होगा और अहर्गण $210389\times7+1000=1473723$।

(3) अहर्गण और नाडिकाओं के लिए गणन किया हुआ सूर्य का भगण आदि वायु द्वारा उड़ा दिये गए हैं। केवल 71 शेष कलाएँ मुझे दिखाई दे रही है, तो अहर्गण, ठीक नडिकाएँ, तथा सूर्य की स्थिति मुझे बताएँ।

कल्पना किया कि अहर्गण य, घटिकाएँ र, तथा सूर्य की स्थिति की कलाएँ व हैं, तो

$$\frac{576\times12\times30\times60\left(\text{य}+\frac{\text{र}}{60}\right)}{210389}=\text{व}+\frac{71}{210389}$$

अथवा $\quad 576\times12\times30\ (60\text{य}+\text{र})=210389\text{ व}+71,$

अथवा $\quad 207360\text{ य}'\qquad\qquad=210389\text{ व}+71$।

इसके लिए वल्ली है :

68	68	68	68	68	68	664661
2	2	2	2	2	9709	9709
5	5	5	5	4449	4449	
2	2	2	811	811		
17	17	394	394			
1	23	23				
3 (मति)	3					
20						

664661 में ऊनाग्र 207360 से भाग देने पर 42581 शेष आता है, जो व का मान है। अतएव $\quad \text{य}'=\dfrac{210389\times42581+71}{207360}$,

$$=42581+\frac{3029\times 42581+71}{207360},$$
$$=42581+622,$$
$$=43203।$$

अतएव अहर्गण 720, घटिका 3, सूर्य की स्थिति 42581′=1 भगण, 11 राशि, 19°, 41′।

(4) सूर्य के आठवें भवन (राशि) की 100 कलाएँ अभी शेष हैं। अतएव हे बुद्धिमान् यदि आपको आश्मकीय गणित का ज्ञान है तो सोचकर बताइये कि आज तक कलि के कितने वर्ष बीत गये और यह भी बताइये कि कलि के कितने दिन बीत गये।

प्रश्न के अनुसार सूर्य की स्थिति=7 राशि 28° 20′,
=14300′।

भगण पूरा करने के लिए कलाओं की संख्या 7300 है। इनको 210389 से गुणकर 21600 से भाग देने पर लब्धि=71104। अतः समीकरण है

576 य+71104=210389 र,

जिसमें य अहर्गण है तथा र भगण संख्या है। अतएव वल्ली है :

365	365	365	365	5236225
3	3	3	14336	14336
1	1	3585	3585	
6	3581	3581		
4 (मति)	4			
3557				

5236225 में 210389 से भाग देने पर शेष 186889 आता है जो य का मान है। इससे र का मान 512 आता है। अतएव अहर्गण 186889 और कलिगत वर्ष 511 आते हैं।

(5) कुछ दिनगण को सूर्य एवं मंगल (दृढ़) दिनों से विभाजित किया गया। परन्तु मुझे लब्धियाँ ज्ञात नहीं हैं। बचे दोनों शेष (दिन) भी मुझे दिखाई नहीं पड़ते। फिर इन शेषों को उनके (दृढ़) भगणों से गुणित कर उनके (दृढ़) दिनों से विभाजित करने से प्राप्त लब्धियाँ भी वायु द्वारा उड़ा दी गयी हैं। दोनों अग्र अब हैं। ये सूर्य के लिए 38472 तथा मंगल के लिए 77180625 हैं। हे गणक इनसे सूर्य और मंगल के लिए पृथक् अहर्गण, तथा दोनों के अग्र क्रम से गणना करके बताइये।

मंगल का युगीय भगण 2296824 है। इसका तथा युगीय दिनों का महत्तम समापवर्तक 12 है। अतएव मंगल का दृढ़ भगण 191402 है तथा दिन 131493125 है। यदि अहर्गण क है तो सूर्य और मंगल के लिए समीकरण क्रमशः

$$\frac{\text{क}}{210389} = \text{य} + \frac{\text{र}}{210389},$$

तथा $$\frac{\text{क}}{131493125} = \text{ल} + \frac{\text{व}}{131493125},$$

एवं

$$\frac{576\text{र}}{210389} = \text{श} + \frac{38472}{210389},$$

$$\frac{191402\ \text{व}}{131493125} = \text{ष} + \frac{77180625}{131493125}\ \text{हैं।}$$

वस्तुतः सूर्य के लिए भगणादि $\frac{576\ \text{क}}{210389}$ तथा मंगल के लिए $\frac{191402\text{क}}{131493125}$ हैं। परन्तु सरल करने के लिए दोनों के दृढ़ दिनों से क में भाग देकर लब्धियाँ प्राप्त कर ली गयी हैं।

सूर्य के लिए सरलीकृत समीकरण है :

576 र=210389 श+38472,

तथा वल्ली

3	3	3	3	115800
1	1	1	30022	30022
6	6	25734	25734	
2	4288	4288		
6(मति)	6			
4276				

115800 को 576 से विभाजित करने पर शेष 24 आता है जो श का मान है। अतएव र का मान 8833 है।

मंगल के लिए समीकरण है

191402 व=131493125 ष+77180625

अथवा

191402 व=191402 (686 ष+403)+45619+191353 ष,

अथवा 191402 (व—686 ष—403)=191402 व′=191353 ष+45619।

इसकी वल्ली हुई

1	1	931
3905	931	931
0(मति)	0	
931		

तथा ष=931 और व=640000।

अब क का मान निकालने के लिये समीकरण

$$क=210389\ य+8833=131493125\ ल+640000,$$

अथवा $210389\ य=131493125\ ल+631167,$

अथवा $य=625\ ल+3$

अतः य=628 तथा ल=1 और क=132133125।

(6) सूर्य और चन्द्रमा की कक्ष्याविधि से गणना करने पर रवि का शेष 19350444582 तथा चन्द्रमा का शेष 1269000000 हैं। दोनों शेषों के लिए अहर्गण तथा उनके भगण बताइये।

$$\text{कक्ष्या विधि में ग्रह की मध्यम स्थिति}=\frac{\text{आकाश कक्ष्या}\times\text{अहर्गण}}{\text{ग्रह कक्ष्या}\times\text{युग में सावन दिन}}।$$

दशगीतिका की चौथी आर्या में ये मान निकाले गये हैं।

आकाश कक्ष्या=12474720576000 योजन,

रवि कक्ष्या=$2887666\frac{4}{5}$ योजन,

चन्द्र कक्ष्या=216000 योजन।

अतः

$$\text{सूर्य की स्थिति}=\frac{12474720576000\times\text{अहर्गण}}{2887666\frac{4}{5}\times1577917500}\text{ भगण},$$

$$=\frac{12474720576000\times\text{अहर्गण}}{14438334\times315583500}\text{ भगण},$$

$$=\frac{136335744\times\text{अहर्गण}}{14438334\times3449}\text{ भगण},$$

$$=\frac{136335744\times\text{अहर्गण}}{49797813966}\text{ भगण},$$

$$\text{चन्द्रमा की स्थिति}=\frac{12474720576000\times\text{अहर्गण}}{216000\times1577917500}\text{ भगण},$$

$$=\frac{136335744\times\text{अहर्गण}}{3724920000}\text{ भगण},$$

यदि सूर्य तथा चन्द्रमा के पूर्ण भगण य तथा र हैं तो

$$136335744\times\text{अहर्गण}=49797813966\ य+19350444582,$$

$$=3724920000\ र+1269000000,$$

अथवा

$$49797813966\ य + 18081444582 = 3724920000\ र।$$

20694 से भाग देने पर

$$2406389\ य + 873753 \qquad = 180000\ र,$$

$$180000\ (13\ य + 4) + 66389\ य + 153753 = 180000\ र,$$

अथवा $\quad 66389\ य + 153753 = 180000\ र'\ ;\ र' = र - 13य - 4$ ।

इसका हल निकालने के लिए पहले हम दूसरे समीकरण का हल निकालेंगे जिसमें क्षेप संख्या 1 है। इसकी वल्ली है :

2
1
2
2
6
2
1
1
3
3
5 (मति)
4

इससे य का मान 47491 आता है। अतएव वास्तविक समीकरण के लिए

$$य = 153753 \times 47491 - 180000 \times 40566,$$
$$= 3723\ ।$$

अतएव $\quad र' = \dfrac{66389 \times 3723 + 153753}{180000}$,

$$= \frac{247320000}{180000} = 1374\ ।$$

तथा $\quad र = र' + 13\ य + 4 = 49777$ ।

एवं अहर्गण $\quad = \dfrac{3724920000 \times 49777 + 1269000000}{136335744}$,

$$= \frac{185416611840000}{136335744}\ ,$$

$$= 1360000\ ।$$

परमेश्वर ने आर्यभटीय के भाष्य में एक और उदाहरण दिया है जिसका उपयोग भी ज्योतिष सम्बन्धी प्रश्नों को हल करने के लिए किया जा सकता है।

प्रश्न : वह कौन-सी राशि है जिसमें 8 से गुणा करके 29 से भाग देने पर 4 शेष रहता है तथा उसमें 17 से गुणा करके 45 से भाग देने पर 7 शेष रहता है ?

यदि राशि य है तो 8 य=29 र+4,

17 य=45 र'+7।

इन समीकरणों में यह देखा जा सकता है कि य का वही स्थान है जो ज्योतिष सम्बन्धी प्रश्नों में अहर्गण का होता है। 8 एवं 17 दो भिन्न ग्रहों के दृढ़ भगण तथा 29 और 45 क्रमशः उनके दृढ़ वासर हैं। र तथा र' वे पूरे भगण हैं जो वे य दिनों में पूरा कर चुके हैं।

कुट्टक विधि से पहले समीकरण के लिए य का मान 15 प्राप्त किया जा सकता है। परन्तु दूसरे समीकरण के लिए यह मान उपयुक्त नहीं है। अतः हम इसके लिए अधिक व्यापक मान 29 व+15 लेंगे।

इसी प्रकार दूसरे के लिए य का निम्नतम मान 11 आता है और व्यापक मान 45 व'+11 है। व तथा व' के मान वे होने चाहिए कि

29 व+15=45 व'+11 हो

वल्ली

1	1	1	1	34
1	1	1	22	22
1	1	12	12	
4	10	10		
2 (मति)	2			
2				

34 में 45 का भाग देने से शेष 34 ही है अतएव

य=29×34+15,

=1001।

गाँवों में प्राचीन काल से प्रचलित कुट्टक सम्बन्धी कुछ अन्य प्रश्न :

(1) बीस रुपैया बीसै जीव। सूका छेण अधन्नी गाय। पाँच रुपैया भैंस बिचाय। बीस रुपयों के बीस जीव मिलते हैं। एक बकरी का दाम चार आना, एक गाय का दाम आठ आना तथा एक भैंस की कीमत पाँच रुपया है। तो कितनी बकरियाँ, कितनी गायें तथा कितनी भैंसे हैं ? [गाय=भैंस=3, बकरियाँ=14]

(2) एक मन लोहा सौ हथियार। पउआ छूरी सेर कटार। पँच-पँच सेर बनै तलवार।

एक मन लोहे में 100 हथियार बनते हैं। चाकू एक पाव का, कटार एक सेर की तथा तलवार पाँच सेर की बनती है। तो कितने चाकू, कितनी कटारें तथा कितनी तलवारें बनती हैं? [96 चाकू, 1 कटार, 3 तलवार]

(3) एक काश्तकार के पास कुल 20 बीघे ज़मीन है और कुल लगान भी 20 रूपया है। यदि गाँव के पास की ज़मीन का लगान ढाई रूपये प्रति बीघे, गाँव से कुछ दूर की ज़मीन का लगान डेढ़ रूपये प्रति बीघे तथा बहुत दूर की ज़मीन का लगान चार आने प्रति बीघे हो तो प्रत्येक प्रकार की ज़मीन कितनी है?

[पास की ज़मीन 5 बीघे, बीच की 3 बीघे, दूर की 12 बीघे]

(4) 100 पैसे के 100 बर्तन मिलते हैं। एक पैसे के बीस पुरवे, एक पैसे का एक घड़ा तथा 5 पैसे का एक कुण्डा मिलता है। तो प्रत्येक प्रकार के कितने बर्तन हैं?

[पुरवे 80, घड़ा 1, कुण्डा 19]

हल करने की विधि सब के लिए एक ही है। अतएव केवल पहले प्रश्न को हल किया जाता है। कल्पना किया कि गायों की संख्या य तथा भैंसों की संख्या र है तो बकरियों की संख्या 20—य—र।

अतएव

$$5\,य+\frac{र}{2}+\frac{1}{4}(20-य-र)=20,$$

अथवा

$$19\,य+र \qquad =60।$$

कुट्टक की विधि का उपयोग हो सके इसके लिए ऊपर के समीकरण में हम थोड़ा परिवर्तन करेंगे। कल्पना किया कि य+र=व, तो उपर्युक्त समीकरण हुआ।

$$19\,व=18\,र+60$$

$$\begin{array}{l} 19)\ 18\ (0 \\ \quad\ \ \underline{0} \\ \quad\ \ 18)\ 19\ (1 \\ \qquad\quad \underline{18} \\ \qquad\quad\ \ 1 \end{array}$$

$$1\times 18-60=18$$

इसमें 18 का भाग देने से लब्धि=1। अतएव

वल्ली

1	79
78 (मति)	78
1	

इसमें शेष 1 में 78 से गुणा करके अग्रान्तर 60 घटाया गया है क्योंकि शेषों से प्राप्त लब्धियों को संख्या सम नहीं है। ऊनाग्र 19 से 79 में भाग देने पर शेष 3 प्राप्त होता है जो र का मान है। अतएव

$$19\,व = 54 + 60,$$

$$अथवा\ व = 6,$$

$$अतएव\ य = व - र = 6 - 3 = 3।$$

अतः गायों की संख्या 3, भैंसों की संख्या 3 तथा बकरियों की संख्या 14 है।

इस समीकरण के स्थान पर यदि हम समीकरण

$$19\,व = 18\,र + 1$$

का हल निकालना चाहते तो हम तुरन्त देख सकते हैं कि इसके लिए व तथा र के न्यूनतम मान व=1=र हैं। अतएव प्रथम समीकरण के लिए र=60=व। 60 में ऊनाग्र 19 का भाग देने से शेष 3, र का न्यूनतम मान है और पूर्वोक्त विधि से अथवा 60 में 18 का भाग देने से शेष 6, व का न्यूनतम मान है।

कुट्टक का तार्किक आधार।

अब हम कुट्टक की विधि का थोड़ा तार्किक विवेचन करेंगे। मान लीजिए कोई संख्या स है जिसमें क से भाग देने पर शेष च प्राप्त होता है और ख से भाग देने पर शेष छ प्राप्त होता है तथा छ से च बड़ा है। अतएव

$$स = क\,य + च = ख\,र + छ,$$

जिसमें क अधिकाग्र भागहार तथा ख ऊनाग्र भागहार हैं। यदि च−छ=ग, तो दो अज्ञात राशि एक घात समीकरण होगा

$$क\,य + ग = ख\,र।$$

आर्यभट के निर्देश के अनुसार हमें य का ऐसा मान प्राप्त करना है जिससे (क य+ग) राशि ख से पूर्णतया विभाजित हो जाए। यदि ऊनाग्र भागहार ख से अधिकाग्र भागहार क को विभाजित करने पर लब्धि ल तथा शेष $श_1$ है तो

$$क\,य + ग = (ख\,ल + श_1)\,य + ग = ख\,ल\,य + (श_1\,य + ग),$$

और यदि य के किसी मान य' से (श$_1$ य'+ग) राशि ख से पूर्णतया विभाज्य है तो ख लय' +(श$_1$ य'+ग) भी ख से विभाज्य होगा। अतएव य का य' मान ज्ञात करने के लिए (श$_1$ य+ग) का ही महत्त्व है, लब्धि ल का नहीं है। अतएव वल्ली में इसकी आवश्यकता नहीं है। हमें समीकरण

$$\text{श}_1\ \text{य}+\text{ग}=\text{ख र}$$

का विवेचन करने की आवश्यकता है। यदि (श$_1$ य+ग) राशि ख से विभाज्य है अर्थात् यदि

$$\frac{\text{श}_1\ \text{य}+\text{ग}}{\text{ख}}=\text{पूर्णांक}\ =\text{र},$$

तो $\text{य}=\dfrac{\text{ख र}-\text{ग}}{\text{श}_1}$ भी पूर्णांक है।

यदि ख=श$_1$ ल$_1$+श$_2$, तो

$$\text{य}=\frac{(\text{श}_1\ \text{ल}_1+\text{श}_2)\ \text{र}-\text{ग}}{\text{श}_1}=\text{पूर्णांक}=\text{ल}_1\ \text{र}+\frac{\text{श}_2\ \text{र}-\text{ग}}{\text{श}_1}\ ।$$

यदि $\dfrac{\text{श}_2\ \text{र}-\text{ग}}{\text{श}_1}=\text{य}_1$, तो य=ल$_1$ र+य$_1$ होगा।

यदि $\dfrac{\text{श}_2\ \text{र}-\text{ग}}{\text{श}_1}$ = पूर्णांक= य$_1$ तो $\dfrac{\text{श}_1\ \text{य}_1+\text{ग}}{\text{श}_2}=\text{र}=\text{पूर्णांक}$।

यदि श$_1$=श$_2$ ल$_2$ + श$_3$, तो $\text{र}=\dfrac{(\text{श}_2\ \text{ल}_2+\text{श}_3)\text{य}_1+\text{ग}}{\text{श}_2}$,

$$=\text{ल}_2\ \text{य}_1+\frac{\text{श}_3\ \text{य}_1+\text{ग}}{\text{श}_2}\ ।$$

यदि $\dfrac{\text{श}_3\ \text{य}_1+\text{ग}}{\text{श}_2}=$ पूर्णांक $=\text{र}_1$, तो र = ल$_2$ य$_1$+र$_1$।

यदि $\dfrac{\text{श}_3\ \text{य}_1+\text{ग}}{\text{श}_2}=\text{र}_1$, तो $\text{य}_1=\dfrac{\text{श}_2\ \text{र}_1-\text{ग}}{\text{श}_3}=\dfrac{(\text{श}_3\ \text{ल}_3+\text{श}_4)\ \text{र}_1-\text{ग}}{\text{श}_3}$

$$=\text{ल}_3\ \text{र}_1+\frac{\text{श}_4\ \text{र}_1-\text{ग}}{\text{श}_3}\ ।$$

यदि $\dfrac{\text{श}_4\ \text{र}_1-\text{ग}}{\text{श}_3}=\text{य}_2$ तो य$_1$ =ल$_3$ र$_1$+य$_2$।

इसी तरह $\text{र}_1=\dfrac{\text{श}_3\ \text{य}_2+\text{ग}}{\text{श}_4}=\dfrac{(\text{श}_4\ \text{ल}_4+\text{श}_5)\ \text{य}_2+\text{ग}}{\text{श}_4}=\text{ल}_4\ \text{य}_2+\dfrac{\text{श}_5\ \text{य}_2+\text{ग}}{\text{श}_4}$।

हम देख सकते हैं कि जब लब्धियों की संख्या सम होती है तो अंतिम शेष किसी राशि से गुणित होता है और उसमें अग्रान्तर जोड़ा जाता है और फल उपान्त्य शेष से विभाज्य होता है। इसी तरह

$$र_1 = ल_4\ य_2 + र_2, \qquad य_2 = ल_5\ र_2 + य_3, \qquad र_2 = ल_6\ य_3 + र_3 \text{ आदि।}$$

लब्धियों की सम संख्या के पश्चात् अर्थात् 2 न लब्धियों के बाद हमें जो समीकरण मिलेगा वह होगा

$$र_{न-1} = ल_{2न}\ य_न + \frac{श_{2न+1}\ य_न + ग}{श_{2न}}$$ । इस स्थिति में यदि दोनों शेष इतने छोटे हो गये हैं कि हम $य_न$ का एक ऐसा मान प्राप्त कर सकते हैं कि $(श_{2न+1}\ य_न + ग)$ राशि $श_{2न}$ से विभाज्य हो तो $य_न$ का यह मान मति होगा तथा $र_{न-1} = ल_{2न} \times मति + र_न$,

जिसमें $र_न = \frac{श_{2न+1} \times मति + ग}{श_{2न}}$।

अतः य तथा र को ज्ञात करने के लिए हमें निम्नलिखित संबंध प्राप्त होंगे।

$र_{न-1} = ल_{2न} \times मति + र_न$,

$य_{न-1} = ल_{2न-1} \times र_{न-1} + य_न = ल_{2न-1} \times र_{न-1} + मति$।

$र_{न-2} = ल_{2न-2} \times य_{न-1} + र_{न-1}$।

... ...

... ...

$र_2 = ल_6 \times य_3 + र_3$।

$य_2 = ल_5 \times र_2 + य_3$।

$र_1 = ल_4 \times य_2 + र_2$।

$य_1 = ल_3 \times र_1 + य_2$।

$र = ल_2 \times य_1 + र_1$।

$य = ल_1 \times र + य_1$।

अब यदि $ल_1$ से प्रारम्भ करके लब्धियों की वल्ली बनायें, उपान्त्य में मति तथा अन्त्य में अंतिम लब्धि $र_न$ रखें तथा आर्यभट के निर्देशन के अनुसार इस वल्ली का उपयोग करें तो सबसे ऊपर य का अभीष्ट मान होगा। यदि क में ख का भाग देने से लब्धि ल शून्य हो तो ऊपर से दूसरी संख्या र का ठीक मान होगी। यदि ल शून्य न हो तो र का मान पूरे समीकरण से प्राप्त होगा। परन्तु आर्यभट के अनुसार र का मान ज्ञात करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि स संख्या का मान य के मान से ही ज्ञात हो जायेगा। यदि लब्धियों की संख्या विषम हो तो जैसा हम ऊपर देख चुके हैं मति से गुणा करके अग्रान्तर को घटाना पड़ेगा।

इति गणितपाद समाप्त।

कालक्रियापाद

वर्षं द्वादश मासास्त्रिंशद्दिवसो भवेत् स मासस्तु ।
षष्टिर्नाड्यो दिवसः षष्टिश्च विनाडिका नाडी ॥१॥
गुर्वक्षराणि षष्टिर्विनाडिकाक्षीं षडेव वा प्राणाः ।
एवं कालविभागः क्षेत्रविभागस्तथा भगणात् ॥२॥

अनुवाद—एक वर्ष में 12 मास, एक मास में 30 दिन, एक दिन में 60 नाडियाँ, एक नाडी में 60 विनाडिकाएँ होती हैं। 60 गुरु अक्षरों की एक नाक्षत्रिक विनाडिका होती है, अर्थात 60 गुरु अक्षरों के उच्चारण में जितना समय लगता है वह एक नाक्षत्रिक विनाडिका के तुल्यहोता है। अथवा छः प्राणों की एकविनाडिका होती है। (प्राण वह काल विभाग है जिसमें एकसामान्यतः स्वस्थपुरुष एकश्वास-प्रश्वासपूरा करता है)। इस तरह जैसे वर्ष से प्रारम्भ करके काल के विभाग हैं उसी तरह भगण से प्रारम्भ करके क्षेत्र के विभाग हैं और दोनों में समानता है ॥ 1-2॥

एक वर्ष = 12 मास	1 भगण = 12 राशि
1 मास = 30 दिन	1 राशि = 30 अंश
1 दिन = 60 नाडी	1 अंश = 60 कला
1 नाडी = 60 विनाडिका	1 कला = 60 विकला
1 विनाडिका = 60 गुर्वक्षर	1 विकला = 60 तत्पर

प्राण के लिए दशगीतिका में कह आये हैं कि एक प्राण में पृथ्वी एक कला घूमती है।

दिन भी कई प्रकार के होते हैं सावन, सौर, चान्द्र, नाक्षत्र आदि। अभी हम इन्हीं चार की बात करेंगे।

एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक सावन दिन है।

जितने काल में आकाश में सूर्य एक अंश चलता है अर्थात् जितने समय में पृथ्वी सूर्य के चारों ओर एक अंश घूमती है वह सौर दिन है।

जितने काल में चन्द्रमा सूर्य से 12 अंश आगे निकल जाता है उसे चान्द्र दिन अथवा तिथि कहते हैं।

आर्यभट के अनुसार जितने समय में पृथ्वी अपनी धुरी पर एक बार घूमती है वह

नाक्षत्र दिन है। किन्तु पुलिश के अनुसार जितने काल में चन्द्रमा पृथ्वी के चारों ओर 12 अंश घूमता है वह नाक्षत्र दिन है।

भट्टोत्पल ने बृहत्संहिता के भाष्य में इनके युगीय मान दिये हैं[1]। जिसे अन्य सावन दिन कहते हैं उसे पुलिश सौर दिन तथा जिसे अन्य सौर दिन कहते हैं उसे पुलिश सावन दिन कहते हैं।

भगणा द्वयोर्द्वयोर्ये विशेषशेषा युगे द्वियोगास्ते।
रविशशिनक्षत्रगणाः सम्मिश्राश्च व्यतीपाताः ॥३॥

अनुवाद—युग में दो ग्रहों की भगण संख्या के अन्तर के तुल्य उनकी युति होती है। सूर्य तथा चन्द्रमा की भगण संख्या के दूने के तुल्य व्यतीपातों की संख्या होती है ॥3॥

वर्त्तमान काल में सूर्य तथा चन्द्रमा की स्पष्ट स्थितियों के योग से 27 योग होते हैं। परन्तु ब्रह्मगुप्त ने भी स्पष्टगत्युत्तराध्याय में केवल वैधृत तथा व्यतीपात का उल्लेख किया है।[2] यदि सूर्य एवं चन्द्रमा का योग 6 राशि हो तो व्यतीपात और यदि योग 12 राशि हो तो वैधृत योग होते हैं[3]।

वराहमिहिर ने भी पंचसिद्धान्तिका में वैधृत तथा व्यतीपात का उल्लेख किया है वैधृत के लिए उनका नियम भी वही है जो ब्रह्मगुप्त का है परन्तु व्यतीपात उनके अनुसार तब होता है जब सूर्य और चन्द्रमा का योग एवं दश नक्षत्र मिलकर एक चक्र के तुल्य होते हैं।

भास्कर प्रथम ने व्यतीपात, वैधृत तथा सार्पमस्तक योगों का उल्लेख किया है। उनके अनुसार व्यतीपात एवं वैधृत के लिए वही नियम हैं जो ब्रह्मगुप्त के हैं। सार्पमस्तक के लिए उन्होंने कहा है कि सूर्य तथा चन्द्रमा की स्थितियों का योग 17 नक्षत्र के तुल्य होना चाहिए[4]।

इसकी व्याख्या करते हुए गोविन्द स्वामी ने कहा है कि यह गणना बहुत स्थूल है क्योंकि इसमें चन्द्रमा के शर का ध्यान नहीं रखा गया है[5]।

शंकरनारायण ने लघुभास्करीय के भाष्य में कहा है कि आचार्य आर्यभट ने केवल दो व्यतीपातों को बताया है। अन्य लोग 10 व्यतीपातों की बात करते हैं। कुछ अन्य सात

---

[1]भट्टोत्पलकृत बृहत्संहिता का भाष्य, पृ. 26।
[2]ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त, स्फुटगत्युत्तराध्याय, आर्याएँ 33 तथा 34।
[3]पंचसिद्धान्तिका, तृतीय अध्याय, आर्या 20।
[4]महाभास्करीय, चतुर्थ अध्याय, आर्या 35।
[5]गोविन्दस्वामीकृत महाभास्करीय भाष्य, पृ. 219।

महापातों को बताते हैं। उन्होंने प्रभाकर की दो आर्याओं को भी उद्धृत किया है जिनमें निरोध आदि सात महापातों का उल्लेख किया गया है[1]।

स्वोच्चभगणाः स्वभगणैर्विशेषिताः स्वोच्चनीचपरिवर्त्ताः ।
गुरुभगणा राशिगुणास्त्वाश्वयुजाद्या गुरोरब्दाः ॥४॥

अनुवाद—प्रत्येक ग्रह के उच्च भगण और स्वयं उसके भगण के अन्तर के तुल्य उनके उच्च नीच वृत्त का परिभ्रमण होता है अर्थात् उनके स्वयं के भगण में से उनके मन्दोच्च भगण को घटाने से मन्दोच्चनीच के परिभ्रमण तथा शीघ्रोच्च भगण में से उनके भगण घटाने से शीघ्रोच्चनीच के परिभ्रमण प्राप्त होते हैं।

वृहस्पति की भगण संख्या को 12 से गुणा करने पर आश्वयुज् इत्यादि वार्हस्पत्य वर्ष मिलते हैं ॥4॥

वृहस्पति एक राशि में लगभग एक वर्ष रहते हैं। अतएव जितने काल तक वे एक राशि में रहते हैं उसे वार्हस्पत्य वर्ष कहते हैं। आर्यभट के अनुसार युग में वृहस्पति की भगण संख्या 364224 है। अतएव वार्हस्पत्य वर्षों की संख्या 4370688 हुई। रवि वर्षों की संख्या 4320000 है। अतएव इतने वर्षों में 50688 वार्हस्पत्य वर्ष अधिक होते हैं। इन दोनों को 2304 से विभाजित करने पर क्रमशः 1875 तथा 22 प्राप्त होते हैं, अर्थात् प्रति 1875 रवि वर्ष में वार्हस्पत्य वर्षों की संख्या रवि वर्षों से 22 अधिक होती है।

किसी समय कौन वार्हस्पत्य वर्ष है इसे जानने के लिए वराहमिहिर ने वृहत्संहिता में एक नियम बताया है कि शक काल को 44 से गुणित कर उसमें 8589 जोड़कर 3750 से भाग दीजिये। लब्धि को शक वर्षों में जोड़कर योग में 60 से भाग दीजिये। लब्धि 60 वार्हस्पत्य वर्षों के पूरे हुए युग होंगे। शेष में एक जोड़ने पर प्रभव से आरम्भ करके प्रचलित वार्हस्पत्य वर्ष होगा।[2]

शक काल प्रारम्भ होने के समय वार्हपस्त्य वर्षों का 60 वर्ष का जो युग चल रहा था उसका प्रारम्भ शक काल के प्रारम्भ से 2 वर्ष 3 मास, $14\frac{1020}{1875}$ दिन पहले हुआ था।

$$3 \text{ मास}, 14\frac{1020}{1875} \text{ दिन} = \frac{196020}{1875} \text{ दिन},$$

$$= \frac{544\frac{1}{3}}{1875} \text{ वर्ष}।$$

---

[1]शंकरनारायणकृत लघुभास्करीय भाष्य, पृ. 30।
[2]वृहत्संहिता, अध्याय 8, श्लोक 20-21।

अतः $2 \text{ वर्ष} + \frac{544\frac{1}{2}}{1875} \text{ वर्ष} = \frac{7500+1089}{3750} \text{ वर्ष},$

$$= \frac{8589}{3750} \text{ वर्ष}।$$

श्रीपति ने जातक रत्नमाला में क्षेप राशि $\frac{4291}{1875}$ दी है जो वराहमिहिर की राशि से थोड़ा ही भिन्न है[1]। श्रीमती वीणा चटर्जी द्वारा सम्पादित खण्डखाद्यक प्रथम भाग के पृष्ठ 159 पर दोनों ही विधियाँ उद्धृत हैं।

वराहमिहिर के अनुसार गणना करने से 1976 के आरम्भ में शुक्ल संवत्सर आता है जो चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से 5 महीने 20 दिन तक रहेगा।

रविभगणा रव्यब्दा रविशशियोगा भवन्ति शशिमासाः।
रविभूयोगादिवसा आवर्ताश्चापि नाक्षत्राः ॥५॥
अधिमासका युगे ते रविमासेभ्योऽधिकास्तु ये चान्द्राः।
शशिदिवसा विज्ञेया भूदिवसोनास्तिथिप्रलयाः ॥६॥

अनुवाद—सूर्य के वर्ष सूर्य के भगण के तुल्य होते हैं। सूर्य और चन्द्रमा की युति के तुल्य चान्द्र मास होते हैं। सूर्य तथा पृथ्वी की युति के तुल्य सावन दिन होते हैं और पृथ्वी के आवर्त (परिभ्रमण) के तुल्य नाक्षत्र दिन होते हैं ॥5॥

युग में सौर मासों की अपेक्षा चान्द्र मास जितना अधिक होते हैं युग में उतने ही अधिमास होते हैं। चान्द्र दिनों की संख्या सावन दिनों से जितनी अधिक होती है उतनी ही क्षय तिथियाँ होती हैं ॥6॥

एक वर्ष का समय वह समय है जिसमें सूर्य आकाश में पुनः पहले नक्षत्र के आदि में आ जाता है, अर्थात् जितने समय में वह एक भगण पूरा करता है। अतः सूर्य के वर्ष एक युग में उसके भगण के तुल्य होते हैं।

चन्द्रमा की सूर्य से युति अमावस्या के अन्त में होती है। फिर चन्द्रमा जब सूर्य से एक भगण अधिक चल लेता है तब अगला चान्द्रमास आरम्भ होता है। अतएव चन्द्रमा एक युग में सूर्य से जितनी बार युति करता है उतने ही चान्द्र मास होते हैं और यह संख्या उनके भगणों के अन्तर के तुल्य होती है।

इसी प्रकार एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक सावन दिन होता है। अतएव सावन दिनों की संख्या पृथ्वी के परिभ्रमण और सूर्य के भगणों के अन्तर के तुल्य होती है। नक्षत्र

---

[1]ज्योतिषरत्नमाला, संवत्सर प्रकरण, श्लोक 3।

अचल हैं अतएव नक्षत्र के एक उदय और दूसरे उदय के बीच का काल पृथ्वी के एक बार घूमने के तुल्य होता है। अतएव युग में नाक्षत्र दिनों की संख्या पृथ्वी के परिभ्रमण की संख्या के तुल्य होती है।

युग में अधिमास उतने होते हैं जितने चान्द्र मासों से सौर मास कम होते हैं और चान्द्र दिनों से सावन दिनों की संख्या जितनी कम होती है उतनी ही क्षय तिथियाँ होती हैं। चान्द्र मास एक अमावस्या से दूसरी अमावस्या तक होता है और सौर मास एक संक्रान्ति से दूसरी संक्रान्ति तक होता है। चान्द्र मास सौर मास से कुछ छोटा होता है। अतएव चान्द्र मास का प्रारम्भ सौर मास के प्रारम्भ से कुछ पहले होने लगता है। धीरे-धीरे जब यह अन्तर इतना हो जाता है कि एक अमावस्या और दूसरी अमावस्या के बीच कोई संक्रान्ति न पड़े तब यह महीना अधिमास कहलाता है। ऐसा लगभग 33 महीनों के बाद होता है। इस तरह सौर मासों की संख्या से युग में चान्द्र मासों की संख्या जितनी अधिक होती है उतने ही अधिमास होते हैं।

इसी प्रकार एक तिथि का औसत काल एक सावन दिन से कुछ कम होता है। इस अन्तर को अवमशेष कहते हैं। सूर्योदय के समय जो तिथि होती है यदि वह सूर्योदय के कुछ काल बाद समाप्त हो जाय तथा दूसरी तिथि अगले सूर्योदय के पहले ही समाप्त हो जाय तो यह तिथि क्षय तिथि होती है। इस तरह युग में चान्द्र दिनों अर्थात् तिथियों की संख्या सावन दिनों की संख्या से जितनी अधिक होती है उतनी ही क्षय तिथियाँ होती हैं।

युग में सूर्य वर्षों की संख्या =युग में रवि भगण=43,20,000।
युग में चान्द्र मासों की संख्या=चन्द्र भगण—सूर्य भगण,
=57753336—4320000,
=53433336।
युग में सावन दिनों की संख्या=पृथ्वी का आवर्त—रवि भगण,
=1582237500—4320000,
=1577917500।
युग में नाक्षत्र दिनों की संख्या=पृथ्वी का आवर्त,
=1582237500।
युग में सौर मासों की संख्या=51840000=12×43,20,000।
युग में अधिमासों की संख्या=53433336—51840000,
=1593336।
युग में चान्द्र दिनों की संख्या=चान्द्र मास ×30,
=1603000080।
युग में क्षय तिथियों की संख्या=1603000080—1577917500,
=25082580।

युग में सावन दिनों, अधिमासों एवं क्षय तिथियों की ये संख्याएँ आर्यभट के अनुसार हैं। ब्रह्मगुप्त के अनुसार इनका मान ऊपर दिये मानों से भिन्न है।

रविवर्षं मानुष्यं तदपि त्रिंशद्गुणं भवति पित्र्यम् ।
पित्र्यं द्वादशगुणितं दिव्यं वर्षं समुद्दिष्टम् ।।७।।
दिव्यं वर्षसहस्रं ग्रहसामान्यं युगं द्विषट्कगुणम् ।
अष्टोत्तरं सहस्रं ब्राह्मो दिवसो ग्रहयुगानाम् ।।८।।

अनुवाद—रवि वर्ष मनुष्य का वर्ष होता है। उसका तीस गुना पितरों का वर्ष होता है तथा पितरों के 12 वर्षों के तुल्य अर्थात् मनुष्यों के 360 वर्षों के तुल्य दिव्य वर्ष अर्थात् देवताओं का (तथा दैत्यों का) वर्ष होता है। 12000 दिव्य वर्षों का ग्रहों का सामान्य युग तथा ग्रहों के 1008 युगों का ब्रह्मा का एक दिन होता है ।।7-8।।

प्राचीन काल के लोगों का विश्वास था कि पितृ लोग चन्द्रलोक में निवास करते हैं जहाँ कृष्ण पक्ष के मध्य में सूर्योदय, अमावस्या को मध्याह्न तथा शुक्लपक्ष के मध्य में सूर्यास्त होता है। अतः उनका दिन एक चान्द्र मास के तुल्य होता है। सूर्यसिद्धान्त में कहा है :[1]

"त्रिंशता तिथिभिर्मासश्चान्द्रः पित्र्यमहः स्मृतम् ।।"

अर्थात् तीस तिथियों का चान्द्र मास तथा पितरों का एक दिन होता है। परन्तु यहाँ सौर मान से ही अभिप्राय है क्योंकि गोलपाद में आर्यभट ने लिखा है :[2]

'रविवर्षार्धं देवाः पश्यन्त्युदितं रविं तथा प्रेताः ।'

अर्थात् देवता लोग रवि वर्ष के आधे में सूर्य को उदित देखते हैं और दैत्य दूसरे आधे में। अतएव मनुष्यों के एक सौर वर्ष का देवताओं का एक दिन और एक रात होती है।

बारह हज़ार दिव्य वर्षों का ग्रहों का सामान्य युग होता है अर्थात् सभी ग्रह पूरे-पूरे भगण करते हैं क्योंकि दो ग्रह आपस में इससे कम समय में भी पूरे-पूरे भगण कर सकते हैं जैसे सूर्य सिद्धान्त में कहा है :[3]

"चतुर्विंशो युगस्यांशः सूर्यचन्द्रमसोर्युगम् ।"

अर्थात् युग के चौबीसवें भाग में सूर्य-चन्द्रमा का युग होता है।

---

[1]सूर्यसिद्धान्त, चतुर्दश अध्याय, आर्या 14 ।
[2]आर्यभटीय, गोलापाद, आर्या 17 ।
[3]कृपाशंकर शुक्ल द्वारा सम्पादित सूर्यसिद्धान्तविवरण में परमेश्वर द्वारा उद्धृत आर्या, पृ० 14 ।

यह गीतिका पाद में बतला आये हैं कि ब्रह्मा के एक दिन में 14 मनु और प्रत्येक मन्वन्तर में 72 युग होते हैं, अर्थात् ब्रह्मा का एक दिन 14×72=1008 युगों का होता है[1]।

उत्सर्पिणी युगार्धं पश्चादवसर्पिणी युगार्धं च ।
मध्ये युगस्य सुषमादावन्ते दुष्षमेन्दूच्चात् ॥९॥

अनुवाद—युग का प्रथमार्ध उत्सर्पिणी तथा द्वितीय युगार्ध अवसर्पिणी कहलाता है। युग का मध्य भाग सुषमा तथा आदि अन्त भाग चन्द्रोच्च से दुष्षमा कहलाता है ॥9॥

इस आर्या का कुछ ठीक अर्थ न बैठने से पं० सुधाकर द्विवेदी जी ने सुझाव दिया था कि 'दुष्षमेन्दूच्चात्' का शुद्ध पाठ 'दुष्षमाग्न्यंशात्' होना चाहिए। किन्तु यह सुझाव समीचीन नहीं है क्योंकि वटेश्वर ने लिखा है[2] :

उत्सर्पिणी प्रथममेव युगार्धमुक्ता ज्ञेया द्वितीयमपसर्पिणिकाभिधाना ।
मध्ये युगस्य सुषमा खलु दुष्षमा स्यादाद्यन्तयोः कुमुदिनीवनबन्धुतुङ्गात् ॥"

यद्यपि वटेश्वर के श्लोक से भी आर्यभट की आर्या के अर्थ के ऊपर कोई प्रकाश नहीं पड़ता, 'कुमुदिनीवनबन्धुतुङ्गात्,' से स्पष्ट है कि 'दुष्षमेन्दूच्चात्' पाठ ही ठीक है।

उत्सर्पिणी वह काल है जिसमें मनुष्यों के धर्म और यश आदि में वृद्धि होती है तथा अवसर्पिणी वह काल है जिसमें इनका ह्रास होता है।

जैन मत के अनुसार सुषमा काल चक्र में अवसर्पिणी की द्वितीय अरा तथा उत्सर्पिणी की पाँचवी अरा है एवं दुष्षमा अवसर्पिणी की पाँचवी अरा तथा उत्सर्पिणी की दूसरी अरा है। परन्तु चन्द्रोच्च से इन सब का क्या सम्बन्ध है यह स्पष्ट नहीं होता।

अल्बीरूनी ने भी अपनी पुस्तक में उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी का उल्लेख किया है। परन्तु उन्होंने इनका सम्बन्ध सूर्य की उन्नति तथा अवनति से जोड़ा है[3]।

---

[1]दशगीतिका, आर्या 3।
[2]वटेश्वर सिद्धान्त, मध्यमाधिकार, द्वितीय अध्याय, श्लोक 6। छपी पुस्तक में पाठ 'योगात्,' है। इसे 'तुङ्गात्' होना चाहिए।
[3]सखाऊ का अनुवाद, भाग 1. पृ० 371।

षष्ट्यब्दानां षष्टिर्यदा व्यतीतास्त्रयश्च युगपादाः ।
त्र्यधिका विंशतिरब्दास्तदेह मम जन्मनोऽतीताः ॥१०॥

अनुवाद—साठ वर्षों की साठ अवधियाँ तथा युगों के तीन पाद जब व्यतीत हो गये थे तब मेरे जन्म के पश्चात् 23 वर्ष हो चुके थे ॥10॥

युगों के तीन पाद अर्थात् सतयुग, त्रेता तथा द्वापर के व्यतीत हो जाने पर तथा कलियुग के 3600 वर्ष व्यतीत होने पर आर्यभट की आयु 23 वर्ष की थी। भारतीय ज्योतिषियों के अनुसार शककाल का प्रारम्भ 3179 कलि से होता है। इससे स्पष्ट है कि आर्यभट 421 शक में 23 वर्ष के थे अर्थात् 398 शक में पैदा हुए थे।

कुछ लोगों का मत है कि आर्यभट ने 23 वर्ष की अवस्था में आर्यभटीय ग्रंथ की रचना की। किन्तु यह ठीक नहीं है। इसका अर्थ है कि इस समय दशगीतिका में दिए भगणों से ग्रहों की मध्यम स्थिति ठीक उतरती है। अन्य कालों के लिए बीज संस्कार करने पड़ते हैं। वस्तुतः आर्यभट ने औदायिक तथा आर्धरात्रिक दोनों पद्धतियों के ग्रंथ रचे थे। इनमें आर्धरात्रिक पद्धति का ग्रंथ पहले लिखा गया था जो वराहमिहर की पंचसिद्धान्तिका में दिए सूर्यसिद्धान्त से बहुत मिलता था। यह ग्रंथ अब नहीं मिलता। पर ब्रह्मगुप्त ने पूर्व खण्डखाद्यक की रचना इसी के आधार पर की थी। आर्यभटीय की रचना आर्यभट ने अधिक प्रौढ़ अवस्था में की।

आर्धरात्रिक तथा औदायिक पद्धितयों में आर्यभट द्वारा दी गयी सावन दिनों की संख्या में 300 का अन्तर है। आर्धरात्रिक पद्धति में युग में सावन दिनों की संख्या 1577917800 है जो औदायिक पद्धति की अपेक्षा 300 अधिक है। इसके लिए ब्रह्मगुप्त ने आर्यभट की आलोचना करते हुए कहा है कि एक में सूर्य दूसरे की अपेक्षा चौथाई अंश कम चलता है और आर्यभट के मन में यह अनिश्चितता है कि इनमें कौन ठीक है। अतएव दोनों ही शुद्ध नहीं हैं[1]।

वास्तविकता यह है कि आर्यभट ने कलि के प्रारम्भ के 3600 वर्ष पश्चात् ग्रहों की स्थिति का निरीक्षण किया और यह मान कर कि कलि के प्रारम्भ में उनकी स्थिति मेषादि में थी उनके भगण निकाले। आर्धरात्रिक पद्धति में गणना आधी रात से प्रारम्भ होती है और औदायिक में सूर्योदय से प्रारम्भ होती है। अतः आर्धरात्रिक पद्धति की अपेक्षा औदायिक पद्धति में 3600 वर्षों में चौथाई दिन का अन्तर है। यह अन्तर 4320000 वर्षों में 300 दिनों का होगा। भगण प्राप्त करने के लिये आवश्यक यह था कि दो विभिन्न समयों में ग्रहों की स्थिति का शुद्ध ज्ञान होता। पर एक ज्योतिषी का जीवनकाल इतना कम है कि उसके जीवन काल के दो प्रेक्षणों से ग्रहों के भगण का शुद्ध मान प्राप्त करना कठिन है।

भास्कराचार्य ने सिद्धान्तशिरोमणि में कलि के प्रारम्भ में ग्रहों की स्थिति दी है[2]।

---

[1]ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त, तन्त्रपरीक्षाध्याय, आर्या 14।
[2]सिद्धान्तशिरोमणि, मध्यमाधिकार, ग्रहानयनाध्याय, श्लोक 19-20।

उससे स्पष्ट है कि उनके अनुसार ग्रहों को स्थिति मेष राशि में नहीं थी। चन्द्रोच्च एवं चन्द्रपात की स्थितियाँ वह नहीं थी जिन्हें आर्यभट ने माना था।

युगवर्षमासदिवसास्समं प्रवृत्तास्तु चैत्र शुक्लादेः।
कालोऽयमनाद्यन्तो ग्रहभैरनुमीयते क्षेत्रे ॥११॥

अनुवाद—युग, वर्ष, मास, दिवस सभी का प्रारम्भ एक ही समय चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से हुआ। काल अनादि एवं अनन्त है। ग्रहों के क्षेत्र (आकाश) में गमन से उसका अनुमान किया जाता है ॥11॥

षष्ट्या सूर्याब्दानां प्रपूरयन्ति ग्रहा भपरिणाहम्।
दिव्येन नभःपरिधिं समं भ्रमन्तः स्वकक्ष्यासु ॥१२॥
मण्डलमल्पमधस्तात् कालेनाल्पेन पूरयति चन्द्रः।
उपरिष्टात् सर्वेषां महच्च महता शनैश्चारी ॥१३॥
अल्पे हि मण्डलेऽल्पा महति महान्तश्च राशयो ज्ञेयाः।
अंशाः कलास्तथैवं विभागतुल्याः स्वकक्ष्यासु ॥१४॥
भानामधश्शनैश्चरसुरगुरुभौमार्कशुक्रबुधचन्द्राः।
तेषामधश्च भूमिर्मेधीभूता खमध्यस्था ॥१५॥

अनुवाद—सूर्य के साठ वर्षों में ग्रह नक्षत्रकक्ष्या के तुल्य मार्ग तय करते हैं, और चतुर्युग काल में वे आकाशकक्ष्या के तुल्य मार्ग तय करते हैं। यह दशगीतिका (आर्या 4) में बतला चुके हैं कि नक्षत्रों की कक्ष्या सूर्य की कक्ष्या की 60 गुनी है और आकाशकक्ष्या को ग्रहों के चतुर्युगीय भगण से विभाजित करने पर उनकी कक्ष्या प्राप्त होती है। इस आर्या द्वारा उसी की पुष्टि की है ॥12॥

चन्द्रमा की कक्ष्या सबसे नीचे होने के कारण सबसे छोटी है और इस कारण वह अपनी कक्ष्या सबसे कम समय में पूरी कर लेता है। सबसे ऊपर शनि की कक्ष्या है, अतएव उसे बहुत अधिक समय कक्ष्या पूरी करने में लगता है। (भारतीय ज्योतिषियों के अनुसार सभी ग्रह अपनी कक्ष्याओं में एक ही गति से चलते हैं) ॥13॥

बड़े वृत्तों में राशि का मान बड़ा और छोटे वृत्तों में राशि का मान छोटा होता है अर्थात् राशियों का योजनात्मक मान वृत्त के ऊपर निर्भर करता है। प्रत्येक कक्ष्या में अंशों तथा कलाओं का मान एक ही होता है अतएव उनका योजनात्मक मान भी कक्ष्याओं के अनुसार छोटा या बड़ा होता है ॥14॥

नक्षत्रों के नीचे शनि है; उसके नीचे क्रम से वृहस्पति, मंगल, सूर्य, शुक्र, बुध तथा चन्द्रमा हैं। सबसे नीचे पृथ्वी खमध्य में स्तम्भ की तरह स्थित है ॥15॥

सप्तैते होरेशाः शनैश्चराद्या यथाक्रमं शीघ्राः ।
शीघ्रक्रमाच्चतुर्था भवन्ति सूर्योदयाद् दिनपाः ॥१६॥

अनुवाद—शनि आदि ग्रह शीघ्रता के क्रम में सात होराओं के स्वामी होते हैं। इसी शीघ्रता के क्रम में चौथे, सूर्योदय से दिनपति होते हैं ॥16॥

यद्यपि सब ग्रहों की रैखिक चाल एक ही होती है, कलाओं के दृष्टिकोण से शनि सबसे कम चलने वाला है तथा उसके पश्चात् वृहस्पति, मंगल, सूर्य, शुक्र, बुध, चन्द्रमा की चालें बढ़ती जाती हैं क्योंकि पृथ्वी से इनकी दूरियाँ कम होती जाती हैं। यदि प्रथम होरा का स्वामी शनि है तो उस दिन का दिनपति भी शनि ही है और वह दिन शनिवार कहलाता है। इसके पश्चात् द्वितीय, तृतीय आदि होराओं के स्वामी क्रमशः वृहस्पति, मंगल, आदि होते हैं जैसा नीचे दिखाया गया है :

स्वामी	शनि	गुरु	मंगल	रवि	शुक्र	बुध	चन्द्र
होरा	1	2	3	4	5	6	7
	8	9	10	11	12	13	14
	15	16	17	18	19	20	21
	22	23	24				

अतएव अगले दिन की प्रथम होरा का स्वामी रवि होता है जो शीघ्रता के क्रम में शनि से चतुर्थ है। यह दिन रविवार होगा। इसी प्रकार अगले दिन की प्रथम होरा का स्वामी चन्द्रमा होगा जो रवि से चतुर्थ है।

इसी प्रकार मासपति तथा वर्षपति होते हैं।

ब्रह्मगुप्त ने इस की आलोचना करते हुए कहा है :[1]

'आर्यभट ने जो यह कहा है कि सूर्य आदि से चतुर्थ ग्रह दिनपति होते हैं वह ठीक नहीं है क्योंकि स्वयं आर्यभट का कहना है कि जब लंका में सूर्योदय होता है तब सिद्धपुर में सूर्यास्त होता है।' परन्तु जैसा सुधाकर द्विवेदी जी ने अपने भाष्य में कहा है यह दूषण ठीक नहीं है क्योंकि आर्यभट किसी स्थान विशेष में सूर्योदय आदि की बात कह रहे हैं।

---

[1]ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त, तन्त्रपरीक्षाध्याय, आर्या 12।

कक्ष्या प्रतिमण्डलगा भ्रमन्ति सर्वे ग्रहाः स्वचारेण ।
मन्दोच्चादनुलोमं प्रतिलोमश्चैव शीघ्रोच्चात् ॥१७॥
कक्ष्यामण्डलतुल्यं स्वं स्वं प्रतिमण्डलं भवत्येषाम् ।
प्रतिमण्डलस्य मध्यं घनभूमध्यादतिक्रान्तम् ॥१८॥
प्रतिमण्डलभूविवरं व्यासार्धं स्वोच्चनीचवृत्तस्य ।
वृत्तपरिधौ ग्रहास्ते मध्यमचारं भ्रमन्त्येव ॥१९॥

अनुवाद—प्रत्येक ग्रह अपनी मध्यम गति से कक्ष्यामण्डल और प्रतिमण्डल पर घूमते हैं अर्थात् मध्यम ग्रह कक्ष्यामण्डल पर तथा स्फुटग्रह प्रतिमण्डल पर मध्यम गति से चलते हैं। वे मन्दोच्च से अनुलोम गति से अर्थात् पूर्वाभिमुख और शीघ्रोच्च से प्रतिलोम गति से अर्थात् पश्चिमाभिमुख चलते हैं। ग्रह की पूर्वाभिमुख गति मन्दोच्च से अधिक होती है। अतः मन्दोच्च की अपेक्षा वे पूर्व की ओर चलते हैं। परन्तु शीघ्रोच्च पूर्व की ओर ग्रहों की अपेक्षा अधिक शीघ्रता से चलता है। अतः उसकी अपेक्षा ग्रह पश्चिम की ओर चलते प्रतीत होते हैं ॥17॥

ग्रहों का प्रतिमण्डल उनमें प्रत्येक के कक्ष्यामण्डल के तुल्य होता है। किन्तु प्रतिमण्डल का केन्द्र ठोस पृथ्वी के केन्द्र से भिन्न होता है ॥18॥

ग्रह के प्रतिमण्डल के केन्द्र तथा पृथ्वी के केन्द्र का अन्तर उनके नीचोच्च वृत्त के व्यासार्ध के तुल्य होता है। नीचोच्च वृत्त की परिधि पर ग्रह मध्यम गति से चलते हैं ॥19॥

ब्रह्मगुप्त ने यह कहकर कि आर्यभट के अनुसार चन्द्रमा को छोड़कर शेष ग्रहों के मन्दोच्च तथा पात स्थिर हैं अतएव उसके युग आदि शुद्ध नहीं हैं, आर्यभट की आलोचना की है। परन्तु यह कहना ठीक नहीं है कि आर्यभट मन्दोच्चों और पातों को स्थिर मानते हैं। केवल उनकी गति अत्यन्त अल्प होने के कारण उन्होंने अपने समय के मान दे दिये हैं। इस पाद की चौथी आर्या में उन्होंने स्पष्ट कहा है कि ग्रहों की उच्चनीच की परिभ्रमण संख्या उनके भगण और स्वयं उनके उच्चों के भगण के अन्तर के तुल्य होती है।

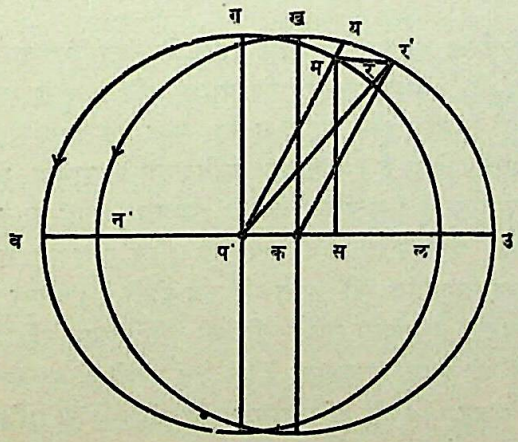

आकृति 3.1

आकृति (3.1) में ल ग व सूर्य का कक्ष्यावृत्त है जिसका केन्द्र पृथ्वी का केन्द्र प

है। इस वृत पर मध्यम सूर्य मध्यम गति से चलता है। उ ख न सूर्य का प्रतिमण्डल है जिस पर स्फुट सूर्य मध्यम गति से चलता है। इसका केन्द्र क है। बिन्दु उ मन्दोच्च तथा बिन्दु न मन्दनीच है, न उ नीचोच्च रेखा है तथा प क दूरो नीचोच्च वृत्त के व्यासार्ध के तुल्य है। जब मध्यम रवि बिन्दु ल पर होता है तब स्फुट रवि उ बिन्दु पर होता है। जब तक मध्यम रवि बिन्दु म तक आता है स्फुट रवि बिन्दु र′ तक आता है और चाप ल म और चाप उ र′ तुल्य होते हैं। कोण य प र′ मन्दफल है।

∵ < ल प म = < उ क र′,

∴ क र′ तथा प म परस्पर समान्तर तथा बराबर हैं।

अतएव प क तथा म र′ परस्पर समान्तर तथा बराबर हैं।

अब चाप ल म = चाप उ र′ = मध्यम रवि और मन्दोच्च के बीच के कोण की नाप,

= मन्दकेन्द्र कोण की नाप।

अतएव त्रिभुज र′ य म तथा त्रिभुज म स प समरूप हैं। अतएव

$$\frac{\text{र′ य}}{\text{र′ म}} = \frac{\text{म स}}{\text{म प}},$$

$$\text{अथवा र′ य} = \frac{\text{म स} \times \text{र′ म}}{\text{म प}}, = \frac{\text{मन्दकेन्द्रज्या} \times \text{नीचोच्च वृत्त का अर्धव्यास}}{\text{कक्ष्या का अर्धव्यास}},$$

$$= \frac{\text{मन्दकेन्द्रज्या} \times \text{नीचोच्च वृत्त की परिधि}}{360^\circ} = \text{मन्दफलज्या}।$$

चूंकि कोण र′ प य = कोण र प म और ये कोण बहुत छोटे हैं, र′ य को सन्निकटतः कोण र प म की ज्या के तुल्य मान लिया जाता है और र म वह चाप है जिसकी ज्या समीकरण (1) से प्राप्त होती है। इस तरह मन्दफल प्राप्त किया जा सकता है।

जब तक मन्दकेन्द्र का मान 0° और 180° के बीच में होता है तब तक र म का मान धनात्मक होता है, अर्थात् स्पष्ट रवि मध्यम रवि से पीछे रहता है। मन्दकेन्द्र का मान 180° और 360° के बीच होने पर र म का मान ऋणात्मक होता है, अर्थात् स्पष्ट रवि मध्यम रवि से आगे होता है। र म का अधिकतम धनात्मक मान तब होता है जब मन्दकेन्द्र 90° के तुल्य होता है। मन्दकेन्द्र जब 0° अथवा 180° के तुल्य होता है तब र म का मान शून्य होता है। अतएव 0° तथा 90° के बीच र म का मान बढ़ता है अर्थात् स्पष्ट रवि की गति मध्यम रवि की गति से कम होती है। परन्तु र म का मान 90° और 180° के बीच घटता है अर्थात् स्पष्ट रवि की गति मध्यम रवि की गति से अधिक होती है। इसी प्रकार यह देखा जा सकता है कि जब मन्दकेन्द्र का मान 180° और 270° के बीच होता है तब स्पष्ट रवि की गति मध्यम रवि की गति से अधिक होती है और जब मन्दकेन्द्र का मान 270° और 360° के बीच होता है तब स्पष्ट रवि की गति मध्यम रवि की गति से कम होती है।

जिस तरह रवि के लिए मन्दफल निकाला जाता है उसी प्रकार चन्द्रमा आदि अन्य ग्रहों का मन्दफल भी निकाला जा सकता है। इन सभी ग्रहों के नीचोच्च वृत्त की परिधियों का मान दशगीतिका की आठवीं तथा नवीं आर्याओं में दिया गया है और कक्ष्या-मण्डलों का मान 360° लिया जाता है।

मन्दफल का यही मान नीचोच्च वृत्त के उपयोग से भी प्राप्त होता है।

आकृति (3.2) में प पृथ्वी का केन्द्र है जो कक्ष्यामण्डल क ख ग का भी केन्द्र है। क प ग नीचोच्च रेखा है। क को केन्द्र मानकर तथा रवि की मन्दान्त्यफलज्या के तुल्य अर्धव्यास से खींचा गया वृत्त रवि का नीचोच्च वृत्त है। इसे नीचोच्च रेखा उ तथा न बिन्दुओं पर काटती है। उ बिन्दु मन्दोच्च तथा न बिन्दु मन्दनीच है।

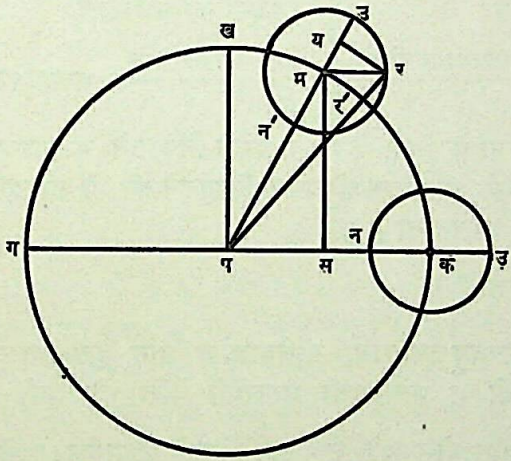

आकृति 3.2

नीचोच्चवृत की इस स्थिति में स्पष्ट रवि उ बिन्दु पर होता है। नीचोच्च वृत्त का केन्द्र जिस कोणीय गति से राशियों की दिशा में चलता है उसी कोणीय गति से स्पष्ट रवि नीचोच्च वृत्त पर प्रतिकूल दिशा में चलता है। ये दोनों गतियाँ वही होती हैं जिससे मध्यम रवि पृथ्वी के चारों ओर कक्ष्या पर चलता है।* इस कारण जितने काल में मध्यम रवि पृथ्वी की एक परिक्रमा पूरी करता है नीचोच्च वृत्त का केन्द्र भी वृत्त पर एक बार घूम जाता है और स्पष्ट रवि नीचोच्च वृत्त की परिधि पर एक चक्कर पूरा करता है। अतएव जब मध्यम रवि और नीचोच्च वृत का केन्द्र फिर क पर होते हैं तब स्पष्ट रवि उ पर होता है।

---

*वस्तुतः यह पूर्णतया ठीक नहीं है। नीचोच्च वृत्त के केन्द्र की कोणीय गति रवि की कोणीय और मन्दोच्च की कोणीय गति के अन्तर के तुल्य होती है, जैसा कहा है :

"स्वोच्चभगणाः स्वभगणैर्विशेषिताः स्वोच्चनीचपरिवर्ताः।"

परन्तु मन्दोच्च की गति इतनी अल्प होती है कि रवि की कोणीय एवं नीचोच्च वृत के केन्द्र की कोणीय गति में कोई अन्तर नहीं होता।

अतः जब तक मध्यम रवि और नीचोच्च वृत का केन्द्र क से म तक आते हैं स्पष्ट रवि उतने ही समय में उ' से र तक घूम जाता है (उ' वह बाह्य बिन्दु है जिसमें प म रेखा बढ़ाने पर नीचोच्च वृत्त की परिधि को काटती है)। अतएव कोण उ' म र=कोण म प क =मन्दकेन्द्र। पृथ्वी से देखने पर स्पष्ट रवि कक्ष्या में र' स्थान पर दिखता है और कोण र' प म मन्दफल है। इसे चाप र' म द्वारा नापा जा सकता है और इसे ही प्राप्त करना है। र बिन्दु से र य लम्ब प उ' रेखा पर तथा म बिन्दु से म स लम्ब क प रेखा पर डाले गये हैं। अतएव त्रिभुज र म य और म प स समरूप हैं तथा

$$\frac{\text{र य}}{\text{र म}}=\frac{\text{म स}}{\text{म प}}।$$

$$\text{अतः}\quad \text{र य}=\frac{\text{म स}\times\text{र म}}{\text{म प}}=\frac{\text{मन्दकेन्द्रज्या}\times\text{नीचोच्च वृत्त का अर्धव्यास}}{\text{कक्ष्या का अर्धव्यास}},$$

$$=\frac{\text{मन्दकेन्द्रज्या}\times\text{नीचोच्च वृत की परिधि}}{360^\circ}=\text{मन्दफलज्या}।$$

सूर्य और चन्द्रमा के लिए केवल मन्दफल निकालने की आवश्यकता होती है। मंगल आदि के लिए इसके अतिरिक्त शीघ्रफल निकालने की भी आवश्यकता होती है। उसे भी इसी तरह निकाला जा सकता है।

ब्रह्मगुप्त ने कहा है।[1]

नीचोच्चवृत्तमध्यस्य गोलवाह्येन नाम कृतमुच्चम्।
तत्स्थो न भवत्युच्चो यतस्ततो वेत्ति नोच्चमपि ॥

गोलवाह्य अर्थात् गोल को न जानने वाले (आर्यभट) ने नीचोच्च वृत्त के केन्द्र का नाम उच्च रखा है। चूँकि उच्च वहाँ नहीं होता अतएव वे उच्च को नहीं जानते।

यदि यह दोषारोपण आर्यभट के प्रति है तो व्यर्थ है क्योंकि आर्यभट ने उच्च की स्थिति नीचोच्च वृत्त के केन्द्र पर नहीं मानी है। जैसा चतुर्वेदाचार्य कहते है यह केवल वाग्वल है।

यः शीघ्रगतिः स्वोच्चात् प्रतिलोमगतिः स्ववृत्तकक्ष्यायाम्।
अनुलोमगतिर्वृत्ते मन्दगतिर्यो ग्रहो भ्रमति ॥२०॥

अनुवाद—यदि ग्रह अपने उच्च से शीघ्रगति वाला है तो वह नीचोच्च वृत्त पर प्रतिलोम गति से चलता है। यह बात मन्दोच्च से ग्रह की गति के लिए लागू है। इसका उपयोग पीछे यह दिखलाने के लिए किया गया है कि जो मन्दफल प्रतिमण्डल के उपयोग से प्राप्त होता है वही मन्दफल नीचोच्च वृत्त के उपयोग से प्राप्त होता है।

---

[1] ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त, तन्त्रपरीक्षाध्याय, आर्या 52।

यदि ग्रह अपने उच्चसे मन्दगति से चलता है तो वह नीचोच्च वृत्त में अनुलोम गति से चलता है। यह बात शीघ्रोच्च से ग्रह की गति के लिए लागू है ॥20॥

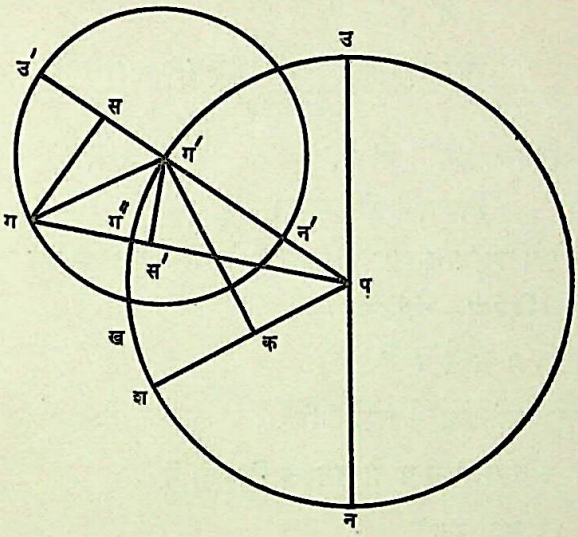

आकृति 3.3

कल्पना किया कि उ ख न किसी ग्रह की कक्ष्या है जिसके केन्द्र पर पृथ्वी का केन्द्र प है। ग′ मन्दफल संस्कारयुक्त ग्रह की स्थिति है। ग′ को केन्द्र मानकर और शीघ्र वृत्त के अर्धव्यास के तुल्य अर्धव्यास लेकर उ′ ग न′ वृत्त खींचा गया है जो शीघ्रनीचोच्च वृत्त है। प ग′ रेखा बढ़ाने पर इस वृत को उ′ तथा न′ पर काटती है जो क्रमशः शीघ्रोच्च और शीघ्रनीच हैं। यदि शीघ्रोच्च की दिशा प श है तो ग′ से ग′ ग रेखा इसके समान्तर खींची गयी है। ग शीघ्रनीचोच्च वृत्त पर ग्रह की स्थिति है। यह स्पष्ट है कि उ′ से ग तक ग्रह की गति अनुलोम दिशा में हुई है। प ग को मिलाकर ग′ से ग′ स′ एवं ग′ क लम्ब क्रमशः प ग एवं प श पर डाले गये हैं। इसी प्रकार ग से ग स लम्ब प उ′ पर डाला गया है। प ग रेखा कक्ष्यामण्डल को ग″ बिन्दु पर काटती है। ग″ कक्ष्यामण्डल पर ग्रह की स्थिति है तथा कोण ग′ प ग″ शीघ्रफल है।

कोण ग′ प श ग्रह और शीघ्रोच्च के बीच का कोण अर्थात् शीघ्रकेन्द्र है। ग′ क शीघ्रकेन्द्रज्या और प क शीघ्रकेन्द्रकोटिज्या हैं। ग ग′ रेखा प श रेखा के समान्तर है। अतएव कोण ग ग′ स और कोण ग′ प श परस्पर बराबर हैं। अब ग′ प क तथा ग ग′ स दो समरूप त्रिभुजों में,

$$\text{दोः फल ग स} = \frac{\text{ग′ क} \times \text{ग ग′}}{\text{ग′ प}},$$

$$= \frac{\text{शीघ्रकेन्द्रज्या} \times \text{शीघ्रवृत्त का अर्धव्यास}}{\text{कक्ष्या का अर्धव्यास}},$$

$$= \frac{\text{शीघ्रकेन्द्रज्या} \times \text{शीघ्रवृत्त की परिधि}}{360^\circ}।$$

उन्हीं त्रिभुजों से

$$\text{कोटिफल ग' स} = \frac{\text{प क} \times \text{ग ग'}}{\text{ग' प}},$$

$$= \frac{\text{शीघ्रकेन्द्र कोटिज्या} \times \text{शीघ्रवृत्त की परिधि}}{360^\circ}\ ।$$

स्फुटकोटि प स = प ग' + ग' स,

= त्रिज्या + कोटिफल ।

(जब शीघ्रकेन्द्र का मान 90° और 270° के बीच होता है तब स्फुट कोटि = त्रिज्या — कोटिफल)

$$\text{कर्ण प ग} = \sqrt{\text{ग स}^2 + \text{प स}^2}$$

$$= \sqrt{\text{दोः फल}^2 + \text{स्फुटकोटि}^2}$$

अब ग' स' प तथा ग स प दो समरूप त्रिभुजों में

$$\text{ग' स'} = \frac{\text{ग स} \times \text{प ग'}}{\text{प ग}},$$

= चाप ग'' ग' की ज्या ।

अतएव,

$$\text{शीघ्रफलज्या} = \frac{\text{दोःफल} \times \text{त्रिज्या}}{\text{कर्ण}}\ ।$$

इस ज्या के मान से शीघ्रफल ज्ञात किया जा सकता है ।

अनुलोमगानि मन्दाच्छीघ्रात् प्रतिलोमगानि वृत्तानि ।
कक्ष्यामण्डललग्नस्ववृत्तमध्ये ग्रहो मध्यः ॥२१॥

अनुवाद—ग्रह मन्दोच्च से अनुलोम दिशा में जाता है तथा शीघ्रोच्च से प्रतिलोम दिशा में चलता है। मध्यमग्रह कक्ष्यामण्डल में मन्दवृत्त अथवा शीघ्रवृत्त (अर्थात् नीचोच्च वृत्त) के केन्द्र पर रहता है ॥21॥

ग्रह, मन्दोच्च तथा शीघ्रोच्च सभी पूर्व की ओर चलते हैं। ग्रह की गति मन्दोच्च की अपेक्षा अधिक होती है। अतएव वह मन्दोच्च की अपेक्षा पूर्व की ओर (अनुलोम दिशा में) चलता है। परन्तु शीघ्रोच्च की गति से ग्रह की गति कम होती है। अतएव वह शीघ्रोच्च की अपेक्षा प्रतिलोम दिशा में चलता है। यह कोपरनिकस के सिद्धान्त से स्पष्ट किया जा सकता है।

आर्यभट के अनुसार बुध और शुक्र के शीघ्रोच्च के भगण वही हैं जो कोपरनिकस के सिद्धान्त में इन ग्रहों के सूर्य के चारों ओर के भगण हैं एवं मध्यम ग्रह के भगण वे हैं जो पृथ्वी द्वारा सूर्य के चारों ओर परिक्रमण की संख्या है।

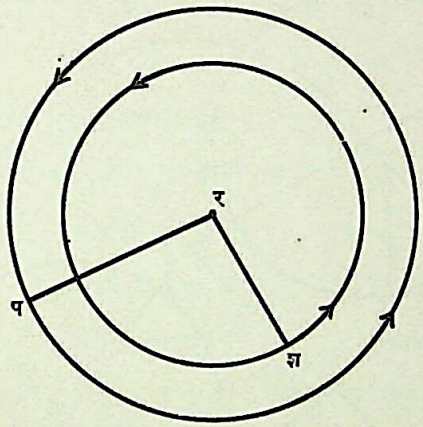

आकृति 3.4

आकृति (3.4) में स्थिति कोपरनिकस के सिद्धान्त के अनुसार दिखायी गयी है। प पृथ्वी, र रवि तथा श शुक्र हैं।

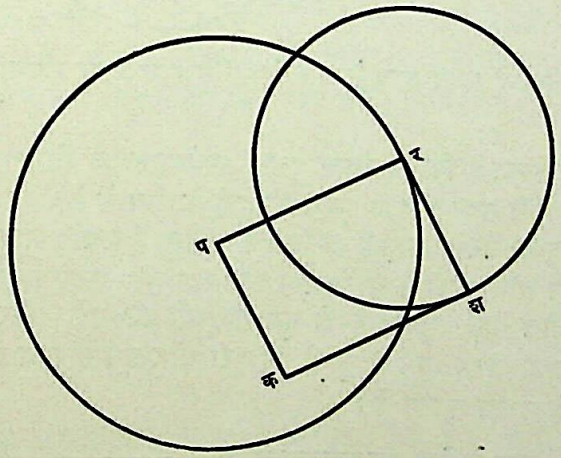

आकृति 3.5

आकृति (3.5) में आर्यभट के सिद्धान्त के अनुसार पृथ्वी स्थिर है। प से र की तथा र से श की आपेक्षिक दिशाएँ वही हैं जो आकृति (3.4) में हैं। समान्तर चतुर्भुज प र श क को पूरा करने से स्पष्ट है कि क बिन्दु प के चारों ओर उसी कोणीय गति से घूमेगा जिस गति से श बिन्दु र के चारों ओर घूमता है। अर्थात् क की गति वही है जो शुक्र के शीघ्रोच्च की गति है।

आकृति (3.6) में दो स्थितियाँ दिखाई गयी हैं। पहली स्थिति में प, क एवं र एक ही दिशा में हैं। दूसरी स्थिति में जब तक मध्यम ग्रह र से र′ तक जाता है, तब तक शीघ्रोच्च की दिशा प क′ हो जाती है। इससे स्पष्ट है कि मध्यम ग्रह शीघ्रोच्च की अपेक्षा प्रतिलोम

दिशा में चलता है और नीचोच्च वृत्त पर स्पष्ट ग्रह की स्थिति ग है अर्थात् नीचोच्च वृत्त पर ग्रह अनुलोम दिशा में चलता है। (आकृति 3.2 में ग्रह नीचोच्च वृत्त पर उ′ से र तक

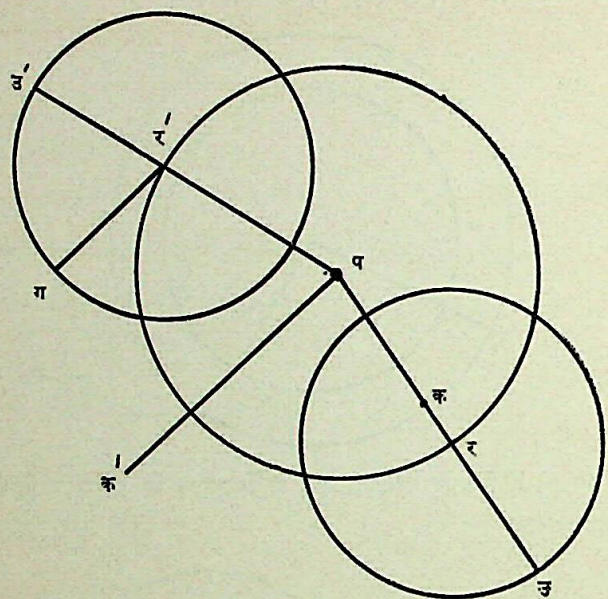

आकृति 3.6

प्रतिलोम दिशा में चलता है। पर आकृति 3.6 में उ′ से ग तक ग्रह की गति अनुलोम दिशा में है।)

इस तरह यह स्पष्ट है कि शीघ्रोच्च वृत्त के अर्धव्यास एवं त्रिज्या में वही अनुपात है जो रवि से शुक्र की दूरी तथा रवि से पृथ्वी की दूरी के बीच में है। मंगल, वृहस्पति और शनि के लिए शीघ्रोच्च के भगण वही हैं जो सूर्य के भगण हैं अर्थात् आधुनिक सिद्धान्त के अनुसार सूर्य के चारों ओर पृथ्वी के परिक्रमण की संख्याएँ हैं। अतएव इनके शीघ्रनीचोच्च वृत्त और त्रिज्या के बीच वही अनुपात है जो सूर्य से पृथ्वी की दूरी और सूर्य से इनकी दूरियों के बीच है। इस तरह सूर्य से पृथ्वी की दूरी और सूर्य से अन्य ग्रहों की दूरियों के बीच अनुपात ज्ञात किया जा सकता है।

उदाहरणत : शुक्र के लिए इस अनुपात का मान $\frac{265^\circ\ 30' + 256^\circ\ 30'}{2 \times 360^\circ}$ $= 0.7250$ है। सभी ग्रहों के लिए ये अनुपात नीचे की तालिका में दिए गए हैं।

ग्रह	आर्यभट के मान	आधुनिक मान	कोपरनिकस के मान
बुध	0.3750	0.3871	0.3763
शुक्र	0.7250	0.7233	0.7193
मंगल	1.5385	1.5237	1.5198
वृहस्पति	5.1613	5.2028	5.2192
शनि	9.4118	9.5389	9.1743

यह दृष्टव्य है कि आर्यभट के मान काफी शुद्ध हैं। शुक्र और शनि के लिए आर्यभट के मान कोपरनिकस की अपेक्षा अधिक शुद्ध हैं।

ऋणधनधनक्षयाः स्युर्मन्दोच्चाद् व्यत्ययेन शीघ्रोच्चात्।
शनिगुरुकुजेषु मन्दादर्धमृणधनं भवति पूर्वे ॥२२॥
मन्दोच्चाच्छीघ्रोच्चादर्धमृणधनं ग्रहेषु मन्देषु।
मदोच्चात् स्फुटमध्याश्शीघ्रोच्चाच्च स्फुटा ज्ञेयाः ॥२३॥
शीघ्रोच्चादर्धोनं कर्त्तव्यमृणं धनं स्वमन्दोच्चे।
स्फुटमध्यौ तु भृगुबुधौ सिद्धान्मन्दात् स्फुटौ भवतः ॥२४॥
भूताराग्रहविवरं व्यासार्धहृतः स्वकर्णसंवर्गः।
कक्ष्यायां ग्रहवेगो यो भवति स मन्दनीचोच्चे ॥२५॥

अनुवाद—मन्दफल ऋण तथा धन होता है। इसके विपरीत शीघ्रफल धन और ऋण होता है। अर्थात् प्रथम छः राशियों में (जब मन्दकेन्द्र 0° तथा 180° के बीच होता है) मन्दफल ऋणात्मक और शेष छः राशियों में मन्दफल धनात्मक होता है, परन्तु जब शीघ्र-केन्द्र 0° और 180° के बीच होता है तब शीघ्रफल धनात्मक तथा जब शीघ्रकेन्द्र 180° और 360° के बीच होता है तब शीघ्रफल ऋणात्मक होता है।

शनि, वृहस्पति और मंगल के लिए पहले ऋणात्मक अथवा धनात्मक मन्दफल के आधे से ग्रह का संस्कार करना चाहिए। इस मन्दफल संस्कृत ग्रह से शीघ्रफल निकालकर उसका आधा मन्दफल संस्कृत ग्रह में लगाना चाहिए। इस द्विसंस्कृत ग्रह से फिर मन्दफल निकालना चाहिए और पूरा मन्दफल मध्यमग्रह में लगाना चाहिए। तब स्फुटमध्यग्रह होता है। इस स्फुटमध्यग्रह से शीघ्रफल निकालना चाहिए और पूरा शीघ्रफल स्फुटमध्यग्रह में लगाने से स्फुटग्रह निकलता है ॥22-23॥

बुध तथा शुक्र के लिए मध्यम ग्रह को शीघ्रोच्च में से घटाकर शीघ्रकेन्द्र प्राप्त कर शीघ्रफल ज्ञात करना चाहिए (इसकी विधि पहले बतायी जा चुकी है)। इस शीघ्रफल के आधे द्वारा इनके मन्दोच्च में ऋण तथा धन संस्कार करना चाहिए। अर्थात् मेष से प्रारम्भ करके छः राशियों के लिए मन्दोच्च में से शीघ्रफल के आधे को घटाना चाहिए और तुला से प्रारम्भ करके शेष छः राशियों के लिए मन्दोच्च में शीघ्रफल के आधे को जोड़ना चाहिए। इस मन्दोच्च से मन्दफल ज्ञातकर पूरा मध्यम ग्रह में देने से ये ग्रह स्फुटमध्य होते हैं। स्फुटमध्यग्रह से शीघ्रफल प्राप्त कर स्फुटमध्यग्रह में देने से स्फुटग्रह प्राप्त होते हैं ॥24॥

मन्दकर्ण तथा शीघ्रकर्ण के गुणनफल को व्यासार्ध से भाग देने पर पृथ्वी के केन्द्र तथा ग्रह के केन्द्र के बीच की दूरी प्राप्त होती है। कक्ष्या में ग्रह का जो वेग होता है वही मन्दनीचोच्च वृत्त पर होता है ॥25॥

मन्दफल तथा शीघ्रफल निकालने में मन्दकर्ण, शीघ्रकर्ण तथा कक्ष्याका व्यासार्ध आते हैं। प्रश्न यह है कि पृथ्वी से ग्रह की दूरी क्या मानी जाय। यह मान इस आर्या के प्रथमार्ध से प्राप्त होता है। द्वितीयार्ध में बताया गया है कक्ष्या में तथा नीचोच्च वृत्त पर कोणीय वेग एक ही है।

इति कालक्रियापाद समाप्त ।

गोलपाद

मेषादेः कन्यान्तं सममुदगपमण्डलार्धमपयातम् ।
तौल्यादेर्मीनान्तं शेषार्धं दक्षिणेनैव ॥१॥

अनुवाद—क्रान्तिवृत्त (वह वृत्त जिसमें सूर्य का वार्षिक गमन होता है) का अर्धांश मेष के प्रथम बिन्दु से कन्या के अन्तिम बिन्दु तक (आकाशीय) विषुवत् वृत्त के उत्तर में होता है, तथा तुला के प्रथम बिन्दु से मीन के अन्त तक इसका शेष आधा भाग विषुवत् वृत्त के दक्षिण होता है ॥1॥

क्रान्तिवृत्त जिन दो बिन्दुओं पर विषुवत् वृत्त से मिलता है। उन्हें क्रांतिपात अथवा सम्पात बिन्दु कहते हैं। मेष के आदि का सम्पात बिन्दु वसन्त सम्पात और तुला के आदि का सम्पात बिन्दु शरद् सम्पात कहलाता है। ये बिन्दु क्रान्तिवृत्त पर स्थिर नहीं हैं अपितु पीछे की ओर हटते रहते हैं। इसे अयन कहते हैं। वास्तविक वसन्त सम्पात बिन्दु और मेषादि बिन्दु के अन्तर को अयन संस्कार कहते हैं।

आर्यभट के समय में अयन संस्कार शून्य था। अतएव विषुवत् वृत्त से सूर्य की महत्तम दूरी मिथुन के अन्तिम बिन्दु पर होती थी तथा कर्क राशि के प्रारम्भ स सूर्य दक्षिण की ओर चलना शुरू करता था। इसी प्रकार मकर के प्रारम्भ से सूर्य का उत्तर की ओर गमन प्रारम्भ होता था। इन दिनों अयनसंस्कार लगभग 23° 30′ है। अतएव जब सूर्य लगभग मीन के 6° 30′ पर होता है तब वह विषुवत् वृत्त के उत्तर में जाता है, मिथुन के 6° 30′ पर होने पर अपनी चरम उत्तरीय सीमा पर होता है और तब दक्षिण की ओर गमन प्रारम्भ करता है एवं कन्या के 6° 30′ पर पहुँचने पर विषुवत् वृत्त को उत्तर से दक्षिण की ओर पार करता है।

वराहमिहिर ने लिखा है[1] :

आश्लेषार्द्धाद्दक्षिणमुत्तरमयनं रवेर्धनिष्ठाद्यम् ।
नूनं कदाचिदासीद्येनोक्तं पूर्वशास्त्रेषु ॥1॥
साम्प्रतमयनं सवितुः कर्कटाद्यं मृगादितश्चान्यत् ।
उक्ताभावो विकृतिः प्रत्यक्षपरीक्षणैर्व्यक्तिः ॥2॥

"जैसा पहले के शास्त्रों में कहा गया है उस समय सूर्य का दक्षिणायन आश्लेषा नक्षत्र के मध्य से तथा उत्तरायण धनिष्ठा के प्रारम्भ से होता था। इस समय सूर्य का

---

[1]बृहत्संहिता, तृतीय अध्याय, आर्याएं 1-2।

दक्षिणायन कर्क राशि के प्रारम्भ से और उत्तरायण मकर के प्रारम्भ से शुरू होता है। ऐसा न हो तो विकार है और व्यक्ति को प्रत्यक्ष परीक्षण से ठीक मान ज्ञात करना चाहिए।"

ताराग्रहेन्दुपाता भ्रमन्त्यजस्रमपमण्डलेऽर्कश्च ।
अर्काच्च मण्डलार्धे भ्रमति हि तस्मिन् क्षितिच्छाया ॥२॥

अनुवाद—ताराग्रहों के पात, चन्द्रमा का पात एवं सूर्य सदा क्रान्तिमण्डल में घूमते हैं। सूर्य से आधे क्रान्तिमण्डल की दूरी पर उसी में पृथ्वी की छाया भी निश्चय घूमती है ॥2॥

सूर्य क्रान्तिमण्डल में घूमता है। परन्तु चन्द्रमा और ग्रहों के मार्ग इस पर झुके हुए हैं। इन कोणों के मान दशगीतिका की आर्या 6 में दिये हुए हैं। जिन बिन्दुओं पर इनके पथ क्रान्तिमण्डल से मिलते हैं उन्हें पात कहते हैं। इन स्थानों के जो मान आर्यभट के समय में थे उन्हें दशगीतिका, आर्या 7 में दिया गया है।

इस आर्या से स्पष्ट है कि आर्यभट के अनुसार चन्द्रमा और ग्रहों के पात क्रान्ति-मण्डल पर स्थिर नहीं हैं। वे चलायमान हैं।

इस सम्बन्ध में ब्रह्मगुप्त द्वारा आर्यभट की आलोचना तथा इस आलोचना के सम्बन्ध में पं० सुधाकर द्विवेदी जी की टिप्पणी का उल्लेख दशगीतिका की आर्या 7 की व्याख्या करते समय किया जा चुका है।

अपमण्डलस्य चन्द्रः पाताद्यात्युत्तरेण दक्षिणतः ।
कुजगुरुकोणाश्चैवं शीघ्रोच्चेनापि बुधशुक्रौ ॥३॥

अनुवाद—चन्द्रमा अपने पातों से क्रान्तिमण्डल के उत्तर और दक्षिण जाता है। इसी प्रकार मंगल, वृहस्पति तथा शनि भी उत्तर और दक्षिण जाते हैं परन्तु बुध और शुक्र अपने शीघ्रोच्च से उत्तर और दक्षिण जाते हैं ॥3॥

दशगीतिका की दूसरी आर्या में कहा गया है कि चन्द्रपात की गति विलोम है और एक महायुग में उसकी भगण संख्या 232226 है अर्थात् लगभग 18.60 वर्षों में वह क्रान्ति-मण्डल की एक परिक्रमा पूरी करता है। प्रथम पात से चन्द्रमा क्रान्तिमण्डल के उत्तर जाता है तथा द्वितीय पात से दक्षिण की ओर। प्रथम पात की स्थिति और स्फुटचन्द्र की स्थिति में जब अन्तर तीन राशि के तुल्य होता है तब चन्द्रमा का अधिकतम उत्तरीय विक्षेप और जब द्वितीय पात से तीन राशि पर स्फुटचन्द्र होता है तब अधिकतम दक्षिणी विक्षेप होता है।

इसी प्रकार मंगल, वृहस्पति तथा शनि का भी प्रथम पात से विक्षेप उत्तर की ओर तथा द्वितीय पात से दक्षिण की ओर होता है। इनके पातों की गति भी विलोम होती है और विक्षेप प्राप्त करने के लिए मन्दस्फुटग्रह और पात के बीच अन्तर प्राप्त किया जाता है। चन्द्रमा की तरह यह अन्तर भी जब तीन राशियों के तुल्य होता है तब अधिकतम उत्तरी या दक्षिणी विक्षेप होता है।

बुध और शुक्र के लिए शीघ्रोच्च में मन्दफल का संस्कार उलटा करके अर्थात् यदि मन्दफल ऋणात्मक हो तो शीघ्रोच्च में धनात्मक संस्कारकरके इसमन्दफलसंस्कृत शीघ्रोच्च में से पात को घटाकर विक्षेप प्राप्त करना चाहिए।

चन्द्रोंऽशैर्द्वादशभिरविक्षिप्तोऽर्कान्तरस्थितैर्दृश्यः ।
नवभिर्भृगुर्भृगोस्तैर्द्व्यधिकैर्द्व्यधिकैर्यथा श्लक्ष्णाः ॥४॥

अनुवाद—चन्द्रमा जब विक्षेप रहित होता है अर्थात् जब वह क्रान्तिमण्डल पर होता है तब सूर्य से 12 अंश की दूरी पर होने पर दिखायी देने लगता है। ऐसी ही स्थिति में शुक्र 9 अंश की दूरी पर दिखायी देने लगता है तथा अन्य ग्रह अपनी बढ़ती हुई क्षीणता के अनुसार दो दो अंश की अधिक दूरियों पर होने पर दिखायी देने लगते हैं ॥4॥

क्षीणता के लिए गीतिका पाद की पाँचवी आर्या में क्रम दिया है "भृगुगुरुबुधशनिभौमाः"। अतएव वृहस्पति 11 अंश पर, बुध 13 अंश पर, शनि 15 अंश पर तथा मंगल 17 अंश पर होने पर दिखायी देने लगते हैं।

भारतीय ज्योतिषियों ने चन्द्रमा और ग्रहों के दृश्यमान होने के लिये अंशों के जो मान दिये हैं वह नीचे दिये जाते हैं :

	चन्द्रमा	बुध	शुक्र	मंगल	वृहस्पति	शनि
आर्यभट, ब्रह्मगुप्त (खण्डखाद्यक), गणेश, श्रीपति	12	13	9	17	11	15
सूर्यसिद्धान्त, लल्ल, भास्कर द्वितीय	12	14 (मार्गी) 12 (वक्री)	10 (मार्गी) 8 (वक्री)	17	11	15
मुंजाल	12	13	8	16	11	15

ब्रह्मगुप्त ने भी कहा है कि शुक्र का उदय पश्चिम में दश कालांश पर होता है तथा

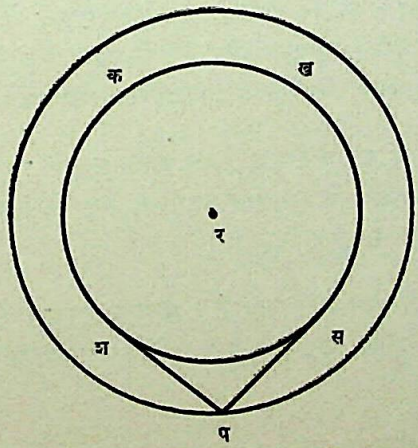

आकृति 4.1

पूर्व दिशा में शुक्र दश कालांश पर अस्त होता है। आकृति (4.1) में श वह स्थिति है जब

शुक्र पश्चिम में सूर्य से अधिकतम कोणिक दूरी पर होता है। ऐसे ही स' पूर्व में वह स्थिति है जब शुक्र पूर्व में सूर्य से अधिकतम दूरी पर होता है। श तथा स के बीच वह पहले पश्चिम में अस्त फिर पूर्व में उदित होता है। क और ख वे स्थितियाँ हैं जब वह क्रमशः पश्चिम में उदय तथा पूर्व में अस्त होता है। स्पष्ट है कि क एवं ख स्थितियों में शुक्र पृथ्वी से बहुत दूर होता है अतएव उसका बिम्ब बहुत छोटा प्रतीत होता है। इन स्थितियों में कालांश अधिक होता है। ख से क तक शुक्र मार्गी तथा श से स' तक वक्री होता है।

आर्यभट की आलोचना करते हुए ब्रह्मगुप्त ने लिखा है :[1]

"आर्यभटः क्षेत्रांशैर्दृश्यादृश्यान् यदुक्तवांस्तदसत्।
दृग्गणितविसंवादाद् दृग्गणितैक्यं स्वकालांशैः॥

अर्थात् ग्रहों के दृश्यमान एवं अदृश्य होने के लिए आर्यभट ने जो क्षेत्रांश का उपयोग किया है वह ठीक नहीं है क्योंकि उससे दृश्यता एवं गणित का मेल नहीं खाता। दृग्गणितैक्य के लिए कालांश का उपयोग करना चाहिए।"

भूग्रहमानां गोलार्धानि स्वच्छायया विवर्णानि।
अर्धानि यथासारं सूर्याभिमुखानि दीप्यन्ते ॥५॥

पृथ्वी, चन्द्रमा, बुध, शुक्र आदि ग्रह एवं तारापुञ्जों के गोलों के आधे भाग अपनी छायाओं के कारण अन्धकारमय होते हैं। जो आधे भाग सूर्य के सम्मुख होते हैं वे अपने आकार के अनुसार प्रकाशित होते हैं ॥5॥

चन्द्रमा, बुध आदि में अपना प्रकाश नहीं होता। वे सूर्य द्वारा प्रकाशित होते हैं। उनसे परावर्तित प्रकाश द्वारा वे हमें दिखायी देते हैं। उनका जो प्रकाशित भाग हमारी दृष्टि में आता है उतना भाग हम देख पाते हैं। अमावस्या के दिन चन्द्रमा का प्रकाशित भाग हमसे दूसरी ओर होता है क्योंकि चन्द्रमा, पृथ्वी और सूर्य के बीच में होता है। इसके विपरीत पूर्णमासी के दिन पृथ्वी, चन्द्रमा और सूर्य के बीच में होती है और चन्द्रमा सूर्य के ठीक सामने होता है और उसका प्रकाशित भाग हमें दिखायी पड़ता है।

नीलकण्ठ ने अपने भाष्य में लिखा है कि शुक्ल पक्ष के प्रथमार्ध में चन्द्रमा के प्रकाशित भाग की चौड़ाई उत्क्रमज्या के अनुसार बढ़ती है तथा द्वितीयार्ध में क्रमज्या के अनुसार बढ़ती है। इससे उसका गोलत्व सिद्ध है।[2]

बुध एवं शुक्र सूर्य के समीप ही रहते हैं। अतएव चन्द्रमा की तरह उनकी कलाएँ ही हमें दिखायी पड़ती हैं। चूँकि चन्द्रमा अपनी धुरी पर उतने ही दिनों में घूमता है जितने

---

[1]ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त, उदयास्ताधिकार, आर्या 12।
[2]नीलकंठकृत आर्यभटीय भाष्य, भाग 3, पृ. 17।

दिनों में वह पृथ्वी की एक परिक्रमा करता है अतएव हमें सर्वदा उसका एकही भाग दिखाई पड़ता है।

प्राचीन ज्योतिषियों का यह विचार कि तारापुञ्ज भी सूर्य के ही प्रकाश से प्रकाशित होते हैं ठीक नहीं था। अब हम जानते हैं कि तारा गण भी सूर्य की तरह स्वयंप्रभ हैं। सूर्य भी एक तारा ही है जो अन्य तारों की अपेक्षा हमारे बहुत समीप है।

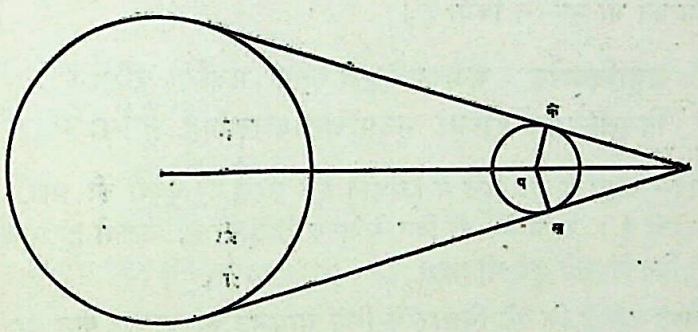

आकृति 4.2

यद्यपि यह ठीक नहीं है कि ग्रहों का केवल आधा भाग ही सूर्य द्वारा प्रकाशित होता है, अन्तर बहुत कम होता है। उदाहरण के लिए पृथ्वी के लिए बाह्य कोण क प ख लगभग 180° 30' ही होता है।

वृत्तभपञ्जरमध्ये कक्ष्यापरिवेष्टितः खमध्यगतः।
मृज्जलशिखिवायुमयो भूगोलः सर्वतो वृत्तः ॥६॥
यद्वत् कदम्बपुष्पग्रन्थिः प्रचितः समन्ततः कुसुमैः।
तद्वद्धि सर्वसत्त्वैर्जलजैः स्थलजैश्च भूगोलः ॥७॥

अनुवाद—वृत्ताकार नक्षत्रमण्डल के मध्य में, ग्रहों की कक्ष्याओं से परिवेष्टित आकाश के मध्य में पृथ्वी का गोला स्थित है। यह चारों ओर से गोल है अर्थात् दर्पण आदि की भाँति गोल नहीं है, गेंद की भाँति गोल है। यह मिट्टी, जल, अग्नि एवं वायु मय है ॥6॥

जिस प्रकार कदम्ब के फूल की ग्रन्थि चारों ओर से छोटे कुसुमों से व्याप्त रहती है उसी प्रकार पृथ्वी का गोला जल में अथवा स्थल पर पैदा होने वाले सब प्राणियों से व्याप्त है ॥7॥

खमध्य में स्थित होने का यह अर्थ है कि पृथ्वी किसी आधार पर स्थित नहीं है अपितु निराधार है।

पृथ्वी का लगभग ऐसा ही वर्णन अन्य आचार्यों ने भी किया है। आचार्य वराहमिहिर कहते हैं[1]:

[1]पञ्चसिद्धान्तिका, त्रयोदश अध्याय, आर्या 1।

"पञ्चमहाभूतमयस्तारागणपञ्जरे महीगोलः ।
खेऽयस्कान्तान्तःस्थो लोह इवावस्थितो वृत्तः ॥"

अर्थात् पृथ्वी का गोला जो पञ्चमहाभूतों का बना है आकाश में तारामंडल के मध्य में वैसे ही स्थित है जैसे लोहे का टुकड़ा चुम्बकों के बीच में (निराधार) स्थित रह सकता है।

आर्यभट ने पृथ्वी को केवल चार महाभूतमय कहा है परन्तु वराहमिहिर ने पाँचवें महाभूत आकाश का भी उल्लेख किया है।

ब्रह्मदिवसेन भूमेरुपरिष्टाद्योजनं भवति वृद्धिः ।
दिनतुल्ययैव रात्र्या मृदूपचितायास्तदिह हानिः ॥८॥

अनुवाद—ब्रह्मा के एक दिन में (अर्थात् एक कल्प में) पृथ्वी की चारों ओर एक योजन वृद्धि होती है। रात्रि में, जो दिन के तुल्य ही होती है, उतनी ही पृथ्वी की हानि होती है जितनी दिन में बढ़ी हुई थी ॥8॥

यह स्पष्ट नहीं है कि ऐसे विचार के लिए आर्यभट का आधार क्या था।

अनुलोमगतिर्नौस्थः पश्यत्यचलं विलोमगं यद्वत् ।
अचलानि भानि तद्वत् समपश्चिमगानि लङ्कायाम् ॥९।
उदयास्तमयनिमित्तं नित्यं प्रवहेण वायुना क्षिप्तः ।
लङ्कासमपश्चिमगो भपञ्जरः सग्रहो भ्रमति ॥१०॥

अनुवाद—जैसे नाव में बैठा हुआ कोई मनुष्य जब पूर्व दिशा में जाता है तब तीर की अचल वस्तुओं को उलटी दिशा में जाता हुआ अनुभव करता है उसी तरह अचल तारागण लंका में पश्चिम की ओर जाते प्रतीत होते हैं। (अतएव ऐसा प्रतीत होता है कि) तारामण्डल तथा ग्रहों के उदय तथा अस्त के लिए वे नित्य ही प्रवह वायु द्वारा चलाये जाकर लंका में ठीक पश्चिम दिशा में भ्रमण कर रहे हैं ॥9-10॥

इन आर्याओं से स्पष्ट है कि आर्यभट यह मानते थे कि पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती है और तारामण्डल स्थिर है। इस सम्बन्ध में विभिन्न आचार्यों की आलोचनाओं का उल्लेख गीतिकापाद में किया जा चुका है। भट्टोत्पल ने अन्य आचार्यों के मतों का उल्लेख करते हुए ऊपर की पहली आर्या के विरुद्ध दूसरी आर्या का उल्लेख किया है। परन्तु भास्कर द्वितीय के सिद्धान्तशिरोमणि के भगणाध्याय के प्रथम छः श्लोकों के वासनावार्त्तिक में नृसिंह ने कहा है[1] : "आर्यभटास्तु ग्रहाः पूर्वस्यां यान्ति। नक्षत्राणि तु स्थिराण्येव भूरेव नाक्षत्रदिनमध्ये पूर्वाभिमुखमेकवारं भ्रमति। तेनैव नक्षत्रग्रहाणामुदयास्तौ पूर्वपश्चिमयोर्घटतः। प्रवहानिलकल्पना व्यर्था।"

---

[1]पं० मुरलीधर झा द्वारा संपादित वासनाभाष्य, वासनावार्त्तिक तथा मरीचि सहित सिद्धान्तशिरोमणि का मध्यमधिकार, पृ० 113।

अर्थात् ग्रह पूर्व की ओर जाते हैं। आर्यभट के अनुसार नक्षत्रगण स्थिर ही हैं, पृथ्वी ही एक नाक्षत्रदिन में पूर्व की ओर एक बार घूमती है। इसी कारण नक्षत्रों तथा ग्रहों का उदय एवं अस्त क्रमशः पूर्व और पश्चिम में होता है। प्रवह वायु की कल्पना व्यर्थ है।

इसके पश्चात् प्रमाण रूप में आर्यभट की उपर्युक्त प्रथम आर्या को उद्धृत किया गया है।

कोलब्रुक ने ब्रह्मगुप्त के भाष्यकार पृथूदकस्वामी द्वारा उद्धृत की गई आर्यभट की एक आर्या को उद्धृत किया है[1]।

"भपञ्जरः स्थिरो भूरेवावृत्यावृत्य प्रातिदैवसिकौ।
उदयास्तमयौ सम्पादयति नक्षत्रग्रहाणाम् ॥"

यह आर्या कदाचित् पृथूदकस्वामी ने आर्यभट के दूसरे ग्रन्थ से उद्धृत की है जो अब प्राप्य नहीं है। इसमें स्पष्ट रूप से आर्यभट ने कहा है कि तारामण्डल स्थिर है और पृथ्वी अपनी दैनिक घूमने की गति से नक्षत्रों तथा ग्रहों का उदय और अस्त करती है।

मेरुर्योजनमात्रः प्रभाकरो हिमवता परिक्षिप्तः ।
नन्दनवनस्य मध्ये रत्नमयः सर्वतोवृत्तः ॥११॥
स्वर्मेरू स्थलमध्ये नरको बडवामुखश्च जलमध्ये ।
अमरमरा मन्यन्ते परस्परमधःस्थितान्नियतम् ॥१२॥

अनुवाद—नन्दन वन के मध्य में, सब तरफ से गोल, रत्नमय होने के कारण प्रभावान् हिमालय पर्वत से सब ओर से घिरा हुआ मेरु है जो एक योजन ऊँचा और इतने ही विस्तार वाला है ॥11॥

स्थल के मध्य में मेरु के ऊपर स्वर्ग है तथा जल के मध्य में बडवामुख नरक है। (स्वर्ग में देवता और नरक में दैत्य निवास करते हैं) वे एक दूसरे को नीचे अवस्थित मानते हैं ॥12॥

उदयो यो लङ्कायां सोऽस्तमयः सवितुरेव सिद्धपुरे ।
मध्याह्नो यवकोट्यां रोमकविषयेऽर्धरात्रः स्यात् ॥१३॥
स्थलजलमध्याल्लङ्का भूकक्ष्याया भवेच्चतुर्भागे ।
उज्जयिनी लङ्कायास्तच्चतुरंशे समोत्तरतः ॥१४॥

अनुवाद—जब लंका में सूर्योदय होता है उस समय सिद्धपुर में सूर्यास्त होता है। उसी समय यवकोटि में दोपहर तथा रोमक में आधी रात होती है ॥13॥

---

[2]कोलब्रुक, मिसलेनियस एसेज, भाग 2, पृ० 392।

स्थल और जल के बीच में अर्थात् मेरु तथा वडवामुख के मध्य में पृथ्वी की कक्ष्या के चतुर्थ भाग अर्थात् मेरु एवं बडवामुख से 90 अंश क्रमशः दक्षिण और उत्तर में लंका नगरी है। उसके चौथाई भाग पर अर्थात् 22½ अंश पर लंका से ठीक उत्तर दिशा में उज्जयिनी है ॥14॥

भारतीय ज्योतिषियों के अनुसार लंका तथा सिद्धपुर एक ही याम्योत्तर रेखा पर पृथ्वी के धरातल पर आमने-सामने हैं। अतएव दोनों के समयों में 12 घण्टे का अन्तर होता है। एक पर जब सूर्योदय तब दूसरे पर सूर्यास्त और एक पर जब दोपहर तब दूसरे पर अर्धरात्रि होती है। यवकोटि लंका से 90 अंश पूर्व तथा रोमक लंका से 90 अंश पश्चिम में है और लंका से इनका समयान्तर 6 घण्टे का होता है।

नीलकंठ ने अपने भाष्य में 'तच्चतुरंशे' के स्थान पर 'पञ्चदशांशे' पाठ दिया है[1]। इसके अनुसार उज्जैन का अक्षांश 24 होना चाहिए। परन्तु 'तच्चतुरंशे' पाठ अधिक शुद्ध प्रतीत होता है। अल्बिरूनी ने अपने ग्रन्थ इण्डिका में कहा है[2] कि "याक़ूब इब्न तारिक ने अल् अर्कन्द के प्रमाण पर उज्जैन का अक्षांश 4⅔ कहा है। परन्तु उज्जैन तथा अल् मंसूर के बीच की दूरी की गणना करने में हमने उसी पुस्तक में उज्जैन के अक्षांश का एक अन्य ही मान पाया है, अर्थात् उज्जैन का अक्षांश 22° 29' है।" यद्यपि कुछ लोग मानते हैं कि अल् अर्कन्द खण्डखाद्यक है किन्तु मेरा विचार है कि अल् अर्कन्द आर्यभटीय है क्योंकि अल् बिरूनी ने कहा है कि अल् अर्कन्द के अनुसार पृथ्वी का व्यास 1050 योजन है। यह मान केवल आर्यभटीय में दिया है[3]। भास्कर प्रथम तथा सोमेश्वर ने तच्चतुरंशे पाठ ठीक माना है।

आर्यभट की आलोचना करते हुए ब्रह्मगुप्त ने कहा है[4] :

"सूर्यादयश्चतुर्था दिनवारा यदुवाच तदसदार्यभटः।
लङ्कोदये यतोऽर्कस्यास्तमयं प्राह सिद्धपुरे ॥"

इसके अर्थ का तथा इसके सम्बन्ध में महामहोपाध्याय सुधाकर जी द्विवेदी की टिप्पणी का उल्लेख किया जा चुका है।

भूव्यासार्धेनोनं दृश्यं देशात्समाद्भगोलार्धम्।
अर्धं भूमिच्छन्नं भूव्यासार्धाधिकं चैव ॥१५॥

अनुवाद—किसी समभूमि से नक्षत्रों का गोलार्ध पूरा नहीं दिखाई देता, पृथ्वी के व्यासार्ध से हीन भाग ही दिखाई देता है। पृथ्वी द्वारा छिपे गोलार्ध का मान आधे से पृथ्वी के व्यासार्ध के तुल्य अधिक होता है ॥15॥

---

[1]नीलकंठ कृत आर्यभटीय भाष्य, भाग 3, पृ० 28।
[2]सखाऊ का अनुवाद, भाग, 1, पृ० 316।
[3]वही, पृ० 312।
[4]ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त, तंत्रपरीक्षाध्याय, आर्या 12।

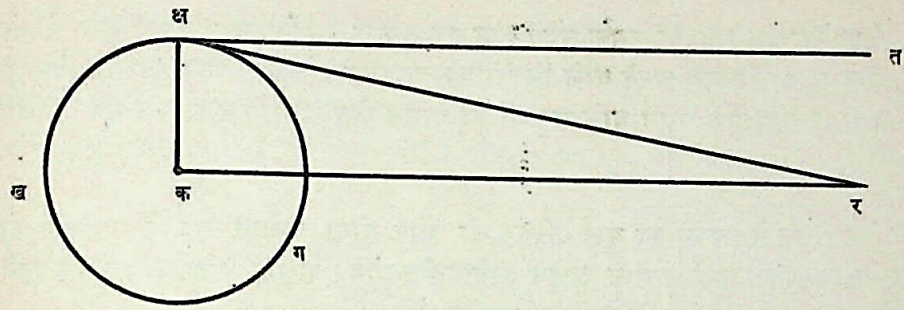

आकृति 4.3

आकृति (4.3) में ख ग क्ष पृथ्वी का धरातल है। किसी बिन्दु क्ष पर स्थित मनुष्य को केवल वही भाग दिखाई पड़ता है जो उसके क्षितिज में है। यदि क पृथ्वी का केन्द्र है और र आकाश में कोई पिण्ड है तो क्ष स्थित मनुष्य को आकृति में दिखाई स्थिति में र दिखाई नहीं देगा यद्यपि क र रेखा क्ष के क्षितिज के समान्तर है। यदि आकृति को क क्ष रेखा के चतुर्दिक् घुमायें तो क्ष पर क्ष र एवं क्ष त रेखाओं के बीच जो ठोस कोण बनेगा वही क्ष से दिख सकने वाले गोलार्ध में कमी का मापक होगा।

परन्तु वास्तव में यह कोण बहुत न्यून है। यदि क से र पर स्थित पिंड की दूरी द और पृथ्वी का व्यास व है तो कोण क र क्ष का मान

$$< \text{क र क्ष} = \frac{\text{व} \times 3438}{2\,\text{द}} \text{ मिनट।}$$

भास्कर प्रथम के अनुसार व = 1050 योजन तथा सूर्य के लिए द = 459585 योजन है। अतएव सूर्य के लिए < क र क्ष = 3.93′ अथवा लगभग 4′ है। पृथ्वी के व्यास तथा सूर्य की दूरी के आधुनिक मानों के अनुसार < क र क्ष = 8.9″ है। तारों के लिए तो यह कोण बिल्कुल ही नगण्य है।

नीलकण्ठ का कहना है कि सूर्य के उदय काल में 4 असु जोड़ना चाहिए और अस्त-काल में से इतना ही घटाना चाहिए और ग्रहों की सूर्योदयकालिक अथवा सूर्यास्तकालिक स्थिति प्राप्त करने के लिए इस काल को ध्यान में रखना चाहिए[1]। आर्यभट ने दशगीतिका में कहा है कि पृथ्वी एक प्राण (असु) में एक कला घूमती है।

देवाः पश्यन्ति भगोलार्धमुदङ्मेरुसंस्थिताः सव्यम्।
अपसव्यगं तथार्धं दक्षिणबडवामुखे प्रेताः ॥१६॥
रविवर्षार्धं देवाः पश्यन्त्युदितं रविं तथा प्रेताः।
शशिमासार्धं पितरः शशिगाः कुदिनार्धमिह मनुजाः ॥१७॥

अनुवाद—उत्तर में मेरु पर रहने वाले देवताओं को नक्षत्रमण्डल का उत्तरी गोलार्ध बायें से दायीं ओर घूमता हुआ दिखता है और दक्षिण में बडवामुख पर रहने वाले प्रेतों को नक्षत्रमण्डल का दक्षिणी गोलार्ध दायीं ओर से बायीं ओर घूमता दिखता है ॥16॥

[1]नीलकंठ कृत आर्यभटीय भाष्य, भाग 3, पृ. 31।

देव तथा प्रेत सूर्य को उसके उदय होने पर सूर्य के वर्ष के आधे काल तक देखते रहते हैं, चन्द्रमा पर निवास करने वाले पितरों को चान्द्र मास के आधे काल तक सूर्य दिखाई देता है तथा पृथ्वी पर रहने वाले मनुष्यों को सावन दिन के आधे काल तक सूर्य दिखाई देता है ॥17॥

मेरु स्थित देवताओं का मुख दक्षिण की ओर होगा अतएव पूर्व से पश्चिम को जाते हुए नक्षत्रमण्डल उन्हें बायें से दाहिने जाते प्रतीत होंगे। दक्षिण में बडवामुख पर रहने वालों को नक्षत्रमण्डल दाहिने से बायें जाते प्रतीत होंगे।

वसन्त सम्पात के पश्चात् सूर्य विषुवत् रेखा के उत्तर आता है। तब वह मेरु निवासी देवताओं को क्षितिज पर उदित दिखाई देगा और बायें से दायें घूमता दिखेगा। धीरे धीरे वह क्षितिज से ऊपर उठेगा और तीन सौर मास पश्चात् अधिकतम ऊँचाई को प्राप्त करेगा। इसके पश्चात् उसकी ऊँचाई धीरे-धीरे कम होगी और शरद् सम्पात पर वह अस्त हो जायेगा। इसके विपरीत बडवामुख पर रहने वालों को वह शरद् सम्पात से वसन्त सम्पात तक दिखाई देगा।

ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त के गोलाध्याय की आठवीं आर्या के भाष्य में पृथूदक स्वामी ने लिखा है कि पितरों के लिए सूर्योदय मनुष्यों की कृष्ण पक्ष की अष्टमी के आधे पर होगा और सूर्यास्त शुक्ल पक्ष की अष्टमी के आधे पर होगा। इससे प्रतीत होता है कि भारतीय ज्योतिषियों की यह धारणा थी कि पितर लोग चन्द्रमा के उस भाग पर निवास करते हैं जो पृथ्वी के ठीक सामने है। वे यह भी जानते थे कि चन्द्रमा के अपनी धुरी पर घूमने का काल वही है जो पृथ्वी के चारों ओर एक परिक्रमा करने का काल है। (इस सम्बन्ध में कालक्रियापाद की सातवीं आर्या भी देखें)।

पूर्वापरमधऊर्ध्वं मण्डलमथ दक्षिणोत्तरञ्चैव।
क्षितिजं समपार्श्वस्थं भानां यत्रोदयास्तमयौ ॥१८॥

पूर्वापरदिग्लग्नं क्षितिजादक्षाग्रयोश्च लग्नं यत्।
उन्मण्डलं भवेत्तत् क्षयवृद्धी यत्र दिवसनिशोः ॥१९॥

अनुवाद—पूर्व बिन्दु से पश्चिम बिन्दु तक ऊर्ध्वाधर दिशा में जाता हुआ जो समतल है उसे सममण्डल और ऐसे ही दक्षिण से उत्तर की ओर जाता हुआ जो समतल है उसे याम्योत्तर मण्डल अथवा याम्योत्तर वृत्त कहते हैं। (इस याम्योत्तर वृत्त से पूर्व कपाल एवं अपर कपाल का विभाजन होता है। इसी से नत एवं उन्नत का भी विभाजन होता है।) पृथ्वी से लगा हुआ जो चारों ओर समतल है उसे क्षितिज कहते हैं जहाँ नक्षत्रों का तथा ग्रहों का उदय तथा अस्त होता है। (पूर्वार्ध में वे उदय एवं पश्चिमार्ध में अस्त होते हैं)॥18॥

वह समतल, जो पूर्व एवं पश्चिम बिन्दुओं से और उन दो बिन्दुओं से जो याम्योत्तर वृत पर क्षितिज से किसी स्थान के आक्षांश के तुल्य ऊपर तथा नीचे, हैं अर्थात् उत्तरी एवं दक्षिणी ध्रुवों से गुजरता है, उन्मण्डल कहलाता है। इससे ही दिन रात की क्षीणता तथा वृद्धि प्राप्त की जाती है। (यह वृत लंका के क्षितिज का वृत है) ॥19॥

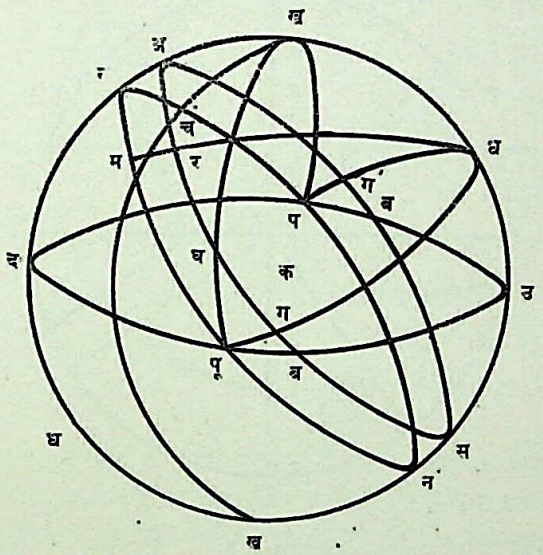

आकृति 4.4

आकृति (4.4) में क बिन्दु पर प्रेक्षक है न पू न' प नाडीमण्डल है, द पू उ प क्षितिज है, पू पूर्व बिन्दु तथा प पश्चिम बिन्दु हैं, ख शिरोबिन्दु अथवा खमध्य है, ख' अधोविन्दु है, पू ख प ख' सममण्डल, ख न द ध' ख' न' उ ध याम्योत्तर वृत है, ध एवं ध' क्रमशः उत्तरी तथा दक्षिणी ध्रुव हैं और पू ध प ध' उन्मण्डल है।

आकृति में अ ब स ब' सूर्य के किसी दिन के आकाशीय पथ को दर्शाता है जब सूर्य विषुवत् रेखा के उत्तर में होता है। यह सूर्य का अहोरात्र वृत्त है। जब सूर्य ब विन्दु पर आता है तब सूर्योदय तथा जब ब' पर पहुँचता है तब सूर्यास्त होता है। ब ब' रेखा उदयास्त सूत्र है।

पूर्वापरदिग्रेखाधश्चोर्ध्वा दक्षिणोत्तरस्था च।
एतासां सम्पातो द्रष्टा यस्मिन् भवेद् देशे ॥२०॥

अनुवाद—पूर्वापर सूत्र अर्थात् पूर्व एवं पश्चिम बिन्दुओं को मिलाने वाली रेखा, शिरोबिन्दु तथा अधोबिन्दु को मिलाने वाली रेखा और दक्षिणोत्तर रेखा का सम्पात वहाँ होता है जहाँ प्रेक्षक होता है ॥20॥

आकृति (4.4) में पू प रेखा पूर्वापर सूत्र, ख ख′ रेखा शिरोविन्दु तथा अधोविन्दु के बीच एवं उ द दक्षिणोत्तर रेखाएँ हैं। ये तीनों रेखाएँ क विन्दु पर, जहाँ द्रष्टा है, एक दूसरे को काटती हैं।

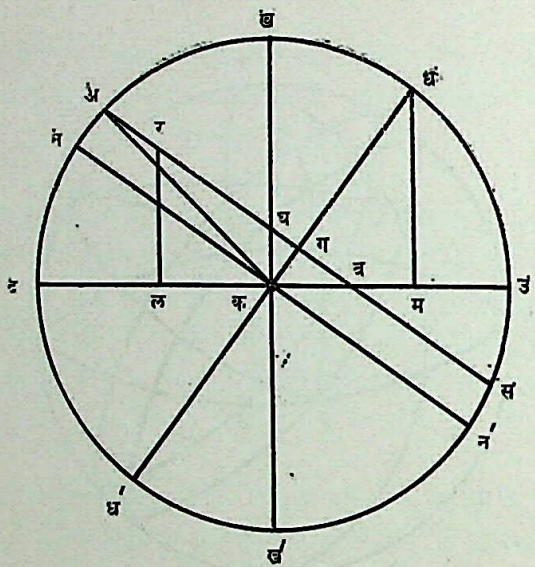

आकृति 4.5

यदि पिछली आकृतिकी सभी रेखाओं को याम्योत्तर वृत्त के समतल पर प्रक्षिप्त किया जाय तो ऊपर दी हुई आकृति (4.5) प्राप्त होगी। इसमें क बिन्दु पर ही पू एवं प विन्दु प्रक्षिप्त होकर पड़ते हैं। द उ क्षितिज का व्यास, न न′ नाडीमण्डल का व्यास, ध ध′ उन्मण्डल का व्यास तथा ख ख′ सममण्डल का व्यास हैं। ये सभी रेखाएँ क बिन्दु पर मिलती हैं। अ स सूर्य के अहोरात्र वृत्त का व्यास है। इसे द्युज्या कहते हैं। यह क्षितिज के व्यास को व पर तथा उन्मण्डल के व्यास को ग पर काटता है।

उर्ध्वमधस्ताद् द्रष्टुर्ज्ञेयं दृङ्मण्डलं ग्रहाभिमुखम्।
दृक्क्षेपमण्डलमपि प्राग्लग्नं स्यात् त्रिराश्यूनम् ॥२१॥

अनुवाद—जो वृत्त द्रष्टा के शिरोविन्दु एवं अधोविन्दु से तथा किसी ग्रह की स्थिति से होकर गुजरता है, दृङ्मण्डल कहलाता है। जो ऊर्ध्वाधर वृत्त द्रष्टा से तथा वित्रिभ से गुजरता है वह दृक्क्षेपमण्डल कहलाता है। क्रान्तिवृत्त का जो बिन्दु पूर्वी क्षितिज पर होता है उसे लग्न कहते हैं। वित्रिभ क्रान्तिवृत्त का वह बिन्दु है जो लग्न से तीन राशि कम है। (वि=विहीन, त्रि=तीन, भ=राशि) ॥21॥

आकृति (4.4) में च बिन्दु पर कोई ग्रह है। इससे तथा ख एवं ख' बिन्दुओं से गुजरता हुआ एक वृत्तार्ध खींचा गया है। यह दृङ्मण्डल का अर्धभाग है।

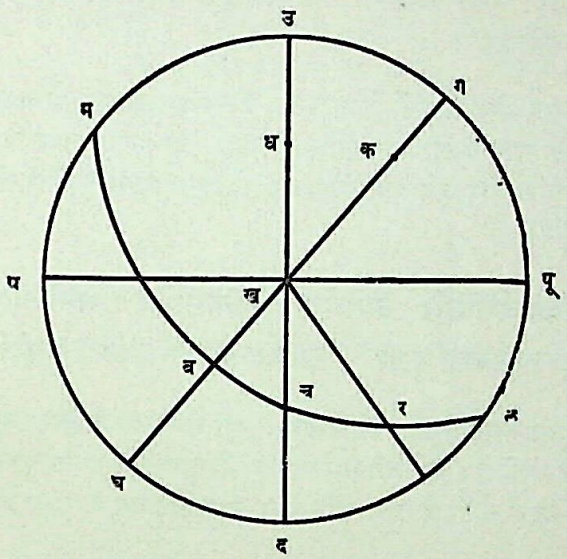

आकृति 4.6

आकृति (4.6) में उ प द पू क्षैतिज वृत्त है। उ द इस पर याम्योत्तर वृत्त का प्रक्षेप तथा प पू रेखा इस पर सममण्डल का प्रक्षेप है। म ब ल क्रान्तिमण्डल है। क कदम्ब है जिसकी दूरी क्रान्तिमण्डल के प्रत्येक बिन्दु से 90 अंश है। क्रान्तिमण्डल का ल बिन्दु पूर्वी क्षितिज पर है। यही लग्न है। ग घ रेखा क एवं ख बिन्दुओं से गुजरने वाले ऊर्ध्वाधर वृत्त का प्रक्षिप्त है। यह क्रान्तिमण्डल को ब बिन्दु पर काटती है। ब विषुभ है। ल से एवं म से इसकी दूरी तीन राशियाँ हैं। क्रान्तिमण्डल का म बिन्दु अस्त हो रहा है। बिन्दु ध उत्तर-दक्षिण रेखा उ द पर ध्रुव का प्रक्षिप्त है।

काष्ठमयं समवृत्तं समन्ततः समगुरुं लघुं गोलम्।
पारततैलजलैस्तं भ्रमयेत् स्वधिया च कालसमम् ॥२२॥

अनुवाद—काष्ठ अथवा अन्य हल्की वस्तु का गोला बनावे जो पूर्णतः सब ओर से वृत्ताकार हो, और एक ही भार का हो तथा हल्का हो। इसे पारा, तेल तथा जल की सहायता से अपनी बुद्धि लगाकर काल के व्यतीत होने के अनुपात में घुमाना चाहिए ॥22॥

परमेश्वर ने कहा है[1] कि दो स्तम्भों में लगी शलाकाओं को ऐसे गोले के दोनों आमने सामने के बिन्दुओं पर बने हुए छिद्रों में घुसा कर स्तम्भों के बीच रखना चाहिए। फिर इसकी परिधि के चारों ओर सूत्र लपेटकर उस सूत्र को एक पारा से भरी अलाबु (सूखी लौकी का कमण्डल) से बाँधना चाहिए। इस अलाबु को जल से भरे नल में स्थापित करना

[1]आर्यभटीय भाष्य, पृ. 84।

चाहिए। नल ऊर्ध्वाधर हो और इसके निचले भाग में एक छोटा छिद्र हो। ज्यों-ज्यों जल के कम होने से अलाबु नीचे जायगा वैसे वैसे उसके द्वारा आकृष्ट होकर गोला घूमेगा। यदि छिद्र को इतना बड़ा रखा जाय कि तीस घटियों में गोला आधा घूम जाय तो इस यंत्र से समय की माप हो सकती है।

गोले का सब ओर से एक ही भार का होना इस कारण आवश्यक है कि ऐसा न होने पर जब अधिक भार वाला भाग नीचे की ओर जा रहा होगा उस समय गोला स्वतः तेज़ी से घूम जाएगा और जब वह ऊपर उठ रहा होगा तब सूत्र से खींचे जाने पर भी हो सकता है कि न घूमे।

दृग्गोलार्धकपाले ज्यार्धेन विकल्पयेद् भगोलार्धम्।
विषुवज्जीवाक्षभुजा तस्यास्त्ववलम्बकः कोटिः ॥२३॥

अनुवाद—दृश्य गोलार्ध भाग में अक्षज्या एवं लम्बज्या के द्वारा नक्षत्रमण्डलीय गोलार्ध की कल्पना करनी चाहिए। अक्षज्या खमध्य एवं विषुवस्थित मध्याह्नकालिक रवि के बीच के कोण की ज्या के तुल्य होती है तथा अभिलम्ब अक्षकोटिज्या के तुल्य होता है ॥23॥

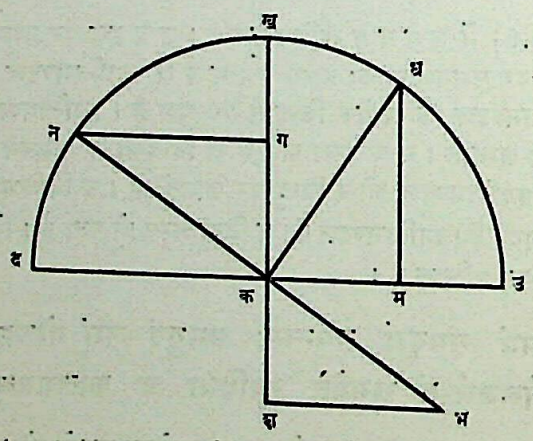

आकृति 4.7

आकृति (4.7) में दृग्गोलार्ध खींचा गया है। इसमें क दृष्टा की स्थिति, ख खमध्य, उ एवं द क्रमशः उत्तर दक्षिण दिशाएँ, ध ध्रुव तथा न क विषुवत् रेखा हैं। क श शंकु है तथा श भ उसकी छाया है।

वसन्त सम्पात के दिन अथवा शरद् सम्पात के दिन जब सूर्य विषुवत् रेखा पर होता है तब उसकी मध्याह्नकालिक स्थिति न पर होती है। उस समय कोण न क ख सूर्य का नतांश है जिसका चाप न ख है। इसकी अर्धज्या न ग है। यह अक्षांशज्या ध म के तुल्य है क्योंकि कोण न क ख कोण ध क उ के तुल्य है और कोण ध क उ द्रष्टा की स्थिति का अक्षांश है। इसी प्रकार ग क रेखा क म रेखा के तुल्य है जो अक्षांश कोटिज्या है।

इस दिन की शंकु मध्याह्नकालिक छाया श भ को पलभा कहते हैं। शंकु की छाया से किसी भी समय सूर्य का नतांश ज्ञात किया जा सकता है। उदाहरणतः ऊपर के चित्र में छाया श भ को त्रिज्या न क से गुणा करके छायाकर्ण क भ से विभाजित करें तो न ग का मान प्राप्त होगा जो चाप न ख की अर्धज्या है। छाया कर्ण क भ का मान गणितपाद की आर्या 14 से ज्ञात किया जा सकता है।

आकृति (4.7) में श भ भुजा और क श कोटि हैं। इसी प्रकार न ग भुजा तथा ग क कोटि हैं।

इष्टापक्रमवर्गं व्यासार्धकृतेर्विशोध्य यन्मूलम्।
विषुवदुदग्दक्षिणतस्तदहोरात्रार्धविष्कम्भः ॥२४॥

अनुवाद—इष्ट अपक्रमज्या के वर्ग को त्रिज्या के वर्ग में से घटाकर जो शेष हो उसका वर्गमूल विषुवत् वृत्त के उत्तर अथवा दक्षिण में अहोरात्र वृत्त का अर्धव्यास होता है। इसे द्युज्या भी कहते हैं ॥24॥
अर्थात्

अहोरात्र वृत्त का व्यासार्ध अथवा द्युज्या $= \sqrt{\text{त्रिज्या}^2 - (\text{इष्टक्रान्तिज्या})^2}$

आकृति (4.5) में न अ चाप क्रान्ति है। इसकी ज्या क ग के तुल्य है। ग अ द्युज्या है और

$$\text{ग अ}^2 = \text{क अ}^2 - \text{क ग}^2 ।$$

अतएव $\text{ग अ} = \sqrt{\text{क अ}^2 - \text{क ग}^2},$

$$= \sqrt{\text{त्रिज्या}^2 - \text{इष्टक्रान्तिज्या}^2},$$

$$= \text{इष्टक्रान्तिकोटिज्या} ।$$

इष्टज्यागुणितमहोरात्रव्यासार्धमेव काष्ठान्त्यम्।
स्वाहोरात्रार्धहृतफलमजाल्लङ्कोदयप्राग्ज्या ॥२५॥

अनुवाद—परम अपक्रम वाले अहोरात्र व्यासार्ध को क्रान्तिमण्डल पर सूर्य की स्थिति की (अर्थात् सायन मेष से सूर्य की स्थिति की) ज्या से गुणा करो तथा गुणनफल को उस इष्ट अहोरात्र के व्यासार्ध से भाग दो तो फल लंका के अक्षांश पर मेष से उस चाप के उदय काल की ज्या होगा ॥25॥

यदि परम अपक्रम का मान ϵ है, सायन मेष से इष्ट बिन्दु तक चाप का मान λ है तथा उस बिन्दु का (अर्थात् सायन मेष से λ दूरी का) अपक्रम δ है तो

$$\text{उदयकाल की ज्या} = \frac{\text{कोटिज्या } \in \times \text{ज्या } \lambda}{\text{कोटिज्या } \delta}\text{ ।}$$

उपपत्ति :

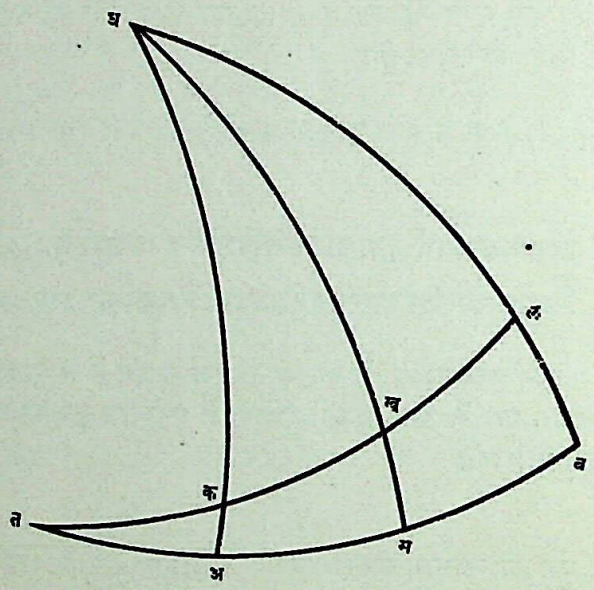

आकृति 4.8

आकृति (4.8) में न अ त्र नाड़ीमण्डल तथा न क ल क्रान्तिमण्डल हैं। ब ल चाप अधिकतम अपक्रम की चाप है अर्थात् न ब एवं न ल चापों का मान 90° है। ध ध्रुव है और ध क अ एवं ध ल ब ध्रुवपोत अर्थात् ध्रुव से विषुवत् रेखा तक खींचे गये चापखण्ड हैं। अतः कोण न अ क=कोण न ब ल=90°। क्योंकि न ब=न ल=90°, अतएव ब ल चाप के लिए न ध्रुव की तरह है और कोण न ल ध=90°।

गोलीय त्रिकोणमिति के नियमों के अनुसार,

$$\frac{\text{ज्या चाप न अ}}{\text{ज्या कोण न क अ}} = \frac{\text{ज्या चाप न क}}{\text{ज्या कोण न अ क}},$$

अतः $$\text{ज्याचाप न अ} = \frac{\text{ज्या चाप न क}}{\text{ज्या } 90^\circ} \times \text{ज्या कोण न क अ ।}$$

इसी प्रकार $$\text{ज्या चाप ध ल} = \frac{\text{ज्या चाप ध क}}{\text{ज्या } 90^\circ} \times \text{ज्या कोण ध क ल ।}$$

अतः, $$\frac{\text{ज्या चाप न अ}}{\text{ज्या चाप ध ल}} = \frac{\text{ज्या चाप न क}}{\text{ज्या चाप ध क}} \times \frac{\text{ज्या कोण न क अ}}{\text{ज्या कोण ध क ल}} = \frac{\text{ज्या चाप न क}}{\text{ज्या चाप ध क}}\text{ ।}$$

अतएव $$\text{ज्या चाप न अ} = \frac{\text{ज्या चाप ध ल} \times \text{ज्या चाप न क}}{\text{ज्या चाप ध क}}\text{ ।}$$

परन्तु ज्या चाप ध ल=परम अपक्रम के अहोरात्र का अर्धव्यास=कोटिज्या $\in$,

ज्या चाप न क=ज्या λ, ज्या चाप ध क=कोटिज्या चाप क अ=इष्ट चाप λ की द्युज्या हैं। न अ चाप का उदय काल वही है जो न क चाप का है।

अतएव न क चाप के उदय काल की ज्या $= \dfrac{\text{कोटिज्या} \in \times \text{ज्या } \lambda}{\text{कोटिज्या } \delta}$।

यह काल असुओं में प्राप्त होता है क्योंकि चाप को कलाओं में नापा जाता है और पृथ्वी एक असु (प्राण) में एक कला घूमती है।

उदय काल ज्ञात करने के लिए पहले हम प्रत्येक राशि के लिए क्रान्ति अर्थात् आकृति (4.8) में चाप क अ का मान ज्ञात करेंगे। भारतीय ज्योतिषियों ने $\in$ का मान 24 अंश माना है। गणना के लिए हम यही मान लेंगे।

आकृति (4.8) में यदि न से 30° पर क बिन्दु मेष का अंत है तो

$$\frac{\text{ज्या चाप क अ}}{\text{ज्या कोण क न अ}} = \frac{\text{ज्या चाप न क}}{\text{ज्या कोण न अ क}}।$$

अतएव

$$\text{क्रान्तिज्या} = \text{ज्या चाप क अ} = \frac{\text{ज्या कोण क न अ} \times \text{ज्या चाप न क}}{\text{ज्या } 90^\circ}$$

$$= \frac{\text{ज्या} \in \times \text{ज्या} \lambda}{\text{त्रिज्या}}।$$

ज्या की सारिणी से ज्या 24° =1397 तथा ज्या 30°=1719,

अतएव $$\text{ज्या चाप क अ} = \frac{1397 \times 1719}{3438} = 698.5,$$

तथा $$\text{अहोरात्र का व्यासार्ध} = (3438^2 - 698.5)^{\frac{1}{2}},$$

$$= \sqrt{11331941.75},$$

$$= 3366.3।$$

अतः $$\text{ज्या चाप न अ} = \frac{\text{कोटिज्या } 24^\circ \times \text{ज्या } 30^\circ}{3366.3},$$

$$= \frac{3141.4 \times 1719}{3366.3}$$

$$= 1604।$$

अतएव चाप न अ=1670′।

इसी प्रकार यदि ख विन्दु वृष राशि का अंतिम बिन्दु है तो चाप न ख का मान 60° तथा ज्या 60° =2977 और

$$\text{ज्या चाप ख स} = \frac{1397 \times 2977}{3438} = 1209.7,$$

तथा अहोरात्र वृत्त का व्यासार्ध=3218 ।

$$\text{अतः} \quad \text{ज्या चाप न स} = \frac{3141.4 \times 2977}{3218},$$

$$= 2906',$$

$$\text{तथा} \quad \text{चाप न स} = 3465' \text{ ।}$$

अतः मेष का उदयकाल =1670 असु ।

वृष का उदयकाल =(3465—1670) असु,

=1795 असु ।

एवं मिथुन का उदयकाल =(5400—3465) असु,

=1935 असु ।

नीचे की सारिणी में विभिन्न राशियों के उदयकाल दिए हैं (लंका के अक्षांश में)

राशियाँ	मेष	वृष	मिथुन
	कन्या	सिंह	कर्क
	तुला	वृश्चिक	धनु
	मीन	कुम्भ	मकर
उदयकाल असुओं में	1670	1795	1935

इष्टापक्रमगुणितामक्षज्यां लम्बकेन हृत्वा या ।
स्वाहोरात्रे क्षितिजा क्षयवृद्धिज्या दिननिशोः सा ॥२६॥

अनुवाद—इष्ट अपक्रमज्या को किसी स्थान की अक्षांशज्या से गुणा करके उस स्थान की अक्षांश कोटिज्या से भाग दें तो फल कुज्या कहलाता है। यह उस स्थान पर अहोरात्र वृत्त के समतल में होता है और उस स्थान के दिन रात के क्षय और वृद्धि की ज्या के अनुपात में होता है ॥26॥

अपक्रमज्या नाडीमण्डल और अहोरात्र वृत्त के बीच की दूरी है। आकृति (4.4) में यह दूरी पू ग चाप की ज्या के तुल्य है। उसी आकृति में अहोरात्र वृत्त उन्मण्डल को ग बिन्दु पर काटता है और क्षितिज को ब बिन्दु पर काटता है। इन बिन्दुओं के बीच की दूरी ग ब चाप की ज्या है। इसे कुज्या कहते हैं। पूर्वापर सूत्र और उदयास्त सूत्र के बीच की दूरी पू ब चाप की ज्या है। इसे अग्रा कहते हैं।

आकृति (4.5) में क ग अपक्रमज्या, ग ब कुज्या तथा क ब अग्रा हैं।

कोण उ क ध अक्षांश कोण है। आकृति से स्पष्ट है कि ग क ब तथा ध क म समरूप त्रिभुजों में

$$\frac{\text{ग ब}}{\text{क ग}} = \frac{\text{ध म}}{\text{क म}} = \frac{\text{अक्षांशज्या}}{\text{अक्षांश कोटिज्या}},$$

अतः $$\text{ग ब} = \text{कुज्या} = \frac{\text{इष्ट क्रान्तिज्या} \times \text{अक्षांशज्या}}{\text{अक्षांश कोटिज्या}}.$$

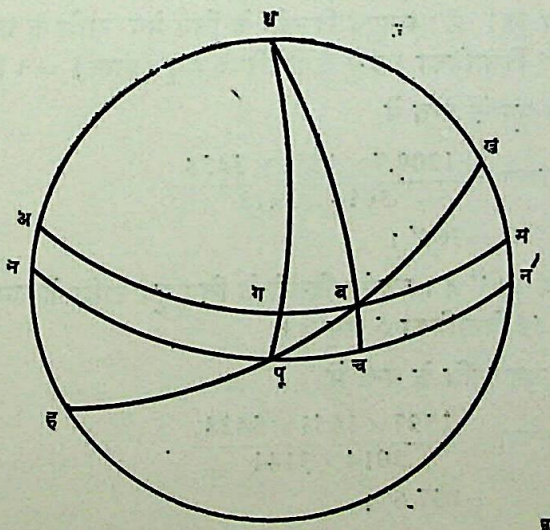

आकृति 4.9

आकृति(4.9)में न पू न' नाडीमण्डल, अ ग ब स अहोरात्र वृत, ध बिन्दु ध्रुव, ह पू व ख क्षितिज, एवं ब ग चाप की ज्या कुज्या हैं। जब सूर्य ब पर आता है तब सूर्योदय होता है। जब ग पर पहुँचता है तब उन्मण्डल पर होता है और ग से अ तक जाने का का समय 15 घटी है। जब तक वह ब से ग तक आता है वही काल दिनार्ध से अधिक है। इसकी नाप विषुवत् रेखा पर पू च चाप से होती है। यही चरदल है। अब

$$\frac{\text{ज्या चाप ब ग}}{\text{ज्याकोण ग ध ब}}=\frac{\text{ज्या चाप ब ध}}{\text{ज्याकोण ध ग ब}} \text{ तथा } \frac{\text{ज्या चाप पू च}}{\text{ज्याकोण पू ध च}}=\frac{\text{ज्या चाप ध च}}{\text{ज्याकोण ध पू च}},$$

$$\text{अतः ज्या चाप पू च}=\frac{\text{ज्या चाप ब ग}\times\text{ज्या चाप ध च}}{\text{ज्या चाप ब ध}}=\frac{\text{कुज्या}\times\text{त्रिज्या}}{\text{कोटिज्या } \delta},$$

क्योंकि ज्या कोण ध ग ब=ज्या कोण ध पू च=त्रिज्या तथा ग ध ब और पू ध च एक ही कोण हैं।

अब हम दिल्ली के अक्षांश के लिए चरदल की गणना मेष, वृष तथा मिथुन तीनों राशियों के लिए करेंगे। दिल्ली का अक्षांश 28° 42′ है।

$$\text{चरदलज्या}=\frac{\text{कुज्या}\times\text{त्रिज्या}}{\text{कोटिज्या } \delta}=\frac{\text{कुज्या}\times\text{त्रिज्या}}{\text{द्युज्या}},$$

अथवा कुज्या का मान रखने पर मेष के अन्त में

$$\text{चरदलज्या}=\frac{\text{ज्या } \delta\times\text{ज्या } 28^\circ\ 42'\times 3438'}{\text{कोटिज्या } 28^\circ\ 42'\times\text{द्युज्या}}।$$

$$=\frac{698.5\times 1651\times 3438}{3014\times 3366.3},$$

$$=390'।$$

इसका चाप 391′ है। अतएव दिल्ली के लिए मेष राशि के अन्त में चरदल 391 असु अर्थात् 1 घटी 5 विनाडिका 1 असु है क्योंकि 6 असु (प्राण) =1 विनाडिका।

इसी प्रकार वृष के अन्त में

$$\text{चरदलज्या}=\frac{1209.7\times 1651\times 3438}{3014\times 3218},$$

$$=708'।$$

इसका चाप 713′ है। अतएव दिल्ली के लिए वृष राशि के अन्त में चरदल 713 असु अर्थात् 1 घटी 58 विनाडिका 5 असु है।

अन्त में मिथुन राशि के अन्त में

$$\text{चरदलज्या}=\frac{1397\times 1651\times 3438}{3014\times 3141},$$

$$=837.6'।$$

इसका चाप 846′ हैं। अतएव दिल्ली के लिए मिथुन राशि के अन्त में चरदल 846 असु अर्थात् 2 घटी 21 विनाडिका है।

इसी प्रकार सूर्य की अन्य स्थितियों के लिए सभी स्थानों के लिए चरदल ज्ञात किया जा सकता है। अक्षांश के मान के बढ़ने के साथ साथ चरदल का मान भी बढ़ता है। इस कारण ऊँचे अक्षांशों में मेष से छः राशियों तक के लिए दिन बहुत बड़ा होता है और रात्रि छोटी। इसके विपरीत तुला से छः राशियों तकके लिए दिन उतना ही छोटा और रात्रि उतनी ही बड़ी होती है। विषुवत् रेखा पर चरदल का मान सर्वदा शून्य होता है तथा दिन और रात्रि बराबर होते हैं[1]। यहाँ मेष आदि राशियों से सायन राशि लेना चाहिए।

उदयति हि चक्रपादश्चरदलहीनेन दिवसपादेन।
प्रथमोऽन्त्यश्चाथान्यौ तत्सहितेन क्रमोत्क्रमतः ॥२७॥

अनुवाद—क्रान्तिमण्डल के प्रथम तथा चतुर्थ पाद दिवस के चौथे भाग अर्थात् 15 घटी से चरदल काल से कम समय में उदय होते हैं। अन्य दो के उदय होने का काल चर दलकाल तथा 15 घटी के योग के तुल्य है। प्रथम पाद में उदयकाल क्रम से हीन होता है और द्वितीय पाद में उत्क्रम से जोड़ा जाता है। ऐसे ही तृतीय पाद में क्रम से जोड़ा जाता है और चतुर्थपाद में उत्क्रम से घटाया जाता है ॥27॥

दिल्ली के अक्षांश के चरदल पहले निकाले गये हैं। अतएव दिल्ली में राशियों का उदयकाल निम्न सारणी के अनुसार है।

राशि	निरक्ष देश में उदय काल	चरदल	दिल्ली में उदय काल	राशि
मेष	1670	391	1279	मीन
वृष	1795	713	1473	कुम्भ
मिथुन	1935	846	1802	मकर
कर्क	1935	846	2068	धनु
सिंह	1795	713	2117	वृश्चिक
कन्या	1670	391	2061	तुला

[1]वस्तुतः विषुवत् रेखा पर भी दिन रात्रि से कुछ बड़ा होता है क्योंकि दिन का प्रारम्भ तभी हो जाता हैं जब सूर्य का ऊपरी बिन्दु दृष्टिगोचर होता है और वायुमण्डलीय वर्तन के कारण सूर्य का गोला कुछ ऊपर उठ जाता है।

विषुवत् रेखा पर क्षितिज विषुवत् रेखा को लम्बतः काटता है। अतएव वहाँ राशियों का उदयकाल उनके संगती विषुवांश के उदयकाल के तुल्य होता है। परन्तु अन्य स्थानों पर क्षितिज विषुवत् रेखा को तिरछे काटता है। अतएव राशि तथा संगती विषुवांश के उदयकाल में अन्तर होता है।

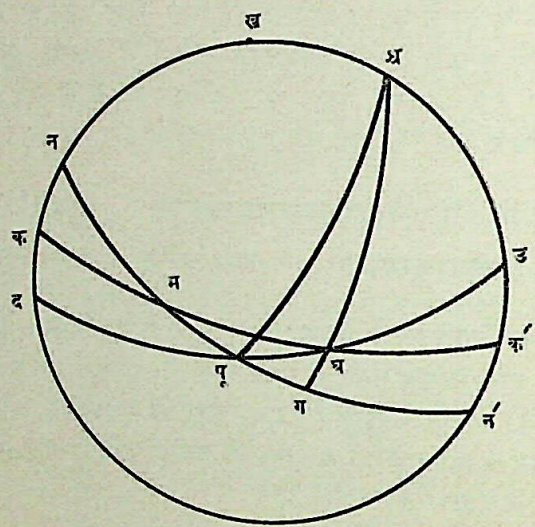

आकृति 4.10

आकृति (4.10)में ख द उ ध याम्योत्तर मण्डल, द पू घ उ, न म पू न', क म घ क' क्रमशः क्षितिज, नाडीमण्डल तथा क्रान्तिमण्डल के अर्धांश हैं, ध ध्रुव, ध पू उन्मण्डल का चतुर्थांश तथा ध घ ग ध्रुवप्रोत हैं। आकृति में म बिन्दु सायन मेष का आदि बिन्दु है। क्रान्तिमण्डल के म घ चाप के उदय में उतना ही समय व्यतीत होता है जितना विषुवत् रेखा के म पू भाग के उदय होने में। म घ का विषुवांश म ग है तथा पू ग चरदल है। अतएव यह स्पष्ट है कि मेष से प्रारम्भ करके मिथुन के अन्त तक राशियों का उदय काल विषुवांश के उदयकाल से कम है और यह कमी चरदल के तुल्य है। क्रान्तिमण्डल की छः राशियों का उदयकाल वही है जो विषुवत् रेखा के 180 अंश का है। अतएव द्वितीय पाद की राशियों के उदयकाल में चरदल जुड़ जाता है।

स्वाहोरात्रेष्टज्यां क्षितिजादवलम्बकाहतां कृत्वा।
विष्कम्भार्धविभक्ते दिनस्य गतशेषयोः शङ्कुः ॥२८॥

अनुवाद—अहोरात्र वृत्त पर सूर्य की स्थिति की क्षितिज से दूरी के चाप की अर्धज्या को किसी स्थान की अक्षांशकोटिज्या से गुणित कर त्रिज्या से भाग देने पर गत दिन अथवा शेष दिन का शंकु प्राप्त होता है ॥28॥

आकृति (4.4) में र रवि की स्थिति है। अहोरात्र वृत्त जहाँ क्षितिज से मिलता है वह बिन्दु व है। व ग की अर्धज्या तथा ग र चाप की अर्धज्या का जोड़ उदयास्त सूत्र से र

बिन्दु की दूरी के बराबर है। आकृति (4.5) में यह दूरी र व है। र से र ल क्षितिज पर अभिलम्ब है। र व ल त्रिभुज में कोण र व ल=कोण न क द=90°—कोण न क ख। परन्तु कोण न क ख अक्षांश ध क म के तुल्य है।

अतएव त्रिभुज र व ल एवं त्रिभुज क ध म समरूप हैं और

$$\frac{\text{र ल}}{\text{र व}}=\frac{\text{म क}}{\text{क ध}}=\frac{\text{अक्षांशकोटिज्या}}{\text{त्रिज्या}},$$

अथवा $$\text{र ल}=\frac{\text{र व}\times\text{अक्षांशकोटिज्या}}{\text{त्रिज्या}}।$$

शंकु किसी भी समय खमध्य से सूर्य से होते हुए खींचे गए ऊर्ध्वाधर वृत्त पर सूर्य के उन्नतांश की ज्या के तुल्य होता है। इसे महाशंकु कहते हैं।

परमेश्वर ने लिखा है[1]: "उत्तरगोले गतगन्तव्यासुभ्यश्चरदलासून्विशोध्य जीवामादाय स्वाहोरात्रार्धेन निहत्य त्रिज्यया विभज्य लब्धे भूज्यां प्रक्षिपेत्। साक्षितिजादुत्पन्ना स्वाहोरात्रेष्टज्या भवति।"

अर्थात् उत्तरीगोलार्ध में व्यतीत अथवा शेष असुओं में से चरदल असुओं को निकाल कर शेष की अर्धज्या प्राप्त करें। इसे अहोरात्रार्ध से गुणा करके त्रिज्या से भाग दें। लब्धि में कुज्या जोड़ दें। यही फल क्षितिज से उत्पन्न स्वाहोरात्रेष्टज्या होगा।

आकृति (4.4) में व्यतीत असुओं से चरदल निकाल देने पर शेष पू म चाप के तुल्य होगा। इसकी अर्धज्या को अहोरात्रार्ध से गुणित कर त्रिज्या से भाग देने पर ग र चाप की अर्धज्या प्राप्त होगी। इसमें कुज्या जोड़ने से फल उदयास्त सूत्र से र की दूरी है।

विषुवज्जीवागुणितः स्वेष्टः शङ्कुः स्वलम्बकेन हृतः।
अस्तमयोदयसूत्राद् दक्षिणतः सूर्यशङ्क्वग्रम् ॥२९॥

अनुवाद—इष्ट महाशंकु को अक्षांशज्या से गुणित करके अक्षांशकोटिज्या से भाग देने से सूर्य का शंक्वग्र प्राप्त होता है जो उदयास्त्र सूत्र से महाशंकु की दूरी है। (शंक्वग्र को बाद के ज्योतिषियों ने शंकुतल की संज्ञा दी है) ॥29॥

आकृति (4.5) में ल ब रेखा शंक्वग्र है। त्रिभुज र ल व तथा त्रिभुज क म ध समरूप हैं। अतएव

$$\frac{\text{व ल}}{\text{र ल}}=\frac{\text{ध म}}{\text{क म}}=\frac{\text{अक्षांशज्या}}{\text{अक्षांशकोटिज्या}},$$

तथा $$\text{व ल}=\frac{\text{र ल}\times\text{अक्षांशज्या}}{\text{अक्षांशकोटिज्या}},$$

$$=\frac{\text{शंकु}\times\text{अक्षांशज्या}}{\text{लम्बज्या}}।$$

[1]परमेश्वर कृत आर्यभटीय का भाष्य, पृ. 89।

परमापक्रमजीवामिष्टज्यार्धाहतां ततो विभजेत् ।
ज्यालम्बकेन लब्धार्काग्रा पूर्वापरे क्षितिजे ॥३०॥
सा बिषुवज्ज्योना चेद्विषुवदुदग्लम्बकेन सङ्गुणिता ।
विषुवज्ज्यया विभक्ता लब्धः पूर्वापरे शङ्कुः ॥३१॥

अनुवाद—परमक्रान्ति की अर्धज्या को इष्ट अर्धज्या अर्थात् क्रान्तिमण्डल पर सायनमेष से सूर्य की दूरी के चाप की अर्धज्या से गुणित कर अक्षांशकोटिज्या से भाग देने पर लब्धि पूर्वापर क्षितिज पर अर्थात् पूर्व क्षितिज पर और पश्चिम क्षितिज पर अग्रा होती है ॥30॥

जब अग्रा विषुवत् वृत्त के उत्तर में होती है और अक्षांशज्या से न्यून होती है तब इसे अक्षांशकोटिज्या से गुणित कर अक्षांशज्या से भाग देने पर लब्धि सममण्डल पर सूर्य का शंकु होती है ॥31॥

आकृति (4.4) में पू ब चाप की अर्धज्या, आकृति (4.5) में रेखा क ब तथा आकृति (4.9) में पू ब चाप की अर्धज्या अग्रा हैं। आकृति (4.5) में क ग क्रान्तिज्या है। त्रिभुज क ब ग और त्रिभुज क ध म समरूप हैं। अतएव

$$\frac{\text{क ब}}{\text{क ग}}=\frac{\text{क ध}}{\text{क म}}=\frac{\text{त्रिज्या}}{\text{लम्बज्या}},$$

तथा $\text{क ब}=\frac{\text{क्रान्तिज्या} \times \text{त्रिज्या}}{\text{लम्बज्या}}$।

परन्तु आर्या 25 के सम्बन्ध में हम सिद्ध कर चुके हैं कि

$$\text{क्रान्तिज्या}=\frac{\text{ज्या}\in \times \text{ज्या}\lambda}{\text{त्रिज्या}}।$$

अतएव, $\text{अग्रा}=\text{क ब}=\frac{\text{ज्या}\in \times \text{ज्या}\lambda}{\text{लम्बज्या}}$।

इसी प्रकार ब घ क तथा ध क म समरूप त्रिभुजों में

$$\frac{\text{क घ}}{\text{क ब}}=\frac{\text{क म}}{\text{म ध}}।$$

अतएव

$$\text{क घ}=\text{सममण्डल पर सूर्यका शंकु}=\frac{\text{अग्रा} \times \text{लम्बज्या}}{\text{अक्षांशज्या}}।$$

31 वीं आर्या का प्रथमार्ध ठीक नहीं है क्योंकि यदि अग्रा का मान उपर्युक्त सूत्र में रखें तो

$$\text{क घ}=\frac{\text{ज्या}\in \times \text{ज्या}\lambda}{\text{लम्बज्या}}\times\frac{\text{लम्बज्या}}{\text{अक्षांशज्या}}=\frac{\text{त्रिज्या}\times\text{क्रान्तिज्या}}{\text{अक्षांशज्या}}।$$

अतएव सूर्य सममण्डल में तभी प्रवेश करेगा जब क्रान्तिज्या का मान अक्षांशज्या से न्यून हो। इसीलिए ब्रह्मगुप्त आर्यभट का खण्डन करते हुए लिखते हैं :[1]

उत्तरगोलेऽग्रायां विषुवज्ज्यातो यदुक्तमूनायाम् ।
सममण्डलगस्तदसत् क्रान्तिज्यायां यतो भवति ॥

अर्थात् आर्यभट ने जो यह कहा है कि अग्रा के अक्षांशज्या से न्यून होने पर सूर्य सममण्डल में जाता है वह अशुद्ध है क्योंकि ऐसा तब होता है जब क्रान्तिज्या का मान अक्षांशज्या से न्यून हो।

अक्षांश जितना कम होगा न ख चाप का मान उतना ही कम होगा। यदि अक्षांशज्या का मान क्रान्तिज्या से कम है तो आकृति (4.5) में ख स्वस्तिक न तथा अ विन्दुओं के बीच में होगा और अ स रेखा क ख रेखा को नहीं काटेगी।

क्षितिजादुन्नतभागानां या ज्या सा परो भवेच्छङ्कुः ।
मध्यान्नतभागज्या छाया शङ्कोस्तु तस्यैव ॥३२॥

अनुवाद—मध्याह्नकाल में रवि क्षितिज से जितना ऊपर है उसकी अर्धज्या परम शंकु है। खमध्य से उस समय रवि की जितनी नति है उसकी अर्धज्या उस परम शंकु की छाया के तुल्य है ॥32॥

आकृति (4.4) अथवा आकृति (4.5) में सूर्य की मध्याह्नकालिक स्थिति अ पर है। अ द चाप इसकी उन्नति है तथा अ ख चाप नति है। अ से क्षितिज पर लम्ब डालें तो वह अ द चाप की अर्धज्या के तुल्य होगा और वही परम शंकु होगा। इसी प्रकार अ से सममण्डल पर अर्थात् आकृति (4.5) में क ख रेखा पर लम्ब डालें तो वह नतिज्या के तुल्य होगा और वह शंकु की छाया के तुल्य होगा।

इन आकृतियों से स्पष्ट है कि न ख चाप अक्ष चाप ध उ के तुल्य है तथा न अ रवि की क्रान्ति का चाप है। जब रवि उत्तरी गोलार्ध अर्थात् नाडीमंडल के उत्तर में होता है तब मध्याह्नकाल की नति का चाप अक्षचाप और क्रान्तिचाप के अन्तर के तुल्य होता है एवं जब रवि दक्षिणी गोलार्ध में होता है तब नति का चाप अक्षचाप और क्रान्तिचाप के योग के तुल्य होता है। उन्नति का मान 90 अंश के चाप और नति के चाप के अन्तर के तुल्य होता है।

मध्यज्योदयजीवासंवर्गे व्यासदलहृते यत् स्यात् ।
तन्मध्यज्याकृत्योर्विशेषमूलं स्वदृक्क्षेपः ॥३३॥

अनुवाद—मध्यज्या तथा उदयजीवा के गुणनफल में त्रिज्या से भाग दें और लब्धि के वर्ग को मध्यज्या के वर्ग में से घटाकर शेष का वर्गमूल निकालें तो फल दृक्क्षेपज्या होगा ॥33॥

क्रान्तिमण्डल के उच्चतम बिन्दु की खमध्य से चापीय दूरी की अर्धज्या को दृक्क्षेपज्या कहते हैं। यह बिन्दु वित्रिभ अथवा त्रिभोन कहलाता है। आकृति (4·6) में ख ब चाप की अर्धज्या दृक्क्षेपज्या है। ग घ रेखा दृक्क्षेपवृत्त का क्षितिज तल पर प्रक्षेप है।

---

[1]ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त, तंत्रपरीक्षाध्याय, आर्या 22।

क्रान्तिमण्डल याम्योत्तर मण्डल को जिस बिन्दु पर काटता है उस बिन्दु की खमध्य स चापीय दूरी की अर्धज्या मध्यज्या कहलाती है। आकृति (4.6) में चाप ख च की अर्धज्या मध्यज्या है।

क्रान्तिमण्डल पूर्व क्षितिज को जिस बिन्दु पर काटता है उस बिन्दु की पूर्व बिन्दु से चापीय दूरी की अर्धज्या उदयजीवा है। आकृति (4.6) में ल पू चाप की अर्धज्या उदयज्या है।

आकृति (4.6) में क बिन्दु क्रान्तिमण्डल का केन्द्र है। अतएव गोल पर क से ल की चापीय दूरी 90 अंश है। इसी प्रकार व भी ल से 90 अंश पर है क्योंकि ब विषुभ है अर्थात् ल व चाप तीन राशियों के तुल्य है। अतएव दृक्क्षेपमण्डल के सभी बिन्दु ल से 90 अंश की दूरी पर हैं। अतएव

चाप ल घ=90 अंश=चाप पू द,

अतएव चाप द घ=चाप पू ल।

अतः ब चं ख गोलीय त्रिभुज में

$$\frac{\text{ख च चाप की अर्धज्या}}{\text{च व ख कोण की अर्धज्या}}=\frac{\text{व च चाप की अर्धज्या}}{\text{व ख च कोण की अर्धज्या}}$$

$$=\frac{\text{व च चाप की अर्धज्या}}{\text{द घ चाप की अर्धज्या}}\text{।}$$

अथवा $$\frac{\text{ख च चाप की अर्धज्या}}{\text{त्रिज्या}}=\frac{\text{व च चाप की अर्धज्या}}{\text{ल पू चाप की अर्धज्या}}$$

$$=\frac{\text{व च चाप की अर्धज्या}}{\text{उदयज्या}},$$

$$\text{अतएव व च चाप की अर्धज्या}=\frac{\text{मध्य ज्या}\times\text{उदयज्या}}{\text{त्रिज्या}}\text{।}$$

यहाँ तक फल पूर्णतः शुद्ध है। इसके पश्चात् स्थूलता आती है जिसके लिए ब्रह्मगुप्त ने आर्यभट की आलोचना की है। आर्यभट ने गोलीय त्रिभुज ख व च को समतल त्रिभुज मान लिया है जिसका व कोण समकोण है। अतएव

उसके अनुसार ख व=$\sqrt{\text{ख च}^2-\text{व च}^2}$=दृक्क्षेपज्या।

परन्तु इस तरह ख व का मान वास्तविक मान से न्यून आता है जैसा आगे प्रदर्शित किया जा रहा है।

कल्पना कीजिये कि आकृति (4.6) के गोलीय त्रिभुज ख ब च को आकृति (4.11)

में दिखाया गया है। ख से ख य तथा र ख क्रमशः क व एवं क च पर अभिलम्ब हैं और वे क्रमशः ख व चाप तथा ख़ च चाप की अर्धज्याएँ हैं तथा त्रिभुज ख य र एक समकोण

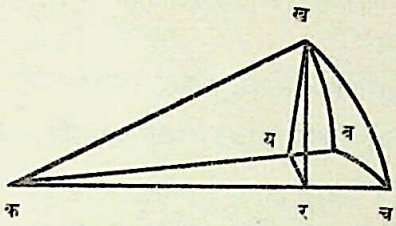

आकृति 4.11

त्रिभुज है जिसमें कोण ख य र समकोण है। अतएव

$$\text{ख य} = \text{दृक्क्षेपज्या} = \sqrt{\text{ख र}^2 - \text{य र}^2}$$

परन्तु य र रेखा व च चाप की अर्धज्या से न्यून है। अतः आर्यभट के अनुसार दृक्क्षेपज्या का मान वास्तविक मान से कम आता है। अतएव ब्रह्मगुप्त ने कहा है[1] :

"वित्रिभलग्ने दृक्क्षेपमण्डलं तदपमण्डल युतौ ज्या ।
मध्या दृक्क्षेपज्या नार्यभटोक्ताऽनया तुल्या ॥
दृक्क्षेपज्याऽतोऽसत् तन्नाशादवनतेर्नाशः ।
अवनतिनाशात् ग्रासस्योनाधिकता रविग्रहणे ॥"

अर्थात् वित्रिभ लग्न में जो दृक्क्षेपवृत्त होता है उसकी और क्रान्तिमण्डल की युति की मध्यज्या अर्थात् ख विन्दु से युति विन्दु व तक के चाप की ज्या अर्थात् दृक्क्षेपज्या के तुल्य आर्यभट के द्वारा प्राप्त की गयी ज्या नहीं होती। अतएव वह अशुद्ध है। उसकी अशुद्धि से अवनति का मान अशुद्ध निकलता है एवं अवनति की अशुद्धि से रविग्रहण में ग्रास कम अथवा अधिक आता है।

उदयज्या का मान उसी प्रकार प्राप्त किया जाता है जैसे अग्रा का, अर्थात्

$$\text{उदयज्या} = \frac{\text{ज्या}\in \times \text{ज्या}\ \lambda}{\text{लम्बज्या}}\ ।$$

मध्यज्या प्राप्त करने के लिए पहले यह ज्ञात किया जाता है कि क्रान्तिमण्डल का कौन सा बिन्दु याम्योत्तर रेखा पर है। उत्तरी गोलार्ध के स्थानों के लिए उनके अक्षांश में क्रान्ति बिन्दु की क्रान्ति को जोड़ दिया जाता है यदि क्रान्ति दक्षिण दिशा को हो, और अक्षांश में से क्रान्ति को घटाया जाता है यदि क्रान्ति उत्तर दिशा को हो। इस योग अथवा अन्तर की ज्या मध्यज्या होती है। जिस राशि में सूर्य है वह मध्याह्न के समय याम्योत्तर वृत्त में होगी। मध्याह्न के पहले इसमें उन अंशों को घटाना है जितने से पृथ्वी उस समय तथा मध्याह्न काल के बीच के काल में घूमेगी। इसके लिए पहले जिस राशि में सूर्य है उसके जितने भाग को वह तय कर चुका है उसके विषुवांश को उस काल तथा मध्याह्न काल के बीच के असुओं में से घटाना चाहिए। शेष असुओं में से पूरी राशियों के विषुवांशों को

[1]ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त, तंत्रपरीक्षाध्याय, आर्याएँ 29-30।

घटाना चाहिए जो घट सकें। अन्त में शेष असुओं से अनुपात द्वारा उस राशि के अंश को प्राप्त करना चाहिए जो याम्योत्तर वृत्त से पूर्व में है। तब क्रान्तिवृत्त का वह बिन्दु प्राप्त होगा जो याम्योत्तर वृत्त पर है। क्रान्तिमण्डल के किसी बिन्दु की क्रान्ति का सूत्र 25वीं आर्या के अनुवाद में दिया गया है।

दृग्दृक्क्षेपकृतिविशेषितस्य मूलं स्वदृग्गतिः कुवशात्।
क्षितिजे स्वा दृक्छाया भूव्यासार्धं नभोमध्यात् ॥३४॥

अनुवाद—दृग्ज्या के वर्ग तथा दृक्क्षेपज्या के वर्ग के अन्तर का वर्गमूल दृग्गतिज्या के तुल्य होता है। पृथ्वी के कारण क्षितिज पर दृग्भेद खमध्य से पृथ्वी के व्यासार्द्ध के तुल्य होता है।

आकृति (4.6) में र क्रान्तिमण्डल पर सूर्य की स्थिति है। आर्या 28 में किसी भी समय सूर्य का उन्नतांश निकालने की विधि बतायी गयी है। उन्नतांश की अर्धज्या महाशंकु है। महाशंकु के वर्ग को त्रिज्या के वर्ग में से घटाने पर दृग्ज्या का वर्ग मिलता है। आकृति (4.6) में ख र चाप की अर्धज्या दृग्ज्या है। अब ख ब र त्रिभुज को एक समतल त्रिभुज मान लेने से

$$\text{ब र} = \sqrt{\text{ख र}^2 - \text{ख ब}^2},$$
$$= \sqrt{\text{दृग्ज्या}^2 - \text{दृक्क्षेपज्या}^2},$$
$$= \text{दृग्गतिज्या}।$$

परमेश्वर अपने भाष्य में लिखते हैं[1] :

दृग्भेदहेतुभूता स्वच्छाया दृग्ज्या वा स्वदृग्गतिज्या वा दृक्क्षेपज्या वेत्यर्थः। सा यदि क्षितिजे भवति नभोमध्यात् क्षितिजान्ता भवति। व्यासार्धतुल्या भवतीत्यर्थः। तदा कुवशाद्भमिवशान्निष्पन्नो दृग्भेदो व्यासार्धं भवति। भूव्यासार्धतुल्यं दृग्भेदयोजनमित्यर्थः। अन्तरालेऽनुपातात् कल्प्यं। अतो दृग्गतिज्यां भूव्यासार्धेन निहत्य त्रिज्यया विभज्य गतं दृग्भेदयोजनं भवति।"

अर्थात् दृग्भेद का कारण स्वच्छाया अथवा दृग्ज्या अथवा दृग्गतिज्या अथवा दृक्क्षेपज्या है। वह यदि क्षितिज पर हो तो खमध्य से क्षितिज के अन्त तक व्यासार्ध के तुल्य होती है। तब पृथ्वी के कारण उत्पन्न दृग्भेद व्यासार्ध होता है अर्थात् दृग्भेदयोजन व्यासार्ध के तुल्य होता है। अन्य बीच के स्थानों पर अनुपात से मिलता है। अतएव दृग्गतिज्या को पृथ्वी के व्यासार्ध से गुणाकर त्रिज्या से भाग देने पर दृग्भेदयोजन होता है।

ब्रह्मगुप्त इस आर्या के सम्बन्ध में कहते हैं[2] :

"दृक्क्षेपज्या बाहुर्दृग्ज्याकर्णोऽनयोः कृतिविशेषात्।
मूलं दृग्गतिजीवा संस्थानमयुक्तमेतदपि ॥27॥

---

[1]परमेश्वरकृत आर्यभटीय भाष्य, पृ 92।
[2]ब्राह्म फुटसिद्धान्त, तंत्रपरीक्षाध्याय, आर्या 27।

अर्थात् दृक्क्षेपज्या को वाहु तथा दृग्ज्या को कर्ण मान कर उनके वर्ग के अन्तर के मूल से दृग्नतिजीवा प्राप्त करने की स्थिति भी ठीक नहीं है।

वस्तुतः ख र एवं ख व चापों की अर्धज्या के स्थान पर इनकी पूर्णज्या लेना चाहिए था। पूर्णज्या=2 अर्द्धज्या (चापार्द्ध)।

विक्षेपगुणाक्षज्या लम्बकभक्ता भवेद्दृणउदक्स्थे।
उदये धनमस्तमये दक्षिणगे धनमृणं चन्द्रे ॥३५॥
विक्षेपाक्रमगुणमुत्क्रमणं विस्तरार्धकृतिभक्तम्।
उदगृणधनमुदगयने दक्षिणगे धनमृणं याम्ये ॥३६॥

अनुवाद—चन्द्रमा के विक्षेप को स्वदेश की अक्षज्या से गुणकर फल में लम्बज्या से भाग देने पर आक्षदृक्कर्म प्राप्त होता है। चन्द्रमा के क्रान्तिमण्डल से उत्तर होने पर पूर्व कपाल में (अर्थात् उदय होने वाले चन्द्रमा के लिए) ऋण और पश्चिम कपाल में धन होता है। चन्द्रमा यदि क्रान्तिमण्डल से दक्षिण में हो तो पूर्व कपाल में धन और अस्ताचल की ओर जाते चन्द्रमा के लिए ऋण होता है ॥35॥

ग्रह के विक्षेप को परमक्रान्ति तथा ग्रह की उत्क्रमज्या से गुणकर फल को त्रिज्या वर्ग से विभाजित करने पर आयनदृक्कर्म प्राप्त होता है। यदि चन्द्रमा क्रान्तिमण्डल के उत्तर में हो तो उत्तर अयन के लिए फल ऋण और दक्षिण अयन के लिए धन होता है। यदि चन्द्रमा क्रान्तिमण्डल के दक्षिण में हो तो फल क्रमशः धन तथा ऋण होता है ॥36॥

परमेश्वर का कहना है कि उत्क्रमण से आचार्य का अर्थ कोट्युत्क्रमज्या से है[1]।

ये संस्कार इसलिए किए जाते हैं कि चन्द्रमा अथवा ग्रह के स्फुट रेखांश में इन्हें करने से क्रान्तिमण्डल के उस बिन्दु का रेखांश प्राप्त हो जो चन्द्रमा अथवा ग्रह के साथ क्षितिज पर उदय हो रहा है।

आकृति (4.12) में उ ध ख द याम्योत्तरमण्डल, द प उ क्षितिज, ग ग्रह, ख कदम्ब एवं ध ध्रुव हैं। म प नाडीमण्डल तथा म थ क्रान्तिमण्डल हैं। कदम्ब ख से ग से होकर जाने वाला कदम्बप्रोत ख ग ब क्रान्तिमण्डल से ब बिन्दु पर मिलता है। न वह बिन्दु है जहाँ ग्रह

[1]परमेश्वरकृत आर्यभटीय भाष्य, पृ. 94।

से गुज़रने वाला ध्रुवप्रोत क्रान्तिमण्डल को काटता है। क्रान्तिमण्डल का थ बिन्दु उसी

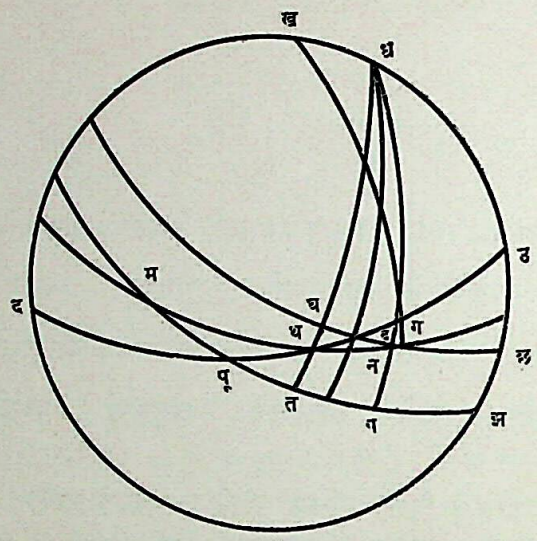

आकृति 4.12

समय क्षितिज पर उदय हो रहा है जिस समय ग क्षितिज पर उदय हो रहा है। कुल दृक्कर्म व थ है जिसमें व न आयन दृक्कर्म है और न थ आक्ष दृक्कर्म है।

ऊपर की पहली आर्या में आक्ष दृक्कर्म का सूत्र है :

$$\text{आक्ष दृक्कर्म} = \frac{\text{अक्षांशज्या} \times \text{चन्द्रमा का विक्षेप}}{\text{लम्बज्या}}$$

यह सूत्र स्थूल है। घ ग न ध्रुवप्रोत नाडीमण्डल को प पर काटता है। जब प बिन्दु क्षितिज पर होता है तब न क्षितिज से ऊपर होता है और ग और भी ऊपर होता है। इस स्थिति में न के अहोरात्र वृत्त का जो भाग क्षितिज के ऊपर होता है उसका मान है :

$$\frac{\text{न प} \times \text{अक्षांशज्या}}{\text{लम्बज्या}} \text{। (आसन्नतः)}$$

और इसकी चरदलज्या है

$$\frac{\text{न प} \times \text{अक्षांशज्या}}{\text{लम्बज्या}} \times \frac{\text{त्रिज्या}}{\text{कोटिज्या न प}} \text{।}$$

इसी प्रकार ग के अहोरात्र वृत्त का जो भाग क्षितिज के ऊपर होता है उसका मान है

$$\frac{\text{ग प} \times \text{अक्षांशज्या}}{\text{लम्बज्या}} \text{। (आसन्नतः)}$$

तथा इसकी चरदलज्या है

$$\frac{\text{ग प} \times \text{अक्षांशज्या}}{\text{लम्बज्या}} \times \frac{\text{त्रिज्या}}{\text{कोटिज्या ग प}}.$$

इन चरदलज्याओं का अन्तर है

$$\left(\frac{\text{ग प}}{\text{कोटिज्या ग प}} - \frac{\text{न प}}{\text{कोटिज्या न प}}\right) \left(\frac{\text{अक्षांशज्या} \times \text{त्रिज्या}}{\text{लम्बज्या}}\right)$$

अब यदि हम कोटिज्या ग प=कोटिज्या न प=त्रिज्या (आसन्नतः) रखें तो चर-दलज्याओं का अन्तर $= \frac{\text{ग न} \times \text{अक्षांशज्या}}{\text{लम्बज्या}}$,

$$= \frac{\text{ग्रह का विक्षेप} \times \text{अक्षांशज्या}}{\text{लम्बज्या}}.$$

परन्तु यह मान नाडीमण्डल पर है। क्रान्तिवृत्त पर मान प्राप्त करने के लिए हमें इसका मान क्रान्तिवृत्त के चाप के रूप में प्राप्त करना चाहिए।

आर्या 25 की व्याख्या में नाडीमण्डल और क्रान्तिमण्डल के चापों का संबंध प्राप्त किया गया है। वह है

$$\text{विषुवांशज्या} = \frac{\text{कोटिज्या } \epsilon \times \text{ज्या } \lambda}{\text{कोटिज्या } \delta}$$

अतएव, $$\text{ज्या}\lambda = \frac{\text{कोटिज्या } \delta \times \text{विषुवांशज्या}}{\text{कोटिज्या } \epsilon}.$$

आर्यभट के अनुसार $\frac{\text{कोटिज्या } \delta}{\text{कोटिज्या } \epsilon} = 1$ है जो आसन्नतः ठीक है।

आकृति (4.12) में ब का अहोरात्रवृत्त ब द′ घ खींचा गया है जो ध्रुवप्रोत ध ग प को द′ पर काटता है और क्षितिज को घ पर काटता है। अब

चाप ब न=चाप ब द′ (आसन्नतः)

और $$\text{ज्या चाप ब द}' = \frac{\text{ज्या कोण ब ग द}' \times \text{ज्या चाप ब ग}}{\text{ज्या कोण ब द}' \text{ ग}},$$

अथवा $$\text{ज्या चाप ब द}' = \frac{\text{आयनवलन ज्या} \times \text{चाप ब ग}}{\text{त्रिज्या}}. \quad \text{(आसन्नतः)}$$

और यह सिद्ध किया जा सकता है कि (पृष्ठ 148)

$$\text{आयनवलनज्या} = \frac{\text{ज्या } (90+\lambda) \times \text{ज्या } \epsilon}{\text{त्रिज्या}}, \quad \lambda = \text{ग्रह का रेखांश},$$

अतएव $$\text{ज्या चाप ब न} = \frac{\text{ज्या } (90+\lambda) \times \text{ज्या } \epsilon \times \text{ग्रह का विक्षेप}}{(\text{त्रिज्या})^2}.$$

यह सूत्र आर्यभट के सूत्र से भिन्न है।

ब्रह्मगुप्त ने आर्यभट के आक्षदृक्कर्म तथा आयनदृक्कर्म दोनों की निन्दा की है। आक्षदृक्कर्म के लिए वे कहते हैं[1] :

"विक्षेपगुणाऽक्षज्या लम्बकभक्ता ग्रहे धनमृणं यत्।
उक्तमुदयास्तमययोर्न प्रतिघटिकं यतस्तदसत्॥"

अर्थात् आर्यभट ने जो ग्रहों के लिए उदय अस्त के समय विक्षेपगुणित और लम्बज्या द्वारा विभाजित धन और ऋण कहा है वह असत् है क्योंकि वह प्रतिक्षणिक नहीं है।

इसके सम्बन्ध में चतुर्वेद पृथदकस्वामी कहते हैं[2] : असद्दूषणमेतत सामान्येन तन्त्रोक्तत्वादिति," अर्थात् आचार्य ने जो यह दूषण दिखाया है वह असत् है क्योंकि आर्यभट-तन्त्र में सामान्य रूप से कहा गया है।

आर्यभट के आयनदृक्कर्म के लिए ब्रह्मगुप्त कहते हैं[3] :

"त्रिज्याकृतिभक्ता विक्षेपाक्रमगुणोत्क्रमज्येन्दोः।
अयनान्ते यदृणधनं तत् तस्यादौ ततोऽसत् तत्॥"

अर्थात् आर्यभट ने जो आयनदृक्कर्म के लिए कहा है कि वह चन्द्रमा के शर, परम-क्रान्तिज्या तथा उत्क्रमज्या के गुणनफल में त्रिज्यावर्ग से भाग देने पर उपलब्ध लब्धि के तुल्य होता है वह ठीक नहीं है क्योंकि उन्होंने जो अयनादि में कहा है वह अयन के अन्त में उत्पन्न होता है।

चन्द्रो जलमर्कोऽग्निर्मृद् भूश्छायापि या तमस्तद्धि।
छादयति शशी सूर्यं शशिनं महती च भूच्छाया॥३७॥

अनुवाद—चन्द्रमा जल का बना है, सूर्य अग्नि का बना है और पृथ्वी मिट्टी की बनी है और छाया अंधकारमय है। (सूर्यग्रहण के अवसर पर) सूर्य को चन्द्रमा ढक लेता है और (चन्द्रग्रहण के अवसर पर) पृथ्वी की बड़ी छाया चन्द्रमा को ढक लेती है॥37॥

आर्यभट ने यह कहीं नहीं कहा है कि सूर्यग्रहण अथवा चन्द्रग्रहण राहु के कारण होता है। फिर भी ब्रह्मगुप्त कहते हैं[4] :

"आर्यभटो जानाति ग्रहाष्टगतिं यदुक्तवांस्तदसत्।
राहुकृतं न ग्रहणं तत्पातो नाष्टमो राहुः॥"

अर्थात् यह जो कहा है कि आर्यभट आठ ग्रहों की गति को जानता है वह ठीक नहीं है क्योंकि उसके मत से ग्रहण राहु के कारण होता है जबकि ग्रहण राहु के कारण नहीं होता और चन्द्रमा का पात आठवाँ ग्रह राहु नहीं है।

---

[1]ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त, तंत्रपरीक्षाध्याय, आर्या 34।
[2]रामस्वरूप शर्मा आदि द्वारा संपादित ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त, पृ. 704।
[3]ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त, तन्त्रपरीक्षाध्याय, आर्या 35।
[4]ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त, तन्त्रपरीक्षाध्याय, आर्या 9।

इसके विरुद्ध स्वयं ब्रह्मगुप्त कहते हैं कि यह जो वेदवाक्य है कि असुर पुत्र राहु ने अन्धकार से सूर्य के विम्ब को भेदित कर दिया है उसमें तथा श्रुति, संहिता, स्मृति में जिससे ऐक्य हो उसी के प्रतिपादन में उक्ति उचित है[1]। इसके आगे भी ब्रह्मगुप्त ने ग्रहणों का कारण राहु को ही कहा है (देखिये इस अध्याय की 36 से 48 तक की आर्याएँ तथा अल्वीरूनी का इण्डिया, भाग 2, पृ. 110। अल्वीरूनी ने जो यह लिखा है कि वे ब्राह्मसिद्धान्त के प्रथम अध्याय से ब्रह्मगुप्त के मत को उद्धृत कर रहे हैं उसे इक्कीसवाँ अध्याय होना चाहिए)। इस पर सुधाकर द्विवेदी जी की टिप्पणी है : वाग्वलमेतत्।

स्फुटशशिमासान्तेऽर्कं पातासन्नो यदा प्रविशतीन्दुः।
भूच्छाया पक्षान्ते तदाधिकोनं ग्रहणमध्यम् ॥३८॥

अनुवाद—जब चन्द्रमा स्फुट चान्द्रमास (अर्थात् लम्बन-संस्कृत चान्द्रमास) के अन्त में के पात के समीप होता है तब वह सूर्य में प्रवेश करता है तब अधिककालिक अथवा अल्पकालिक सूर्यग्रहण का मध्य होता है। इसी प्रकार पक्ष के अन्त में जब चन्द्रमा पृथ्वी की छाया में प्रवेश करता है तब चन्द्रग्रहण होता है ॥38॥

जब चन्द्रमा पात के समीप अथवा ठीक पात पर होता है तभी सूर्य, चन्द्रमा और पृथ्वी के केन्द्र एक रेखा में होते हैं। उसी स्थिति में जब चन्द्रमा की छाया पृथ्वी पर पड़ती है तब सूयग्रहण होता है। तीनों के केन्द्र ठीक एक रेखा में हों तो पूर्णग्रास सभव है। पृथ्वी से सूर्य और चन्द्रमा की दूरियाँ घटती बढ़ती रहती हैं। अतएव पृथ्वी से देखने पर कभी चन्द्रबिम्ब का मान सूयबिम्ब के मान से अधिक और कभी कम होता है। पहली स्थिति में पूर्णग्रास और दूसरी स्थिति में मुद्रिकाग्रहण होता है अर्थात् सूर्य का बाहरी भाग दिखाई पड़ता है और केन्द्रीय भाग ग्रसित रहता है। जब चन्द्रमा पात के समीप तो हो पर केन्द्र ठीक रेखा में न हों तब खण्डग्रास होता है।

इसी प्रकार चन्द्रमा का पूर्णग्रास अथवा खण्डग्रास होता है। परन्तु मुद्रिकाग्रास नहीं होता क्योंकि चन्द्रमा की कक्ष्या पर पृथ्वी की छाया का व्यास चन्द्रमा के व्यास से सर्वदा अधिक होता है।

चान्द्रमास का प्रारम्भ कहीं कहीं अमावस्या के बाद से होता है और कहीं कहीं पूर्णिमा के बाद से होता है पर ज्योतिषी सर्वदा मास का प्रारम्भ अमावस्या के बाद से मानते हैं। इसीलिए इस आर्या में कहा गया है कि सूर्यग्रहण मास के अंत में और चन्द्रग्रहण पक्ष के अंत में अर्थात् शुक्ल पक्ष के अंत में होता है।

भूरविविवरं विभजेद् भूगुणितं तु रविभूविशेषेण।
भूच्छायादीर्घत्वं लब्धं भूगोलविष्कम्भात् ॥३९॥
छायाग्रचन्द्रविवरं भूविष्कम्भेण तत् समभ्यस्तम्।
भूच्छायया विभक्तं विद्यात्तमसः स्वविष्कम्भम् ॥४०॥

---

[1]वही गोलाध्याय, आर्या 43।

अनुवाद—सूर्य और पृथ्वी की दूरी को पृथ्वी के व्यास से गुणकर गुणनफल में सूर्य और पृथ्वी के व्यासों के अन्तर से भाग दें तो लब्धि पृथ्वी के केन्द्र से पृथ्वी के छाया की लम्बाई होगी ॥39॥

पृथ्वी की छाया के अन्तिम बिन्दु की चन्द्रमा से दूरी (अर्थात् पृथ्वी की छाया की लम्बाई और पृथ्वी के केन्द्र से चन्द्रमा की दूरी के अन्तर) को पृथ्वी के व्यास से गुणकर पृथ्वी की छाया की लम्बाई से भाग देने पर चन्द्रमा की कक्ष्या में पृथ्वी की छाया का व्यास प्राप्त होता है ॥40॥

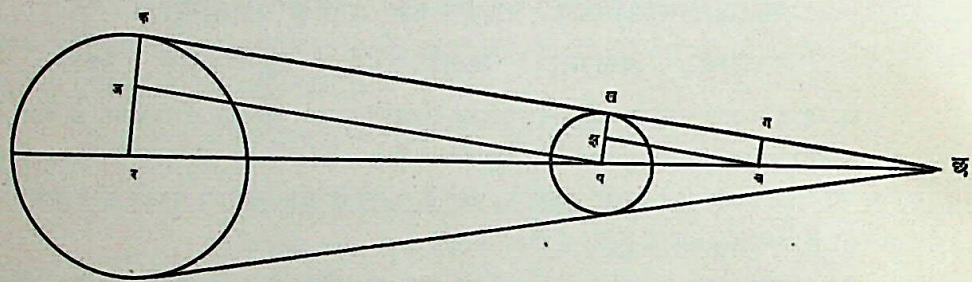

आकृति 4.13

आकृति (4.13) में र सूर्य का केन्द्र, प पृथ्वी का केन्द्र एवं छ छायाग्र अर्थात् छाया का शीर्ष बिन्दु हैं। क ख छ सूर्य तथा पृथ्वी की स्पर्श रेखा है। च पर चन्द्रमा की कक्ष्या है। प से प ज और च से च झ रेखाएँ क ख छ के समान्तर खींचीं गई हैं। छ ख प एवं प ज र दो समरूप त्रिभुजों में

$$\frac{\text{छ प}}{\text{प र}}=\frac{\text{प ख}}{\text{र ज}}=\frac{\text{भूव्यासार्ध}}{\text{रविव्यासार्ध}-\text{भूव्यासार्ध}}=\frac{\text{छाया का दीर्घत्व}}{\text{पृथ्वी से सूर्य की दूरी}},$$

अतः $$\text{छाया का दीर्घत्व}=\frac{\text{पृथ्वी से सूर्य की दूरी}\times\text{भूव्यास}}{\text{रवि व्यास}-\text{भूव्यास}}।$$

इसी प्रकार च ग को च से क ख छ पर अभिलम्ब खींचा गया है। अतः छ च ग और छ प ख दो समरूप त्रिभुजों में

$$\frac{\text{च ग}}{\text{च छ}}=\frac{\text{प ख}}{\text{प छ}},$$

अतएव च ग=चन्द्र कक्ष्या पर छाया का व्यासार्ध,

$$=\frac{\text{च छ}\times\text{प ख}}{\text{प छ}}=\frac{\text{छायाग्र और चन्द्रमा का अंतर}\times\text{भूव्यासार्ध}}{\text{छाया का दीर्घत्व}},$$

अतएव चन्द्र कक्ष्या पर छाया का व्यास $=\dfrac{\text{छायाग्र और चन्द्रमा का अंतर}\times\text{भूव्यास}}{\text{छाया का दीर्घत्व}}$।

सम्पर्कार्धस्य कृतेश्शशिविक्षेपस्य वर्गितं शोध्यम् ।
स्थित्यर्धमस्य मूलं ज्ञेयं चन्द्रार्कदिनभोगात् ॥४१॥

अनुवाद—छादक और छाद्य (अर्थात् चन्द्रमा और छाया अथवा चन्द्रमा और सूर्य) के व्यासार्ध के योग के वर्ग में से चन्द्रमा के विक्षेप के वर्ग को घटाकर शेष के वर्गमूल तथा सूर्य एवं चन्द्रमा की दैनिक भुक्ति से स्थित्यर्धकाल का ज्ञान होता हैं ॥41॥

स्थित्यर्धकाल ग्रहणकाल का अर्थात् स्पर्श के क्षण से मोक्ष के क्षण तक के बीच के काल का आधा होता है । ब्रह्मगुप्त ने कहा है[1] :

'तिथिवत् स्थितिविमर्दार्धे ।

अर्थात् स्थित्यर्धकाल और विमर्दार्धकाल की गणना उसी तरह करनी चाहिए जिस प्रकार तिथि में गणना की जाती है । कोई तिथि सूर्योदय से कितना पहले प्रारम्भ हुई थी इसकी गणना करने के लिए चन्द्रमा और सूर्य के सूर्योदयकालिक रेखांश के अंतर में से 12 के महत्तम गुणज (जो घट सके) को घटाकर शेष में सूर्य और चन्द्रमा की दैनिक भुक्ति के अंतर से भाग देकर लब्धि में 60 से गुणा करने पर वे घटियाँ प्राप्त होती हैं जितनी घटी सूर्योदय से पहले तिथि आरम्भ हुई थी । इसी प्रकार उपर्युक्त वर्गमूल को 60 से गुणकर चन्द्रमा और सूर्य की दैनिक भुक्ति के अंतर से भाग देने पर लब्धि स्थित्यर्धकाल होती है । भट्टोत्पल ने खण्ड-खाद्यक की विवृति में इसे मध्यमस्थित्यर्धकाल कहा है । चतुर्थ अध्याय की पाँचवीं आर्या की विवृति में विस्तार से भट्टोत्पल ने बताया है कि स्फुटस्थित्यर्ध कैसे ज्ञात किया जाता है । इस विस्तार में न जाकर केवल आकृति द्वारा हम बतायेंगे कि मध्यमस्थित्यर्धकाल तथा स्फुट-स्थित्यर्धकाल में क्या अंतर है ।

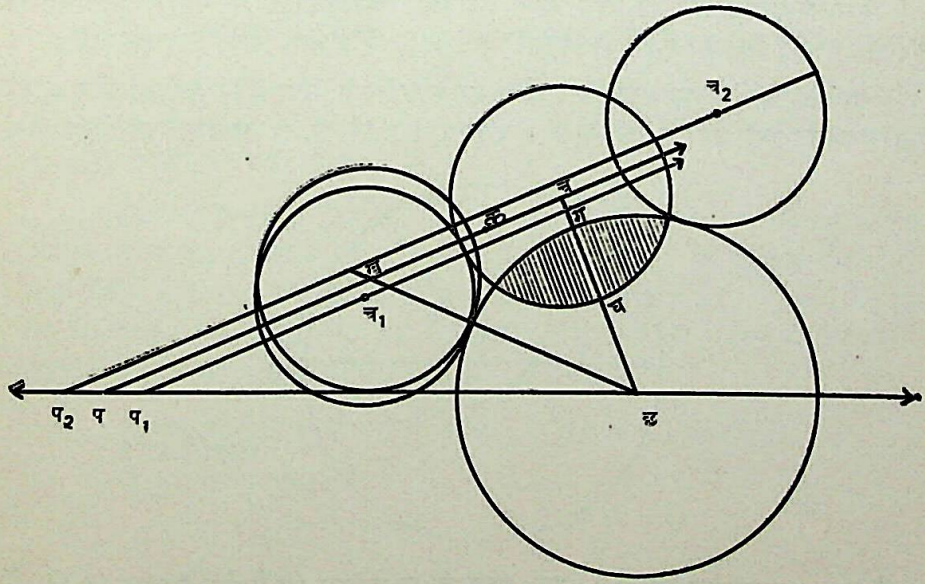

[1]खण्डखाद्यक, चतुर्थ अध्याय, आर्या 4 ।

आकृति 4.14

आकृति (4.14) में कल्पना किया कि हम चन्द्रग्रहण की विवेचना कर रहे हैं। मध्यग्रहण के क्षण च चन्द्रमा का केन्द्र है तथा छ छाया का केन्द्र है। स्पर्शकाल में चन्द्र केन्द्र ख पर है। ख छ दोनों के व्यासार्धों का योग है। हम छाया को स्थिर और चन्द्रमा और पात को गतिमान मान लेते हैं। च छ मध्यग्रहण का विक्षेप है। $\sqrt{\text{ख छ}^2 - \text{च छ}^2} = \text{ख च}$। जब तक चन्द्रमा छाया को अपेक्षा ख च दूरी चलता है उसे ऊपर मध्यमस्थित्यर्धकाल कहा गया है। परन्तु ग्रहण प्रारम्भ के समय पात प_1 पर था क्योंकि पात विपरीत दिशा में चलता है और चन्द्रमा च_1 पर था। मोक्ष के समय पात प_2 पर और चन्द्रमा च_2 पर है। स्फुटप्रग्रहणस्थित्यर्धकाल वह है जितने समय में चन्द्रमा छाया की अपेक्षा च_1 से च तक जाता है तथा स्फुटमोक्षस्थित्यर्धकाल वह समय है जिसमें चन्द्रमा च से च_2 तक जाता है। आकृति से स्पष्ट है कि दोनों काल तुल्य नहीं हैं। ग्रहण काल च_1 से च_2 तक है।

चन्द्रव्यासार्धोनस्य वर्गितं यत्तमोमयार्धस्य।
विक्षेपकृतिविहीनं तरमान्मूलं विमर्दार्धम् ॥४२॥

अनुवाद—(चन्द्रकक्ष्या में) पृथ्वी की छाया के व्यासार्ध में से चन्द्रमा का व्यासार्ध घटाकर शेष के वर्ग में से चन्द्रमा के विक्षेप का वर्ग घटाया जाय तो शेष का वर्गमूल विमर्दार्ध होता है। (स्थित्यर्धकाल की तरह इससे भी मध्यमविमर्दार्धकाल का ज्ञान होता है) ॥42॥

विमर्दार्धकाल पूर्णग्रहण (खग्रास) काल का आधा होता है। यदि छाया के अर्ध-व्यास और चन्द्रमा के अर्धव्यास के अन्तर से चन्द्रमा का विक्षेप अधिक हो तो खण्डग्रास होता है जिसका उल्लेख अगली आर्या में किया गया है।

मध्यमस्थित्यर्धकाल की तरह ऊपर दिया गया विमर्दार्धकाल भी मध्यमविमर्दार्धकाल ही है। अब इसका विवेचन करेंगे कि स्फुटविमर्दार्धकाल कैसे ज्ञात किया जा सकता है।

सरलता के लिए आकृति (4.15) में यह मान लिया गया है कि चन्द्रमा और छाया के केन्द्र समान्तर रेखाओं पर चल रहे हैं। क छाया का केन्द्र है, ख चन्द्रमा का केन्द्र उस

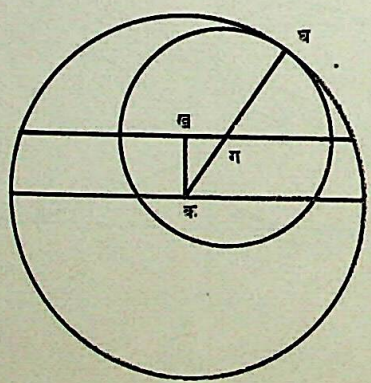

आकृति 4.15

समय है जब मध्यग्रहणक्षण है। उस समय क ख चन्द्रमा का विक्षेप है और (4.15) में

मोक्ष समाप्त होने की स्थिति दिखाई गई है और यह मान लिया गया है कि अब भी विक्षेप उतना ही है जितना मध्यग्रहण के क्षण था। इस समय चन्द्रमा का केन्द्र ग पर है। यदि चन्द्रमा की दैनिक गति $व_1$ तथा छाया की $व_2$ है।

तो मध्यमविमर्दार्धकाल $= \frac{ख\,ग \times 60}{व_1 - व_2} = \frac{60\sqrt{क\,ग^2 - क\,ख^2}}{व_1 - व_2} = \Delta t$।

परन्तु चन्द्रमा का विक्षेप ग्रहणकाल में बदलता रहता है। यदि मध्यग्रहणक्षण t_0, व्यासार्धों का अन्तर र और मध्यग्रहणक्षण पर विक्षेप $य_0$, तो $t_0 + \Delta t$ क्षण पर विक्षेप $य_1$ होगा। इसके उपयोग से

$$\Delta t_1 = \frac{\sqrt{र^2 - य_1^2} \times 60}{व_1 - व_2}।$$

इस Δt_1 से हम विक्षप का नया मान $य_2$ निकाल सकते हैं और फिर Δt_2 ज्ञात कर सकते हैं। ऐसा तब तक करना चाहिए जब तक गणित से प्राप्त Δt के मानों में अन्तर प्राप्त होता रहे। अन्त में प्राप्त किया गया मान स्फुटउन्मीलनविमर्दार्धकाल होगा। पूर्णग्रास प्रारम्भ होने के लिए भी ऐसा करना चाहिए तब हमें स्फुटनिमीलनविमर्दार्धकाल प्राप्त होगा। इन निमीलनविमर्दार्ध एवं उन्मीलनविमर्दार्धकालों का योग विमर्दकाल होगा।

तमसो विष्कम्भार्धं शशिविष्कम्भार्धवर्जितमपोह्य।
विक्षेपाद्यच्छेषं न गृह्यते तच्छशाङ्कस्य ॥४३॥
विक्षेपवर्गसहितात् स्थित्यर्धादिष्टवर्जितान्मूलम्।
सम्पर्कार्धाच्छोध्यं शेषस्तात्कालिको ग्रासः ॥४४॥

अनुवाद—(चन्द्रकक्ष्या में) पृथ्वी की छाया के अर्धव्यास में से चन्द्रमा का अर्धव्यास घटायें, शेष को चन्द्रमा के विक्षेप में से घटायें। जो शेष रहेगा चन्द्रमा का उतना भाग छाया से आच्छादित नहीं होगा ॥43॥

जिस इष्टकाल में (अर्थात् ग्रहण प्रारम्भ होने के जितने काल पश्चात् अथवा ग्रहण के अन्त से जितने काल पहले) ग्रास ज्ञात करना हो उस काल में चन्द्रमा और सूर्य द्वारा चले चाप के अन्तर को स्थित्यर्ध में से घटा दो। शेष के वर्ग को (उस काल के) विक्षेप के वर्ग में जोड़कर वर्गमूल लो तथा मूल को चन्द्रमा और छाया के व्यासार्धों के योग में से घटा दो तो उस समय का ग्रास मिलेगा ॥44॥

आकृति (4.14) में चन्द्रमा का ग्रसित भाग ग घ है। आकृति से

ग घ = च घ — च ग,

= च घ — (छ च — छ ग),

= च घ + छ ग — छ च,

= व्यासार्धों का योग — विक्षेप।

चन्द्रमा का जितना भाग आच्छादित नहीं है

उसका मान=चन्द्रव्यास—ग घ,

=चन्द्रव्यास—(व्यासार्धों का योग—विक्षेप),

=विक्षेप —(व्यासर्धों का योग—चन्द्रव्यास),

=विक्षेप —(भूच्छायाव्यासार्ध—चन्द्रव्यासार्ध)।

किसी इष्टकाल में जब चन्द्रमा का केन्द्र क पर है, चन्द्रमा के आच्छादित भाग का मान=व्यासार्धों का योग—छ क

तथा छ क^2=च छ^2+क च^2,

=च छ^2+(ख च—ख क)^2,

=विक्षेप^2+(स्थित्यर्ध—चन्द्रमा द्वारा अधिक चला चाप)^2।

यही सिद्ध करना था।

मध्याह्नात् क्रमगुणितोऽक्षो दक्षिणतोऽर्धविस्तरहृतो दिक्।
स्थित्यर्धाच्चार्केन्द्वोस्त्रिराशिसहितायनात् स्पर्शे ॥४५॥

अनुवाद—नतांशज्या तथा अक्षांशज्या के गुणनफल में त्रिज्या से भाग देने पर लब्धि आक्षवलन होती है। परमेश्वर के अनुसार पूर्वकपाल में (अर्थात् मध्याह्न के पहले) आक्षवलन दक्षिण की ओर एवं अपरकपाल में (अर्थात् मध्याह्न के पश्चात्) उत्तर की ओर होता है[1] स्थित्यर्धात् का आशय यह है कि स्पर्शकाल से मोक्षकाल तक आक्षवलन ज्ञात करना चाहिए क्योंकि स्पर्शकाल से मोक्षकाल तक के आक्षवलन के मान में महान् भेद होता है। आयनवलन ग्रह की स्थिति से तीन राशि अधिक स्थित क्रान्तिमण्डल के बिन्दु की क्रान्ति के तुल्य होता है। कुल वलन दोनों वलनों के बीजीय योग के तुल्य होता है अर्थात् यदि वे एक ही दिशा में हो तो उन्हें जोड़ना चाहिए और यदि विपरीत दिशा में हो तो उनका अन्तर लेना चाहिए ॥45॥

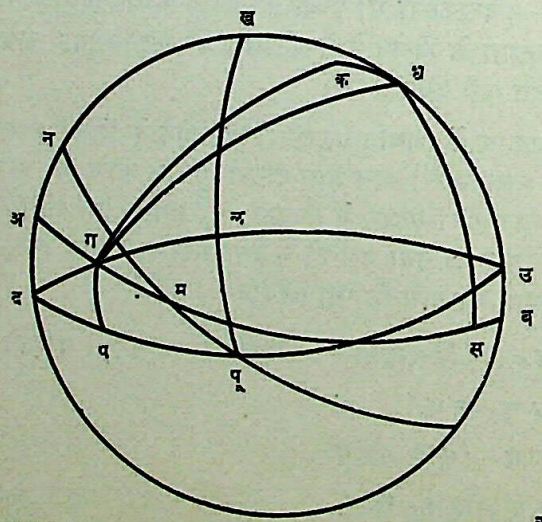

आकृति 4·16

[1]परमेश्वरकृत आर्यभटीय भाष्य, पृ. 98।

आकृति (4.16) में व उ ख द याम्योत्तर वृत्त है, उ, पू, द क्रमशः उत्तरस्वस्तिक, पूर्वस्वस्तिक एवं दक्षिणस्वस्तिक हैं। ख खस्वस्तिक, ध ध्रुव, क कदम्ब, न म पू नाडी-मण्डल, अ म व क्रान्तिमण्डल तथा ख पू सममण्डल हैं। ग क्रान्तिमण्डल पर ग्रह की स्थिति है और ग प चाप सममण्डल के समान्तर चाप है। ग प तथा क्रान्तिमण्डल के बीच का कोण वलन कोण है। क ध स कदम्बप्रोत है।

ध्रुव ध से ध ग ध्रुवप्रोत तथा क से क ग कदम्बप्रोत खींचे गए हैं। उ ल ग चाप सममण्डल पर अभिलंब है। अतः ग प एवं ग म चापों के बीच का कोण उ ग क कोण के तुल्य है। कोण उ ग क, कोण उ ग ध तथा कोण क ग ध के योग के तुल्य है। इसमें कोण उ ग ध आक्षवलन है क्योंकि निरक्ष देश में उ तथा ध एक ही बिन्दु होते हैं और कोण उ ग ध शून्य के तुल्य होता है। कोण क ग ध आयनवलन है क्योंकि यह इस कारण उत्पन्न होता है कि ध्रुव एवं कदम्ब एक ही स्थान पर नहीं हैं।

आकृति में चाप ध ग का मान 90 अंश से अधिक है, परन्तु ग का अपक्रम ऋणात्मक है। अतएव चाप ध ग $=(90-\delta)$ जिसमें δ ग का ऋणात्मक अपक्रम है। इसके अतिरिक्त पूर्वस्वस्तिक पू तथा खस्वस्तिक ख दोनों ही उ से 90 अंश पर हैं। अतएव उ बिन्दु चाप पू ख का ध्रुव है और कोण ग उ ख=कोण ल उ ख=चाप ल ख। अब गोलीय त्रिभुज ध ग उ में

$$\frac{\text{ज्या कोण ध ग उ}}{\text{ज्या चाप उ ध}}=\frac{\text{ज्या कोण ध उ ग}}{\text{ज्या चाप ध ग}},$$

अथवा

$$\text{ज्या आक्षवलन}=\frac{\text{ज्या चाप ख ल}\times\text{ज्या चाप उ ध}}{\text{ज्या }(90-\delta)},$$

$$=\frac{\text{सममण्डलीय नतांशज्या}\times\text{अक्षांशज्या}}{\text{कोटिज्या }\delta},$$

$$=\frac{\text{सममण्डलीय नतांशज्या}\times\text{अक्षांशज्या}}{\text{द्युज्या }(=\text{त्रिज्या})}.$$

अतएव आर्यभट का सूत्र आसन्नतः ठीक है क्योंकि द्युज्या को त्रिज्या के तुल्य मान लिया गया है।

आकृति (4.16) में म वह बिन्दु है जहाँ नाडीमण्डल और क्रान्तिमण्डल एक-दूसरे को काटते हैं। अतएव यह बिन्दु ध एवं क दोनों से 90 अंश पर है और चाप क ध स के लिए म ध्रुव है। इस कारण चाप म स=90 अंश। यदि म ग चाप λ है तो ग स चाप का मान $(90+\lambda)$ है अर्थात् कोण ग क स $=(90+\lambda)$ है। अब ग क ध गोलीय त्रिभुज में

$$\frac{\text{ज्या कोण ध ग क}}{\text{ज्या चाप ध क}}=\frac{\text{ज्या कोण ध क}}{\text{ज्या चाप ध ग}},$$

अथवा

$$\text{आयनवलनज्या}=\frac{\text{ज्या कोण ग क स}\times\text{ज्या परमक्रान्ति}}{\text{ज्या }(90-\delta)},$$

$$=\frac{\text{ज्या }(90+\lambda)\times\text{ज्या}\in}{\text{द्युज्या}},$$

$$= \frac{\text{ज्या } (90+\lambda) \text{ ज्या } \epsilon}{\text{त्रिज्या}} \text{ (आसन्नतः)},$$

अतएव आयनवलनज्या = क्रान्तिज्या $(90+\lambda)$ ।

प्रग्रहणान्ते धूम्रः खण्डग्रहणे शशी भवति कृष्णः ।
सर्वग्रासे कपिलः स कृष्णताम्रस्तमोमध्ये ॥४६॥

अनुवाद—ग्रहण के प्रारम्भ तथा अन्त में चन्द्रमा का ग्रस्तभाग धूम्र अर्थात् धुएँ के रंग का, खण्डग्रहण में अर्थात् जब चन्द्रमा का कुछ अंश ग्रसित रहता है और कुछ भाग स्पष्ट रहता है उसमें ग्रस्त भाग काला दिखता है। सर्वग्रास में अर्थात् जब चन्द्रमा का कुल भाग पृथ्वी की छाया में प्रविष्ट कर जाता है तब वह कपिलवर्ण का अर्थात् हल्की ललाई के साथ भूरे रंग का होता है और पूर्णतः छाया के बीच में वह गहरे लाल (अर्थात् ऐसा लाल जिसमें कुछ कालापन आ गया हो) वर्ण का होता है ॥46॥

सूर्येन्दुपरिधियोगेऽर्काष्टमभागो भवत्यनादेश्यः ।
भानोर्भासुरभावात् स्वच्छतनुत्वाच्च शशिपरिधेः ॥४७॥

अनुवाद—जब चन्द्रमा के द्वारा सूर्य का ग्रहण होता है तब सूर्य के आठवें भाग के आच्छादित हो जाने तक यह नहीं प्रतीत होता कि सूर्य ग्रसित हो चुका है क्योंकि सूर्य का तेज बहुत अधिक है चन्द्रबिम्ब अत्यन्त स्वच्छ अर्थात् पारदर्शी है। इस कारण जब अष्टमांश ग्रसित हो जाय तब कहना चाहिए कि स्पर्श हुआ है और जब अष्टमांश शेष रह जाय तब कहना चाहिए कि मोक्ष हो गया ॥47॥

क्षितिरवियोगाद् दिनकृद्रवीन्दुयोगात् प्रसाधितश्चेन्दुः ।
शशितारग्रहयोगात्तथैव तारग्रहाः सर्वे ॥४८॥

अनुवाद—पृथ्वी और सूर्य के योग से सूर्य की साधना करनी चाहिए अर्थात् गणित द्वारा ज्ञात किए गए स्पष्टसूर्य का उदय उसी समय होना चाहिए जब परीक्षण द्वारा वस्तुतः देखा जाये अथवा उदयकालिक नक्षत्रों की स्थिति से सूर्य को साधा जा सकता है। ऐसे ही सूर्य और चन्द्रमा के योग से चन्द्रमा की गति का ज्ञान किया जाना चाहिए। ऐसा योग स्पष्टतः ग्रहण के अवसरों पर होता है। अन्त में ताराग्रहों की (अर्थात् बुध, शुक्र आदि की) गति का ज्ञान चन्द्रमा और इन ग्रहों की युति से करना चाहिए ॥48॥

निरीक्षण से यदि रवि वर्ष का मान र दिन, चान्द्रमास का मान म दिन तथा चन्द्रमा के पृथ्वी के चारों ओर घूमने की अवधि च दिन तो रवि की औसत दैनिक गति $\frac{360^\circ}{\text{र}}$, चन्द्रमा की औसत दैनिक गति $= \frac{360^\circ}{\text{च}}$ हैं और

$$\frac{360}{\text{च}} - \frac{360}{\text{र}} = \frac{360}{\text{म}},$$

अथवा $\frac{1}{च}=\frac{1}{र}+\frac{1}{म}$, इससे च का मान ज्ञात किया जा सकता है।

सदसज्ज्ञानसमुद्रात् समुद्धृतं देवताप्रसादेन।
सज्ज्ञानोत्तमरत्नं मया निमग्नं स्वमतिनावा ॥४९॥

अनुवाद—जो यथार्थ ज्ञान का उत्तम रत्न, यथार्थ ज्ञान और मिथ्या ज्ञान के समुद्र में डूबा हुआ था उसे मैंने देवता के प्रसाद से अपनी बुद्धि रूपी नाव की सहायता से निकाला है। अर्थात् जिस तरह समुद्र की तली में छिपे रत्नों को लोग नावों पर चढ़कर निकालते हैं उसी तरह आर्यभट ने भी अपनी बुद्धि रूपी नाव की सहायता से डूबे हुए यथार्थ ज्ञान के उत्तम रत्न का उद्धार किया है ॥49॥

आर्यभटीयं नाम्ना पूर्वं स्वायम्भुवं सदा सद्यत्।
सुकृतायुषोः प्रणाशं कुरुते प्रतिकञ्चुकं योऽस्य ॥५०॥

अनुवाद—पहले जो स्वयंभू ब्रह्मा के द्वारा यथार्थ ज्ञान कहा गया था तथा जो सदा सत्य है उसी ज्ञान को आर्यभटीय के नाम से कहा गया है। जो इसमें दोष दिखाकर इसका तिरस्कार करेंगे उनके अच्छे कर्मों एवं आयु का नाश होगा ॥50॥

जिस तरह आर्यभटीय की इस आर्या में आर्यभट ने कहा है कि इसमें दोष दिखाने वालों के सुयश और आयु का नाश होगा वैसे ही मुञ्जालाचार्य ने लघुमानस के उपसंहार में कहा है :

"मानसाख्यं ग्रहज्ञानं श्लोकषष्ट्या मया कृतम्।
भवन्त्यतोऽयशोभागाः प्रतिकञ्चुककारिणः ॥"

अर्थात् ग्रहों के ज्ञान का मानस नामक ग्रन्थ साठ श्लोकों में मैंने लिखा है। इसमें दोष दिखाने वाले अपयश के भागी होंगे।

इति गोलपाद समाप्त।

श्लोकानुक्रमणिका

अंशाः कलास्तथैवं विभाग 97
अघनाद्भजेद् द्वितीयात् 32
अचलानि भानि तद्वत् 114
अध उपरि गुणितम् 72
अधिकाग्रच्छेदगुणम् 72
अधिकाग्रभागहारम् 72
अधिमासका युगे ते 92
अनुलोमगतिर्नौस्थः 114
अनुलोमगतिर्वृत्ते 102
अनुलोमगानि मन्दाच्छीघ्रात् 104
अन्तरयुक्तं हीनम् 64
अपमण्डलस्य चन्द्रः 110
अपसव्यगं तथार्धम् 117
अमरमरा मन्यन्ते 115
अयुतद्वयविष्कम्भस्य 38
अर्काच्च मण्डलार्धे 100
अर्धं भूमिच्छन्नम् 116
अर्धानि यथासारम् 111
अल्पे हि मण्डलेऽल्पा 97
अष्टोत्तरं सहस्रं ब्राह्मो 94
अस्तमयोदयसूत्राद् दक्षिणतः 131
आयामगुणे पार्श्वे तद्योगहृते 36
आर्यभटस्त्रीणि गदति 1
आर्यभटस्त्विह निगदति 25
आर्यभटीयं नाम्ना पूर्वम् 149
इष्टं व्येकं दलितम् 56
इष्टगुणितमिष्टधनम् 56
इष्टज्यागुणितम् 123
इष्टापक्रमगुणिताम् 127
इष्टापक्रमवर्गं व्यासार्धं 123
उज्जयिनी लङ्कायाः 115
उत्सर्पिणी युगार्धम् 95
उदगृणधनमुदगयने 137
उदयति हि चक्रपादः 129
उदयास्तमयनिमित्तम् 114
उदये धनमस्तमये 137
उदयो यो लङ्कायाम् 115
उन्मण्डलं भवेत्तत् 118
उपरिष्टात् सर्वेषाम् 97
ऊर्ध्वभुजा तत्संवर्गार्धम् 34
ऊर्ध्वमधस्ताद् द्रष्टुः 120
ऋणधनधनक्षयाःस्युः 107
एकं च दश च शतं च 26
एकोत्तराद्युपचितेर्गच्छ 59
एतासां सम्पातो द्रष्टा 119
एवं कालविभागः क्षेत्र 89
कक्ष्या प्रतिमण्डलगा 99
कक्ष्यामण्डलतुल्यं 99
कक्ष्यामण्डललग्न 104
कक्ष्यायां ग्रहवेगो यो 107
कल्पादेर्युगपादा ग च 7
कालोऽयमनाद्यन्तो 97
काष्ठमयं समवृत्तम् 121
काहो मनवो ढ 7
कुजगुरुकोणाश्चैवम् 110
कोटयर्बुदं च वृन्दम् 26
क्षितिजं समपार्श्वस्थम् 118
क्षितिजादुन्नतभागानाम् 133
क्षितिजे स्वा दृक्छाया 136
क्षितिरवियोगाद् दिनकृद् 148
खद्विनवके स्वरा नव 1
गच्छऽष्टोत्तर गुणितात् 58
गत्यन्तरेण लब्धौ 71
गुणकारा भागहरा 68

गुरुभगणा राशिगुणाः 91
गुर्वक्षराणि षष्टिः 89
गुलिकान्तरेण विभजेत् 70
ग्रहभगणपरिभ्रमणं स 24
ग्रासोनयोगभक्ते 55
ग्रासोने द्वे वृत्ते 55
घ्लकि किग्र हक्य धकि 22
चतुरधिकं शतमष्टगुणम् 38
चन्द्रव्यासार्धोनस्य वर्गितम् 144
चन्द्रोच्चं ञ्रुष्खिघ 4
चन्द्रोंऽशैर्द्वादशभिः 111
चन्द्रो जलमर्कोऽग्निः 140
छादयति शशी सूर्यम् 140
छायागुणितं छायाग्रविवरम् 50
छायाग्रचन्द्रविवरम् 141
छेदगुणं सच्छेदम् 67
छेदाः परस्परहताः 67
जा ण क्ल छ्ल 20
ज्यालम्बकेन लब्धार्काग्रा 132
झ ग्ड ग्ल झ्ल द्ड 20
झार्धानि मन्दवृत्त 20
तत्प्रथमज्यार्धांशैः 42
तद्वद्धि सर्वसत्त्वैर्जलजैः 113
तन्निजमूलेन हतम् 35
तन्मध्यज्याकृत्योः 133
तमसो विष्कम्भार्धम् 145
ताराग्रहेन्दुपाता 110
तेषामधश्च भूमिः 97
तौल्यादेर्मीनान्तम् 109
त्रिभुजस्य फलशरीरम् 34
त्रैराशिकफलराशिम् 66
त्र्यधिका विंशतिरब्दाः 96
दशगीतिकासूत्रमिदम् 24
दिनतुल्ययैव रात्र्या 114
दिव्यं वर्षसहस्रम् 94
दिव्येन नभः परिधिम् 97
दृक्क्षेपमण्डलमपि 120
दृग्गोलार्धकपाले 122
दृग्दृक्क्षेपकृतिविशेषितस्य 136
देवाः पश्यन्ति भगोलार्धम् 117
द्विकृतिगुणात् संवर्गात् 64
नन्दनवनस्य मध्ये 115
नवभिर्भृगुभृगोस्तैः 111
नृषियोजनं त्रिला 15
परमापक्रमजीवाम् 132
परिधेष्षड्भागज्या 38
पारततैलजलैस्तं भ्रमयेत् 121
पित्र्यं द्वादशगुणितम् 94
पूर्वापरदिग्रेखाधश्च 119
पूर्वापरदिग्लग्नम् 118
पूर्वापरमधऊर्ध्वम् 118
प्रग्रहणान्ते घ्रूभ्रः 148
प्रणिपत्यैकमनेकम् 1
प्रतिमण्डलभूविवरम् 99
प्रतिमण्डलस्य मध्यम् 99
प्रथमाच्चापज्यार्धात् 42
प्रथमोऽन्त्यश्चाथान्यौ 129
प्राणेनैति कलां भूः 11
बुधभृगुकुजगुरुशनि 19
बुफिनच पातविलोमा 4
ब्रह्मकुशशिबुधभृगु 25
ब्रह्मदिवसेन भूमेः 114
भक्ते विलोमविवरे 71
भगणा द्वयोर्द्वयोर्ये 90
भागं हरेदवर्गान्नित्यम् 29
भानामधश्शनैश्चर 97
भानोर्भासुरभावात् 148
भापक्रमो ग्रहांशाः 17
भूग्रहभानां गोलार्धानि 112
भूच्छायया विभक्तम् 141
भूच्छायादीर्घत्वम् 141
भूच्छाया पक्षान्ते 141
भूताराग्रहविवरम् 107
भूरविविवरं विभजेत् 141

भूव्यासार्धेनोनं दृश्यम् 116
भृगुगुरुबुधशनिभौमाः 15
मखि भखि फखि धखि 22
मण्डलमल्पधस्तात् 97
मध्यज्योदयजीवा 133
मध्यान्नतभागज्या 133
मध्याह्नात् क्रमगुणितः 146
मध्याह्नो यवकोट्याम् 115
मध्ये युगस्य सुषमा 95
मन्दात् ङ ख द ज डा 20
मन्दोच्चाच्छीघ्रोच्चात् 107
मन्दोच्चात् स्फुटमध्याः 107
मन्दोच्चादनुलोमम् 99
मूलं द्विगुणाद्यूनम् 58
मूलं मूलार्धोनम् 65
मूलफलं सफलम् 65
मृज्जलशिखिवायुमयो 113
मेरुर्योजनमात्रः 115
मेषादेः कन्यान्तम् 109
यत्तस्य भवत्यर्धम् 63
यत्तस्य वर्गमूलम् 45
यद्वत् कदम्बपुष्पग्रन्थिः 113
यल्लब्धं सा छाया 48
यश्चैव भुजावर्गः 50
यः क्षेपः सोऽपचयः 68
यः शीघ्रगतिः स्वोच्चात् 102
युगरविभगणाः ख्युधृ 4
युगवर्षमासदिवसास्समम् 97
रविभगणा रव्यब्दाः 92
रविभूयोगादिवसाः 92
रविवर्षं मानुष्यम् 94
रविबर्षार्धं देवाः 117
रविशशिनक्षत्रगणाः 90
राश्यूनं राश्यूनम् 69
लङ्कासमपश्चिमगो भपञ्जरः 114
लब्धं गुलिकामूल्यम् 70
लब्धं प्रमाणभजितम् 66
वर्गचितिघनस्स भवेत् 62
वर्गस्त्रिपूर्वगुणितः 32
वर्गः समचतुरस्रः 27
वर्गाक्षराणि वर्गेऽवर्गे 1
वर्गाद्वर्गे शुद्धे लब्धम् 29
वर्षं द्वादश मासाः 89
विक्षेपकृतिविहीनम् 144
विक्षेपगुणाक्षज्या 137
विक्षेपवर्गसहितात् 145
विक्षेपाक्रमगुणम् 137
विक्षेपाद्यच्छेषं न 145
विषुवज्ज्यया विभक्ता 132
विषुवज्जीवाक्षभुजा 122
विषुवज्जीवागुणितः 131
विषुवदुदग्दक्षिणतः 123
विष्कम्भार्धविभक्ते 130
विस्तरयोगार्धगुणे 36
वृत्तं भ्रमेण साध्यम् 44
वृत्तपरिधौ ग्रहास्ते 99
वृत्तभपञ्जरमध्ये 113
वृत्ते शरसंवर्गोऽर्धज्या 50
व्येकेन पदेन हृतम् 69
शंकुगुणं शंकुभुजाविवरम् 48
शंकुगुणा कोटीसा 50
शङ्कोः प्रमाणवर्गम् 45
शनिगुरुकुज खकगार्धम् 17
शनिगुरुकुजेषु मन्दात् 107
शनि ढुङ्विघ्व गुरु 4
शशितारागृहयोगात् 148
शशिदिवसा विज्ञेया 92
शशिमासार्धं पितरः 117
शशिराशयष्ठ चक्रम् 11
शीघ्रक्रमाच्चतुर्था 98
शीघ्रोच्चादर्धोनम् 107
शेषपरस्परभक्तं 72
षड्भक्तस्स चितिघनः 59
षष्टिर्नाड्यो दिवसः 89

षष्ट्यब्दानां षष्टिः 96
षष्ट्या सूर्याब्दानाम् 97
सज्ज्ञानोत्तमरत्नम् 149
सदसज्ज्ञानसमुद्रात् 149
सदृशत्रयसंवर्गो घनः 27
सप्तैते होरेशाः 98
समचापज्यार्धानि 40
समपरिणाहस्यार्धम् 35
समवृत्तपरिधिपादं छिन्द्यात् 40
सम्पर्कस्य हि वर्गात् 63
सम्पर्कार्धस्य कृतेः 143
सम्पर्कार्धाच्छोध्यं शेषः 145
सर्वग्रासे कपिलः 148
सर्वेषां क्षेत्राणां प्रसाध्य 38
सवितुरमीषाञ्च तथा द्वा 19
साध्या जलेन समभूः 44
सा विषुवज्ज्योना 132
सुकृतायुषोः प्रणाशम् 149
सूर्येन्दुपरिधियोगे 148
सैकसगच्छपदानाम् 62
स्थलजलमध्याल्लङ्का 115
स्थित्यर्धमस्यमूलम् 143
स्थित्यर्धाच्चार्केन्द्वोः 146
स्फुटमध्यौ तु भृगुबुधौ 107
स्फुटशशिमासान्तेऽर्कम् 141
स्वर्मेरु स्थलमध्ये 115
स्वाहोरात्रार्धहृतफलम् 123
स्वाहोरात्रे क्षितिजा 127
स्वाहोरात्रेष्टज्याम् 130
स्वोच्चभगणाः स्वभगणैः 91

शब्दानुक्रमणिका

अंश 11, 89, 97
अक्षकोटिज्या 122, 127
अक्षज्या 122, 127
अग्नि 113
अग्रा 45 46, 127
अग्रान्तर 72, 74
अघन 32
अंगुल 17
अधः स्वस्तिक 45
अधिकाग्रभागहार 72, 86
अधिमास 92, 93
अनुलोम 99, 102, 103, 104, 106
अन्त्य 72, 129
अपक्रम 17, 123, 127
अपचय 68
अप्पय दीक्षित 15
अपमण्डल 17, 110
अपसव्य 117
अपोलोनियस 39
अमलानन्द 15
अमावस्या 92
अयन 109
अयनसंस्कार 109
अयुत 26
अर्क 97
अर्काग्रा 132
अर्थकृत 70
अर्धज्या 22, 23, 40, 41
अर्धज्यावर्ग 50
अर्बुद 26
अल्काशी 39
अल् नग़मा 7
अल् नत्फ़ 7
अल् विरूनी 5, 6, 7, 8, 10, 11, 14, 26, 40 95, 116, 141
अल् मंसूर 116
अवमशेष 93
अवर्गाक्षर 1
अवसर्पिणी 95
असु 125
अस्तमयोदयसूत्र 119
अहोरात्र वृत्त 45,46, 119, 120, 123, 125 127, 128, 130
आकाशकक्ष्या 11, 12, 13, 97
आक्षदृक्कर्म 137
आक्ष वलन 146
आदि पद 56
आयन दृक्कर्म 137
आयन वलन 146
आयाम 36, 37
आर्कीमिडीस 35
आर्क्षी 89
आर्धरात्रिक पद्धति 6, 9, 10, 11, 96
आर्यभट 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9, 10, 11, 14, 15, 16, 17, 19, 21, 22, 23, 24, 25, 26, 27, 34, 35, 36, 39, 40, 41, 42, 44, 45, 59, 61, 76, 81 88, 90, 93, 95, 96, 97, 98, 99, 105, 106, 107, 108, 109, 110, 102, 111, 112, 114, 115, 117, 133, 139, 140
आर्याष्टशत 19
आवर्त 92
आश्वयुज् 91
आह्नी 39

इच्छाफल 66
इच्छाराशि 66
इन्दूच्च 95
इष्टापक्रम 123, 127
उच्चनीच परिवर्त 91
उज्जैन 116
उत्क्रम 129
उत्क्रमज्या 22, 23
उत्तर 56, 58
उत्तरायण 109
उत्सर्पिणी 95
उदयकालज्या 123, 124, 125
उदयजीवा 133
उदयास्तसूत्र 45, 119
उन्मण्डल 119, 130
उपचिति 59
उपान्त्य 72
उमास्वाति 25
ऊनाग्रभागहार 72, 86
ऊर्ध्वभुजा 34
औदायिक पद्धति 6, 11, 96
एक 26
कक्ष्यामण्डल 99, 101
कक्ष्यावृत्त 99
कदम्ब 113, 137, 147
कदम्बप्रोत 137, 147
कपाल 118
कपिल 148
कर्कट यंत्र 44
कर्णवर्ग 50
कर्णाग्रा 46
कर्न, एच. 2, 27
कला 11, 14, 89, 97
कलियुग 5, 8, 11
कालक्रिया 1
कालांश 111, 112
किताब फी हिसाबुलहिन्द 3, 27
कुज 4, 107
कुजभगण 4
कुज्या 127, 128
कुट्टक 72
कुभगण 4
कुवायुकक्ष्या 20
कुश्यार इब्न लब्बान 3, 27, 29, 30, 32, 34
कुसुमपुर 7, 25
कृतयुग 5, 8
कृष्ण 148
कृष्णताम्र 148
के०जी०आर० 3, 4
कोटि 26, 50
कोण 25
कोपरनिकस 104, 105, 106, 107
कोलब्रुक 42, 115
क्रान्तिपात 109
क्रांतिमण्डल 17, 109, 110, 120 121, 124
130, 134
क्लार्क, डबल्यू०ई०, 2, 3
क्षयतिथि 92, 93
क्षितिच्छाया 110
क्षितिज 45, 118, 119, 110, 128, 130
क्षेत्रांश 112
क्षेप 68
खण्ड अर्धज्या 22, 23
खण्डखाद्यक 92
खण्डग्रहण 145
खस्वस्तिक 45, 47
गच्छ 57, 58
गणकतरंगिणी 3
गणेश दैवज्ञ 42, 111
गणित 1
गांगुली, शारदाकान्त 3, 4, 26
गुणकार 67, 68
गुरु 4, 15, 107

गुरुभगण 4, 91
गुरुवर्ष 91
गुर्वक्षर 89
गोल 1
गोविन्दस्वामी 6, 13, 14, 15, 24, 67, 90
ग्रह, मध्यम 99, 104
—, स्फुट, 99, 107
ग्रहजव 11
ग्रहण 141
ग्रहणन्यायदीपिका 49
ग्रहवेग 107
ग्रास 55
घन 27
घनगोलफल 35
घनचिति 62
घनमूल 32
घन षडश्रि 34
चक्रपाद 129
चटर्जी, वीणा 92
चन्द्रकक्ष्या 12, 97
चन्द्रग्रहण 141
चन्द्रपातभगण 4, 5
चन्द्रभगण 4
चन्द्रमा 92, 110, 111, 112
चन्द्रविक्षेप 17
चन्द्रव्यास 15
चन्द्रोच्चभगण 4
चरदल 128, 129
चरदलज्या 128
चान्द्रदिन 92
चान्द्रमास 92
चितिघन 59
चितिवर्ग 62
छायाग्र 50
छेद 67, 72
जातकरत्नमाला 92
जिनभद्रमणि 3
तत्पर 89
तन्त्रसंग्रह 24, 43
ताराग्रह 110, 148
तिथि 89
तिथिप्रलय 92
त्रैराशिक 66
थीवो 6
दक्षिणायन 109
दक्षिणोत्तरमण्डल 117
दत्त, विभूतिभूषण 26, 27
दास, सुकुमाररंजन 3
दिनपति 98
दिल्ली 128, 129
दिवसपाद 129
दिव्यवर्ष 94
दीपयष्टि 50
दुष्षमा 95
दृक्क्षेपज्या 133, 135
दृक्क्षेपमण्डल 120, 133, 134, 135
दृग्गतिज्या 136
दृग्ज्या 136
दृङ्मण्डल 120, 121
द्युज्या 120 123,
द्रष्टा 119
द्वादशाश्रि 27
द्वापर 10, 11
द्विवेदी, सुधाकर 3, 6, 19, 22, 95, 98, 110, 116
ध्रुव 119
ध्रुवपोत 124, 130
धूम्र 148
नक्षत्रकक्ष्या 13, 97
नतांश 47, 122
नभः परिधि 97
नरक 115
नाक्षत्रदिन 5, 90, 92, 93
नाडी 11, 89

नाडीमण्डल 119, 120, 124, 127, 128, 130
नारायण पंडित 26
नियुत 26
नीचोच्च वृत्त 91, 99, 100, 101, 102,103 104, 106
नीलकंठ 1, 14, 24, 25, 27, 31, 34, 39,40 43, 44, 67, 112, 116, 117
नृसिंह 114
पञ्चसिद्धान्तिका 6, 10, 11, 18, 40, 90, 96, 113,
पद 20, 56
परमापक्रम 123
परमेश्वर 2, 4, 5, 6, 12, 15, 18, 19, 20, 25, 34, 38, 40, 44, 49, 57, 58, 63, 67, 84, 121, 131, 136, 137, 146
पलभा 46, 123
पाइथागोरस 51
पात 18, 19, 110
पातरेखा 36, 37
पारत 121
पार्श्व 36, 37
पिण्डअर्धज्या 23
पितामहसिद्धान्त 43
पितृदिन 117
पितृवर्ष 94
पुलिश 6, 10, 11, 13, 90
पुलिशसिद्धान्त 6, 10
पूर्व 56, 57
पूर्वापरसूत्र 45, 119, 120
पृथूदकस्वामी 6, 14, 27, 40, 102, 115, 118, 140
पृथ्वी का व्यास 15
पेट्रक 3
प्रग्रहण 148
प्रतिमण्डल 99, 100
प्रतिलोम 99, 102, 104, 105
प्रभव 91
प्रभाकर 91
प्रमाण 66
प्रमाणफल 66
प्रयुत 26
प्रवहवायु 114
प्राण 11, 14, 89, 125
प्रेत 117, 118
फलराशि 66
फ्लीट, जे०एफ० 2,3
बख्शाली पोथी 3, 27, 31, 59, 66, 69
वडवामुख 115, 117
बुध 4, 15, 97, 98, 104, 107, 110, 111, 112
बुधव्यास 15, 16
बुधशीघ्रोच्च 4, 12, 104
बौधायन 31
ब्रह्मगुप्त 1, 5, 6, 7, 8, 9, 10, 13, 14, 16, 17, 19, 21, 22, 24, 27, 28, 30, 31, 35, 36, 40, 44, 61, 90, 93, 96, 98, 99, 102, 110, 111, 112, 115, 116, 133, 135, 136, 140, 141, 143
ब्रह्मा की आयु 11
ब्राकहाउस 2
ब्राहे, टाइको 16
ब्राह्मदिवस 94, 114
ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त 1, 6, 7, 8, 9, 13, 14, 17, 18, 19, 21, 22, 24, 35, 40, 117
भगण 25, 89, 90
भगोलार्ध 116
भट्टोत्पल 10, 13, 90, 114, 143
भद्रबाहु 25
भपञ्जर 24
भपरिणाह 97
भागहार 67, 68
भास्कर द्वितीय 13, 16, 17, 24, 26, 28, 36, 41, 96, 111, 114
भास्कर प्रथम 3, 4, 12, 14, 15, 19, 20,

24, 25, 35, 36, 47, 49, 52, 58, 59, 61, 62, 64, 68, 69, 70, 71, 77, 90, 116, 117
भुज 48, 50
भूग्रहचरित 24
भूच्छाया 49
भूतविष्णु 4, 20, 24
भूताराग्रहविवर 107
भूवायु 20, 22
भूव्यास 15
भृगु 4
मक्कीभट्ट 14, 15
मङ्गल 4, 5, 15, 97, 98, 107, 110, 111
मंगलकक्ष्या 12
मंगलव्यास 15, 16
मति 72, 74
मध्यज्या 133, 134, 135
मनु 7, 95
मनुष्यदिन 117
मनुष्य वर्ष 94
मनुसंधि 8
मन्दकर्ण 108
मन्दकेन्द्र 20, 100
मन्दकेन्द्रज्या 100
मन्दनीच 101
मन्दफल 100, 101, 107
मन्दफलज्या 100, 102
मन्दवृत्त 20, 104
मन्दान्त्यफलज्या 101
मन्दोच्च 19, 99, 101, 104
मन्वन्तर 95
महामास्करीय 6, 9, 12, 13, 14, 15, 24
महावीराचार्य 26, 36
माधव 24, 39, 43, 45
मासपति 98
मिश्र, बलदेव 27
मुख 37, 56, 57
मुञ्जाल 111, 149
मूलफल 65
मेरु 15, 115
यजुर्वेद 26
यवकोटि 115 116
याक़ूब इब्न तारिक़ 40, 116
याम्योत्तरवृत्त 45, 46, 118, 120, 121, 130, 134
युग 7, 94
युगपाद 96
युडाक्सस 35
योजन 15, 114
रवि, मध्यम 100
—स्पष्ट 100
रविकक्ष्या 11, 12
रविभगण 4, 92
रविवर्ष 92, 94
रविव्यास 15
राय, उदयनारायण 25
राशि 11, 89, 97
राश्युदयकाल 126, 129
राहु 140
रोडे, एल० 2, 31
रोमक 115, 116
लग्न 120, 121
लघुभास्करीय 90
लघुमानस 16, 149
लङ्का 4, 98, 115, 116
लम्बक 44
लल्लाचार्य 13, 15, 16, 111
लीलावती 36, 42
लेबी 3
वटेश्वर 1, 12, 17, 24, 95
वटेश्वरसिद्धान्त 1, 12, 17, 24, 95
वराहमिहिर 6, 10, 14, 40, 44, 90, 91,

92, 96, 109, 113, 114
वर्ग 27
वर्गचितिघन 62
वर्गमूल 29
वर्गसंपर्क 63
वर्गाक्षर 1
वर्ष, दिव्य 94
— पित्र्य 94
— मानुष्य 94
— रवि 92, 94
— वार्हस्पत्य 91
वलन 146
वल्ली 72, 74, 76
वार्हस्पत्य वर्ष 91
विकला 89
विक्षेप 17, 18
वित्रिभ 120, 133
विनाडी 11, 89
विमर्दार्ध 144
— स्फुटउन्मीलन 145
— स्फुटनिमीलन 145
विषुवांश 130, 135
विषुवत् वृत्त 45, 46
विष्कम्भ 35
वृन्द 26
वृहत्क्षेत्रसमास 3
वृहत्संहिता 10, 13, 91
वृहस्पति 4, 5, 15, 91, 97, 98, 107, 110, 111
वृहस्पतिकक्ष्या 12
वृहस्पतिभगण 4, 91
वृहस्पतिव्यास 15, 16
वेदान्तकल्पतरु 5
वेदान्तकल्पतरुपरिमल 5
वैधृत 90
व्यतीपात 90
शंकरनारायण 90
शंकु 45, 50
शंकु, इष्ट 130, 131
शंकुतल 131
शंकु, परम 133
शंकुमूल 46
शंकुशीर्ष 46
शत 26
शनि 4, 5, 15, 97, 98, 107, 110, 111
शनिकक्ष्या 13
शनिभगण 4
शनिव्यास 15, 16
शर 50
शीघ्रकर्ण 108
शीघ्रकेन्द्र 20, 103, 107
शीघ्रकर्ण 108
शीघ्रकेन्द्रकोटिज्या 103, 104
शीघ्रकेन्द्रज्या 103
शीघ्रनीच 103
शीघ्रफल 103, 104, 107
शीघ्रफलज्या 104
शीघ्रवृत्त 20, 104
शीघ्रोच्च 99, 103, 104, 110
शुक्र 4, 15, 97, 98, 104, 107, 109, 111, 112
शुक्रव्यास 15, 16,
शुक्रशीघ्रोच्च 5, 12, 104
श्रीधराचार्य 26, 27, 28, 36
श्रीपति 13, 24, 92, 111
षडश्रि 34, 35
संवर्ग 27, 34, 59
सखाऊ 5, 6, 7, 8, 10, 11, 14, 26, 40
सङ्कलितसङ्कलित 61
सङ्क्रान्ति 93
सतयुग 5, 8
समदलकोटी 34, 35
समभू 44
सममण्डल 45, 46, 118, 120, 121, 132
सम्पर्क 63, 143

सम्पात, वसंत 109, 122
—शरद् 109, 122
सम्पातबिंदु 37, 109
सम्पात शर 55
सव्य 117
सायन मेष 130
सहस्र 26
सार्पमस्तक 90
सावनदिन 9, 89, 90, 92, 93
सिद्धपुर 98, 115, 116
सिद्धान्तशिरोमणि 13, 18, 36, 42, 96, 116
सिद्धान्तशेखर 13, 14, 18, 24
सुषमा 95
सूर्य 97, 98, 99, 100
सूर्यकक्ष्या 11, 12
सूर्यग्रहण 141
सूर्यदेव 4, 19, 20, 24, 34
सूर्यसिद्धान्त 13, 16, 18, 21, 22, 24, 111
सेनगुप्त प्रबोधचन्द्र 5, 42
सोमेश्वर 116
सौरदिन 89, 90
सौरमास 93
स्थित्यर्ध 143
स्फुटमध्य 107
स्फुटशशिमास 141
स्वपातरेखा 36
स्ववृत्त 45
स्वयम्भू 149
हस्त 17
होरेश 98
ह्विश 2

अशुद्धि-शुद्धि पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
4	12	छ	छृ
13	18	, 00 योजन	,000 योजन
17	20	विषुवत्त	विषुवत्
20	1	त्तं मन्दवृ	मन्दवृत्तं
22	8	32	36
26	1	एक	एकं
31	6	$\left(2\text{क}+\frac{\text{ख}}{2\text{क}+1}\right)$	$2\left(\text{क}+\frac{\text{ख}}{2\text{क}+1}\right)$
43	अंतिम	233 5273	233.5273
50	अंतिम	झ ख	झ घ
85	15	य···र	र···य
90	14	वैघृत	वैधृत
98	2	सूयोदयाद्	सूर्योदयाद्
120	11	द्क्	दृक्
136	24	दृज्या	दृग्ज्या